भारतीय ग्रन्थ निकेतन द्वारा प्रकाशित

अमर कथा शिलपी मुंशी प्रेमचंद का कथा साहित्य

कर्मभूमि
कायाकल्प
ग़बन
गोदान
निर्मला
प्रतिज्ञा
प्रेमाश्रम
मनोरमा
मानसरोवर (कहानी-संग्रह) आठ भाग
रंगभूमि
रूठी रानी और प्रेमा (दो उपन्यास)
वरदान
सेवा सदन

निर्मला

(उपन्यास)

मुंशी प्रेमचंद

भारतीय ग्रन्थ निकेतन द्वारा प्रकाशित

अमर कथा. शिल्पी मुंशी प्रेमचंद का कथा साहित्य

कर्मभूमि
कायाकल्प
ग़बन
गोदान
निर्मला
प्रतिज्ञा
प्रेमाश्रम
मनोरमा
मानसरोवर (कहानी-संग्रह) आठ भाग
रंगभूमि
रूठी रानी और प्रेमा (दो उपन्यास)
वरदान
सेवा सदन

निर्मला

: १ :

यों तो बाबू उदयभानु लाल के [illegible] कोई फुफेरा, कोई [illegible] नहीं। [illegible]

[illegible] जिनमें बड़ी का नाम निर्मला और छोटी का कृष्णा [illegible] गुड़ियाँ खेलती थीं। निर्मला का पन्द्रहवाँ साल [illegible] संसार में कोई [illegible] देती थी। [illegible] पुकारती रहती थी, [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

निर्मला

: १ :

यों तो बाबू उदयभानु लाल के परिवार में बीसों ही प्राणी थे, कोई ममेरा भाई था, कोई फुफेरा; कोई भांजा था, कोई भतीजा; लेकिन यहाँ हमें उनसे कोई प्रयोजन नहीं। वह अच्छे वकील थे, लक्ष्मी प्रसन्न थीं और कुटुम्ब के दरिद्र प्राणियों को आश्रय देना उनका कर्तव्य ही था। हमारा सम्बन्ध तो केवल उनकी कन्याओं से है जिनमें बड़ी का नाम निर्मला और छोटी का कृष्णा था। अभी कल तक दोनों साथ-साथ गुड़ियाँ खेलती थीं। निर्मला का पन्द्रहवाँ साल था, कृष्णा का दसवाँ, फिर भी उनके स्वभाव में कोई विशेष अन्तर न था। दोनों चंचल, खिलाड़िन और सैर-तमाशे पर जान देती थीं। दोनों गुड़ियों का धूमधाम से ब्याह करती थीं, सदा काम से जी चुराती थीं। माँ पुकारती रहती थी, पर दोनों कोठे पर छिपी बैठी रहती थीं कि न जाने किस काम के लिए बुलाती हैं। दोनों अपने भाइयों से लड़ती थीं, नौकरों को डाँटती थीं और बाजे की आवाज सुनते ही द्वार पर खड़ी हो जाती थीं। पर आज एकाएक एक ऐसी बात हो गई जिसने बड़ी को बड़ी और छोटी को छोटी बना दिया है। कृष्णा वही है, पर निर्मला गम्भीर, एकान्तप्रिय और लज्जाशील हो गई।

इधर महीनों से बाबू उदयभानु लाल निर्मला के विवाह की बातचीत कर रहे थे। आज उनकी मेहनत ठिकाने लगी है। बाबू भालचन्द्र सिनहा के ज्येष्ठ पुत्र भुवनमोहन सिनहा से बात पक्की हो गई है। वर के पिता ने कह दिया है कि आपकी खुशी हो दहेज दें या न दें मुझे इसकी परवाह नहीं। हाँ बारात में जो लोग आयें उनका आदर-सत्कार अच्छी तरह होना चाहिए, जिसमें मेरी और आपकी जग-हँसाई न हो। बाबू उदयभानु लाल थे तो वकील, पर संचय करना न जानते थे। दहेज उनके सामने कठिन समस्या थी। इसलिए जब वर के पिता ने स्वयं कह दिया कि मुझे दहेज की परवाह नहीं, तो मानो उन्हें आँखें मिल गयीं। डरते थे, न जाने किस किसके सामने हाथ फैलाना पड़े। दो-तीन महाजनों को ठीक कर रखा था। उनका अनुमान था कि हाथ रोकने पर भी बीस हजार से कम खर्च न होगें। यह आश्वासन पाकर खुशी के मारे फूले न समाए।

इसी सूचना ने अज्ञान बालिका को मुँह ढाँपकर एक कोने में बिठा रखा है। उसके हृदय में एक विचित्र शंका समा गई है, रोम-रोम में एक अज्ञात भय का संचार हो गया

है—न जाने क्या होगा? उसके मन में वे उमंगें नहीं हैं जो युवतियों की आँखों में तिरछी चितवन बनकर, होंठों पर मधुर हास्य बनकर और अंगों में आलस्य बनकर प्रकट होती हैं। नहीं, वहाँ अभिलाषाएँ नहीं हैं। वहाँ केवल शंकाएं, चिन्ताएं और भीरु कल्पनाएं हैं। यौवन का अभी तक पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ है।

कृष्णा कुछ-कुछ जानती है, कुछ-कुछ नहीं जानती। बहिन को अच्छे-अच्छे गहने मिलेंगे, द्वार पर बाजे बजेंगे, मेहमान आएंगे, नाच होगा—यह जानकर प्रसन्न है। और यह भी जानती है कि बहिन सबके गले मिलकर रोएगी, यहाँ से रो-धोकर विदा हो जाएगी। मैं अकेली रह जाऊंगी, यह जानकर दुःखी है। पर यह नहीं जानती कि यह सब किसलिए हो रहा है, माताजी और पिताजी क्यों बहिन को घर से निकालने को इतने उत्सुक हो रहे हैं। बहिन ने तो किसी को कुछ नहीं कहा, किसी से लड़ाई नहीं की, क्या इसी तरह एक दिन मुझे भी ये लोग निकाल देंगे? मैं भी इसी तरह कोने में बैठकर रोऊंगी और किसी को मुझ पर दया न आएगी? इसलिए वह भयभीत भी है।

सन्ध्या का समय था। निर्मला छत पर जाकर अकेली बैठी आकाश की ओर तृषित नेत्रों से ताक रही थी। ऐसा मन होता था कि पंख होते तो वह उड़ जाती और इन सारे झंझटों से छूट जाती। इस समय बहुधा दोनों बहिनें कहीं सैर करने जाया करती थीं। थी खाली न होती, तो बगीचे में टहला करतीं। इसलिए कृष्णा उसे खोजती फिरती । जब कहीं न पाया, तो छत पर आयी और उसे देखते ही हंसकर बोली—तुम यहाँ आकर छिपी बैठी हो और मैं तुम्हें ढूंढ़ती फिरती हूं। चलो, बग्घी तैयार करा आयी हूं।

निर्मला ने उदासीन भाव से कहा—तू जा, मैं न जाऊंगी।

कृष्णा—नहीं, मेरी अच्छी दीदी, आज जरूर चलो। देखो, कैसी ठंडी-ठंडी हवा चल रही है।

निर्मला—मेरा मन नहीं चाहता, तू चली जा।

कृष्णा की आँखें डबडबा आईं। काँपती हुई आवाज से बोली—आज तुम क्यों नहीं चलतीं? मुझसे क्यों नहीं बोलतीं? क्यों इधर-उधर छिपी-छिपी फिरती हो? मेरा जी अकेले बैठे-बैठे घबराता है। तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊंगी। यहीं तुम्हारे पास बैठी रहूंगी।

निर्मला—और जब मैं चली जाऊंगी, तब क्या करेगी? तब किसके साथ खेलेगी, किसके साथ घूमने जाएगी, बता?

कृष्णा—मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी, अकेले मुझसे यहाँ न रहा जाएगा।

निर्मला मुस्कराकर बोली—तुझे अम्मा न जाने देंगी।

कृष्णा—तो मैं भी तुम्हें न जाने दूंगी। अम्माँ से कह क्यों नहीं देतीं कि न

है—न जाने क्या होगा? उसके मन में वे उमंगें नहीं हैं जो युवतियों की आँखों में तिरछी चितवन बनकर, होंठों पर मधुर हास्य बनकर और अंगों में आलस्य बनकर प्रकट होती हैं। नहीं, वहाँ अभिलाषाएँ नहीं हैं। वहाँ केवल शंकाएं, चिन्ताएं और भीरू कल्पनाएं हैं। यौवन का अभी तक पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ है।

कृष्णा कुछ-कुछ जानती है, कुछ-कुछ नहीं जानती। बहिन को अच्छे-अच्छे गहने मिलेंगे, द्वार पर बाजे बजेंगे, मेहमान आएंगे, नाच होगा—यह जानकर प्रसन्न है। और यह भी जानती है कि बहिन सबके गले मिलकर रोएगी, यहाँ से रो-धोकर विदा हो जाएगी। मैं अकेली रह जाऊंगी, यह जानकर दु:खी है। पर यह नहीं जानती कि यह सब किसलिए हो रहा है, माताजी और पिताजी क्यों बहिन को घर से निकालने को इतने उत्सुक हो रहे हैं। बहिन ने तो किसी को कुछ नहीं कहा, किसी से लड़ाई नहीं की, क्या इसी तरह एक दिन मुझे भी ये लोग निकाल देंगे ? मैं भी इसी तरह कोने में बैठकर रोऊंगी और किसी को मुझ पर दया न आएगी ? इसलिए वह भयभीत भी है।

सन्ध्या का समय था। निर्मला छत पर जाकर अकेली बैठी आकाश की ओर तृषित नेत्रों से ताक रही थी। ऐसा मन होता था कि पंख होते तो वह उड़ जाती और इन सारे झंझटों से छूट जाती। इस समय बहुधा दोनों बहिनें कहीं सैर करने जाया करती थीं। ...ी खाली न होती, तो बगीचे में टहला करतीं। इसलिए कृष्णा उसे खोजती फिरती ... जब कहीं न पाया, तो छत पर आयी और उसे देखते ही हंसकर बोली—तुम यहाँ आकर छिपी बैठी हो और मैं तुम्हें ढूंढ़ती फिरती हूं। चलो, बग्घी तैयार करा आयी हूं।

निर्मला ने उदासीन भाव से कहा—तू जा, मैं न जाऊंगी।

कृष्णा—नहीं, मेरी अच्छी दीदी, आज जरूर चलो। देखो, कैसी ठंडी-ठंडी हवा चल रही है।

निर्मला—मेरा मन नहीं चाहता, तू चली जा।

कृष्णा की आँखें डबडबा आईं। काँपती हुई आवाज से बोली—आज तुम क्यों नहीं चलतीं? मुझसे क्यों नहीं बोलतीं? क्यों इधर-उधर छिपी-छिपी फिरती हो? मेरा जी अकेले बैठे-बैठे घबराता है। तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊंगी। यहीं तुम्हारे पास बैठी रहूंगी।

निर्मला—और जब मैं चली जाऊंगी, तब क्या करेगी? तब किसके साथ खेलेगी, किसके साथ घूमने जाएगी, बता ?

कृष्णा—मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी, अकेले मुझसे यहाँ न रहा जाएगा।

निर्मला मुस्कराकर बोली—तुझे अम्मा न जाने देंगी।

कृष्णा—तो मैं भी तुम्हें न जाने दूंगी। अम्माँ से कह क्यों नहीं देतीं कि न

पाऊँगी।

निर्मला—कह तो रही हूँ, कोई सुनता है ?

कृष्णा—तो क्या यह घर तुम्हारा नहीं है ?

निर्मला—नहीं मेरा होता, तो कोई जबरदस्ती निकाल देता ?

कृष्णा—इसी तरह मैं भी किसी दिन निकाल दी जाऊँगी ?

निर्मला—और नहीं क्या तू बैठी रहेगी? हम लड़कियाँ हैं, हमारा घर कहीं नहीं होता।

कृष्णा—चन्दर भी निकाल दिया जाएगा ?

निर्मला—चन्दर तो लड़का है, कौन निकालेगा ?

कृष्णा—तो लड़कियाँ बहुत खराब होती होंगी ?

निर्मला—खराब न होतीं तो घर से भगायी क्यों जातीं ?

कृष्णा—चन्दर इतना बदमाश है, उसे कोई नहीं भगाता। हम तुम तो बदमाशी भी नहीं करतीं।

एकाएक चन्दर धम-धम करता छत पर आ पहुँचा और निर्मला को देखकर बोला—अच्छा आप यहाँ बैठी हैं। ओहो! अब तो बाजे बजेंगे, दीदी दुल्हन बनेंगी, पालकी पर चढ़ेंगी, ओहो! ओहो! !

चन्दर का पूरा नाम चन्द्रभान सिनहा था। निर्मला से तीन साल छोटा और कृष्णा से दो साल बड़ा था।

निर्मला—चन्दर, मुझे चिढ़ाओगे तो अभी जाकर अम्मा से कह दूँगी।

चन्दर—तो चिढ़ती क्यों हो? तुम भी बाजे सुनना! ओहो! अब आप दुल्हन बनेंगी! किशनी, तू बाजे सुनेगी न? वैसे बाजे तूने कभी न सुने होंगे।

कृष्णा—क्या बैण्ड से भी अच्छे होंगे ?

चन्द्र—हाँ-हाँ, बैण्ड से भी अच्छे, हजार गुने अच्छे, लाख गुने अच्छे ! तुम जानो क्या ? एक बैण्ड सुन लिया, तो समझने लगीं कि उससे अच्छे बाजे नहीं होते। बाजे बजानेवाले लाल-लाल वर्दियाँ और काली-काली टोपियाँ पहने होंगे। ऐसे खूबसूरत मालूम होंगे कि तुमसे क्या कहूँ। आतिश-बाजियाँ भी होंगी; हवाइयाँ आसमान में उड़ जाएँगी और वह तारों में लगेंगी तो लाल,पीले, हरे व नीले तारे टूट-टूट कर गिरेंगे। बड़ा मजा आएगा।

कृष्णा—और क्या-क्या होगा चन्दर, बता मेरे भैया?

चन्द्र—मेरे साथ घूमने चल, तो रास्ते में सारी बात बता दूँ। ऐसे-ऐसे तमाशे होंगे कि देखकर तेरी आँखें खुल जाएँगी। हवा में उड़ती हुई परियाँ होंगी, सचमुच की परियाँ।

कृष्णा—अच्छा चलो, लेकिन न बताओगे तो मारूँगी।

चन्द्रभान और कृष्णा चले, पर निर्मला अकेले बैठी रह गई। कृष्णा के चले जाने से इस समय उसे बड़ा क्षोभ हुआ। कृष्णा जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, आज इतनी निष्ठुर हो गई। अकेली छोडकर चली गई। बात कोई न थी, लेकिन दुःखी हृदय दुखती हुई आँख है जिसमें हवा से भी पीड़ा होती है। निर्मला बड़ी देर तक रोती रही। भाई-बहिन माता-पिता, सभी इस भांति भूल जाएँगें, सबकी आँखें फिर जाएँगी। शायद इन्हें देखने को भी तरस जाऊँ।

बाग में फूल खिले हुए थे। मीठी-मीठ सुगन्ध आ रही थी। चैत की शीतल, मन्द समीर चल रही थी। आकाश में तारे छिटके हुऐ थे। निर्मला इन्हीं शोकमय विचारों में पड़ी-पड़ी सो गई और आँख लगते ही उसका मन स्वप्न देश में विचरने लगा। क्या देखती है कि सामने एक नदी लहरें मार रही है और वह नदी के किनारे नाव की बाट देख रही है। सन्ध्या का समय है। अँधेरा किसी भयंकर जन्तु की भाँति बढ़ता चला आता है। वह घोर चिंता में पड़ी हुई है कि कैसे नदी पार होगी, कैसे घर पहुँचूँगी? रो रही है कि रात न हो जाए, नहीं तो मैं अकेले यहाँ कैसे रहूंगी। एकाएक उसे एक सुन्दर नौका घाट की ओर आती दिखाई देती है। वह खुशी से उछल पड़ती है और ज्योंही नाव के पर पैर रखना चाहती है, उसका मल्लाह बोल उठता है—तेरे लिए यहाँ जगह नहीं ! वह मल्लाह की खुशामद करती है, उसके पैरों पड़ती है, रोती है; लेकिन वह कहे जाता है—तेरे लिए यहाँ जगह नहीं है ! एक क्षण में नाव खुल जाती है। वह चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगती है। नदी के निर्जन तट पर रात भर कैसे रहेगी, यह सोच, वह नदी में कूदकर उस नाव को पकड़ना चाहती है कि इतने में कहीं से आवाज आती है—'ठहरो, ठहरो, नदी गहरी है, डूब जाओगी। वह नाव तुम्हारे लिए नहीं है। मैं आता हूं। मेरी नाव पर बैठ जाओ, मैं उस पार पहुंचा दूंगा।' वह भयभीत होकर इधर-उधर देखती है कि यह आवाज कहाँ से आई। थोड़ी देर के बाद एक छोटी-सी डोंगी आती दिखाई देती है। उसमें न पाल है, न पतवार, न मस्तूल। पेंदा फटा हुआ, तख्ते टूटे हुए, नाव में पानी भरा हुआ है और एक आदमी उसमें से पानी उलीच रहा है। यह तो टूटी है, यह कैसे पार लगेगी? मल्लाह कहता है—तुम्हारे लिए यही भेजी गई है, जाकर बैठ जाओ। वह एक क्षण सोचती है—इसमें बैठूं ? अन्त में वह यह निश्चय करती है, बैठ जाऊँ। यहाँ अकेली पड़ी रहने से नाव में बैठ जाना फिर भी अच्छा है। किसी भयंकर जन्तु के पेट में जाने से तो यह अच्छा है कि नदी में डूब जाऊँ। कौन जाने, नाव पार पहुंच ही जाए, यही सोचकर वह प्राणों को मुट्ठी में लिए हुए नाव पर बैठ जाती है। कुछ देर तक नाव डगमगाती हुई चलती है, लेकिन प्रतिक्षण उसमें पानी भरता जाता है। वह

भी मल्लाह के साथ दोनों हाथों से पानी उलीचने लगती है। यहाँ तक कि उसके हाथ थक जाते हैं पर पानी बढ़ता ही जाता है। आखिर नाव चक्कर खाने लगती है। मालूम होता है, अब डूबी, अब डूबी। तब वह किसी अदृश्य सहारे के लिए दोनों हाथ फैलाती है, नाव नीचे से खिसक जाती है और उसके पैर उखड़ जाते हैं। वह जोर से चिल्लायी और चिल्लाते ही उसकी आँखें खुल गईं। देखा तो माता सामने खड़ी उसका कंधा पकड़कर हिला रही थी।

: २ :

बाबू उदयभानु लाल का मकान बाजार में बना हुआ है। बरामदे में सुनार के हथौड़े और कमरे में दरजी की सुइयाँ चल रही हैं। सामने नीम के नीचे, बढ़ई चारपाई बना रहा है। खपरैल में हलवाई के लिए भट्ठी खोदी गई है। मेहमानों के लिए अलग-अलग मकान ठीक किया गया है। यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि हर मेहमान के लिए एक-एक चारपाई, कुर्सी और एक-एक मेज हो। हर तीन मेहमानों के लिए एक-एक कहार रखने की तजवीज हो रही है। अभी बारात आने में एक महीने की देर है, लेकिन तैयारियाँ अभी से हो रही हैं। बारातियों का ऐसा सत्कार किया जाए कि किसी को जबान हिलाने का मौका न मिले। वे लोग भी याद करें कि किसी के यहाँ बारात में गये थे। एक पूरा मकान बरतनों से भरा हुआ है। चाय के सेट हैं, नाश्ते की तश्तरियाँ, थाल, लोटे, गिलास।

जो लोग नित्य खाट पर पड़े हुक्का पीते रहते थे, बड़ी तत्परता से काम में लगे हुए हैं। अपनी उपयोगिता सिद्ध करने का ऐसा अच्छा अवसर उन्हें फिर बहुत दिनों बाद मिलेगा। जहाँ एक आदमी को जाना होता है, पाँच दौड़ते हैं। काम कम होता है, हुल्लड़ अधिक। जरा-जरा-सी बात पर घंटों तर्क-वितर्क होता है और अन्त में वकील साहब को आकर निर्णय करना पड़ता है। एक कहता है यह घी खराब है, दूसरा कहता है इससे अच्छा बाजार में मिल जाए तो टाँग की राह निकल जाऊँ। तीसरा कहता है, इसमें तो हीक आती है, चौथा कहता है, तुम्हारी नाक ही सड़ गई है, तुम क्या जानो, घी किसे कहते हैं। जब से यहाँ आये हो, घी मिलने लगा है, नहीं तो घी के दर्शन भी न होते थे। इस पर तकरार बढ़ जाती है और वकील साहब को झगड़ा चुकाना होता है।

रात के नौ बजे थे। उदयभानु लाल अन्दर बैठे हुए खर्च का तखमीना लगा रहे थे। वह प्रायः रोज ही तखमीना लगाते थे पर रोज ही उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन करना पड़ता था। सामने कल्याणी भौंहें सिकोड़ते हुए खड़ी थी। बाबू साहब ने बड़ी देर के बाद सिर उठाया और बोले—दस हजार से कम नहीं होता, बल्कि शायद

ौर बढ़ जाए।

कल्याणी—दस दिन में पाँच हजार से दस हजार हुए । एक महीने में तो शायद एक लाख की नौबत आ जाए।

उदयभानु—क्या करूँ, जगहँसाई भी तो अच्छी नहीं लगती। शिकायत हुई तो लोग कहेंगे, नाम बड़े और दर्शन थोड़े। फिर जब वह मुझसे दहेज में एक पाई नहीं लेते, तो मेरा भी यह कर्तव्य है कि मेहमानों के आदर-सत्कार में कोई बात न उठा रखूं।

कल्याणी—जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न रख सका ? उन्हें दोष निकालने और निन्दा करने का कोई न कोई अवसर मिल ही जाता है। जिसे अपने घर सूखी रोटियाँ भी मयस्सर नहीं, वह भी बारात में जाकर तानाशाह बन बैठता है। तेल खूशबूदार नहीं, साबुन टके सेर का जाने कहाँ से बटोर लाये, कहार बात नहीं सुनते, लालटेन धुआँ देती है। कुर्सियों में खटमल हैं, चारपाइयाँ ढीली हैं। जनवासे की जगह हवादार नहीं। ऐसी-ऐसी हजारों शिकायतें होती हैं। उन्हें आप कहाँ तक रोकिएगा ? अगर यह मौका न मिला तो और कोई ऐब निकाल लिए जाएँगे। भई, यह तेल तो रंडियों के लगाने लायक है, हमें तो सादा तेल चाहिए; जनाब यह साबुन नहीं भेजा है, अपनी अमीरी की शान दिखायी है, मानो हमनो साबुन देखा ही नहीं। ये कहार नहीं, यमदूत हैं, जब देखिये सिर पर सवार। लालटेन ऐसी भेजी है कि चमकने लगती हैं; अगर दस-पांच दिन इस रोशनी में बैठना पड़े, तो आँखें फूट जाएँ। जनवासा क्या है, अभागे का भाग्य है, जिस पर चारों तरफ से झोंके आते रहते हैं। मैं तो फिर यही कहूंगी कि बारातियों के नखरे का विचार ही छोड़ दो।

उदयभानु—तो आखिर तुम मुझे क्या करने के कहती हो।

कल्याणी—कह तो रही हूँ पक्का इरादा कर लो कि मैं पाँच हजार से अधिक खर्च न करूँगा। घर में तो टका है नहीं, कर्ज का ही भरोसा ठहरा। इतना कर्ज क्यों लें कि जिंदगी में अदा न हो। आखिर मेरे और बच्चे भी तो हैं, उनके लिए भी तो कुछ चाहिए।

उदयभानु—तो तुम बैठी यही मनाया करती हो।

कल्याणी—इसमें बिगड़ने की कोई बात नहीं। मरना एक दिन सभी को है। कोई यहाँ अमर होकर थोड़े ही आया है। आँखें बन्द कर लेने से तो होने वाली बात न टलेगी रोज आंखों देखती हूँ, बाप का देहांत हो जाता है, उसके बच्चे गली-गली ठोकरें खा फिरते हैं। आदमी ऐसा काम क्यों करे?

उदयभानु ने जलकर कहा—तो अब समझ लूं कि मरने के दिन निकट आ ग यही तुम्हारी भविष्यवाणी है ! सुहाग से स्त्रियों का जी नहीं ऊबते सुना था; आज यह बात मालूम हुई। रंडापे में कोई सुख होगा ही !

कल्याणी—तुमसे दुनिया की भी कोई बात कही जाती है, तो जहर उगलने लगते हो। इसीलिए न कि जानते हो, कि इसे कहीं ठिकाना नहीं है—मेरी ही रोटियों पर पड़ी हुई है; या और कुछ? जहाँ कोई बात कही, बस सिर हो गए, मानो मैं घर की लौंडी हूँ, मेरा केवल रोटी और कपड़े का नाता है। जितना ही मैं दबती हूँ, तुम और भी दबाते हो। मुफ्त-खोर माल उड़ाएं, कोई मुंह न खोले शराब-कबाब में रुपये लुटें, कोई जबान न हिलाये। ये सारे काँटे मेरे बच्चों ही के सिर तो बोए जा रहे हैं।

उदयमानु—तो मैं तुम्हारा गुलाम हूँ ?

कल्याणी—तो क्या मैं तुम्हारी हूँ ?

उदयमानु—ऐसे मर्द और होंगे, जो औरतों के इशारे पर नाचते हैं।

कल्याणी—तो ऐसी स्त्रियाँ और होंगी, जो मर्दों की जूतियाँ सहा करती हैं।

उदयमानु—मैं कमा कर लाता हूँ; जैसे चाहूँ खर्च कर सकता हूँ। किसी को बोलने का अधिकार नहीं है।

कल्याणी—तो आप अपना घर सँभालिए, ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम है, जहां मेरी कुछ पूछ नहीं। घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी। इससे जौ भर कम नहीं ! तुम अपने मन के राजा हो, तो मैं भी अपने मन की रानी हूँ। तुम्हारा घर तुम्हें मुबारक रहे, मेरे लिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है। तुम्हारे बच्चे हैं, मारो या जिलाओ। न आँखों से देखूंगी, न पीड़ा होगी। आँखें फूटीं, पीर गयी।

उदयमानु—क्या तुम समझती हो कि तुम न सँभालोगी, तो मेरा घर ही न सँभलेगा ? मैं अकेले ऐसे-ऐसे दस घर सँभाल सकता हूँ !

कल्याणी—कौन ! अगर आज के महीनवें दिन मिट्टी में न मिल जाए तो कहना कोई कहती थी !

यह कहते-कहते कल्याणी का चेहरा तमतमा उठा। वह झमककर उठी और कमरे के द्वार की ओर चली। वकील साहब मुकदमों में तो खूब मीनमेख निकालते थे, लेकिन स्त्रियों के स्वभाव का उन्हें कुछ यों ही-सा ज्ञान था। यही एक ऐसी विद्या है, जिसमें आदमी बूढ़ा होने पर भी कोरा रह जाता है। अगर वे अब भी नरम पड़ जाते और कल्याणी का हाथ पकड़कर बिठा लेते, तो शायद वह रुक जाती; लेकिन आपसे यह तो न हो सका, उलटे चलते-चलते एक और चरका दिया। बोले—मैके का घमंड होगा?

कल्याणी ने द्वार पर रुककर पति की ओर लाल-लाल नेत्रों से देखा और बिफरकर बोली—मैकेवाले मेरी तकदीर के साथी नहीं हैं, और न मैं इतनी नीच हूँ कि उनकी रोटियों पर जा पड़ूँ।

उदयमानु—तब कहाँ जा रही हो ?

और बढ़ जाए।

कल्याणी—दस दिन में पाँच हजार से दस हजार हुए । एक महीने में तो शायद एक लाख की नौबत आ जाए।

उदयभानु—क्या करूँ, जगहँसाई भी तो अच्छी नहीं लगती। शिकायत हुई तो लोग कहेंगे, नाम बड़े और दर्शन थोड़े। फिर जब वह मुझसे दहेज में एक पाई नहीं लेते, तो मेरा भी यह कर्तव्य है कि मेहमानों के आदर-सत्कार में कोई बात न उठा रखूं।

कल्याणी—जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न रख सका ? उन्हें दोष निकालने और निन्दा करने का कोई न कोई अवसर मिल ही जाता है। जिसे अपने घर सूखी रोटियाँ भी मयस्सर नहीं, वह भी बारात में जाकर तानाशाह बन बैठता है। तेल खुशबूदार नहीं, साबुन टके सेर का जाने कहाँ से बटोर लाये, कहार बात नहीं सुनते, लालटेन धुआँ देती है। कुर्सियों में खटमल हैं, चारपाइयाँ ढीली हैं। जनवासे की जगह हवादार नहीं। ऐसी-ऐसी हजारों शिकायतें होती हैं। उन्हें आप कहाँ तक रोकिएगा ? अगर यह मौका न मिला तो और कोई ऐब निकाल लिए जाएँगे। भई, यह तेल तो रंडियों के लगाने लायक है, हमें तो सादा तेल चाहिए; जनाब यह साबुन नहीं भेजा है, अपनी अमीरी की शान दिखायी है, मानो हमने साबुन देखा ही नहीं। ये कहार नहीं, यमदूत हैं, जब देखिये सिर पर सवार। लालटेन ऐसी भेजी है कि चमकने लगती हैं; अगर दस-पाँच दिन इस रोशनी में बैठना पड़े, तो आँखें फूट जाएँ। जनवासा क्या है, अभागे का भाग्य है, जिस पर चारों तरफ से झोंके आते रहते हैं। मैं तो फिर यही कहूंगी कि बारातियों के नखरे का विचार ही छोड़ दो।

उदयभानु—तो आखिर तुम मुझे क्या करने के कहती हो।

कल्याणी—कह तो रही हूँ पक्का इरादा कर लो कि मैं पाँच हजार से अधिक खर्च न करूँगा। घर में तो टका है नहीं, कर्ज का ही भरोसा ठहरा। इतना कर्ज क्यों लें कि जिंदगी में अदा न हो। आखिर मेरे और बच्चे भी तो हैं, उनके लिए भी तो कुछ चाहिए।

उदयभानु—तो तुम बैठी यही मनाया करती हो।

कल्याणी—इसमें बिगड़ने की कोई बात नहीं। मरना एक दिन सभी को है। कोई यहाँ अमर होकर थोड़े ही आया है। आँखें बन्द कर लेने से तो होने वाली बात न टलेगी। रोज आंखों देखती हूं, बाप का देहांत हो जाता है, उसके बच्चे गली-गली ठोकरें खाते फिरते हैं। आदमी ऐसा काम क्यों करे?

उदयभानु ने जलकर कहा—तो अब समझ लूं कि मरने के दिन निकट आ गए, यही तुम्हारी भविष्यवाणी है ! सुहाग से स्त्रियों का जी नहीं ऊबते सुना था; आज यह नई बात मालूम हुई। रंडापे में कोई सुख होगा ही !

कल्याणी—तुमसे दुनिया की भी कोई बात कही जाती है, तो जहर उगलने लगते हो। इसीलिए न कि जानते हो, कि इसे कहीं ठिकाना नहीं है—मेरी ही रोटियों पर पड़ी हुई है; या और कुछ? जहाँ कोई बात कही, बस सिर हो गए, मानो मैं घर की लौंडी हूँ, मेरा केवल रोटी और कपड़े का नाता है। जितना ही मैं दबती हूँ, तुम और भी दबाते हो। मुफ्त-खोर माल उड़ाएं, कोई मुंह न खोले शराब-कबाब में रुपये लुटें, कोई जबान न हिलाये। ये सारे काँटे मेरे बच्चों ही के सिर तो बोए जा रहे हैं।

उदयभानु—तो मैं तुम्हारा गुलाम हूँ?

कल्याणी—तो क्या मै तुम्हारी हूँ?

उदयभानु—ऐसे मर्द और होगे, जो औरतों के इशारे पर नाचते हैं।

कल्याणी—तो ऐसी स्त्रियाँ और होंगी, जो मर्दों की जूतियाँ सहा करती हैं।

उदयभानु—मैं कमा कर लाता हूँ; जैसे चाहूँ खर्च कर सकता हूँ। किसी को बोलने का अधिकार नहीं है।

कल्याणी—तो आप अपना घर सँभालिए, ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम है, जहां मेरी कुछ पूछ नहीं। घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी। इससे जौ भर कम नहीं! तुम अपने मन के राजा हो, तो मैं भी अपने मन की रानी हूँ। तुम्हारा घर तुम्हें मुबारक रहे, मेरे लिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है। तुम्हारे बच्चे है, मारो या जिलाओ। न आँखों से देखूंगी, न पीड़ा होगी। आँखें फूटीं, पीर गयी।

उदयभानु—क्या तुम समझती हो कि तुम न सँभालोगी, तो मेरा घर ही न सँभलेगा? मैं अकेले ऐसे-ऐसे दस घर सँभाल सकता हूँ!

कल्याणी—कौन! अगर आज के महीनवें दिन मिट्टी में न मिल जाए तो कहना कोई कहती थी!

यह कहते-कहते कल्याणी का चेहरा तमतमा उठा। वह झमककर उठी और कमरे के द्वार की ओर चली। वकील साहब मुकदमों में तो खूब मीनमेख निकालते थे, लेकिन स्त्रियों के स्वभाव का उन्हें कुछ यों ही-सा ज्ञान था। यही एक ऐसी विद्या है, जिसमें आदमी बूढ़ा होने पर भी कोरा रह जाता है। अगर वे अब भी नरम पड़ जाते और कल्याणी का हाथ पकड़कर बिठा लेते, तो शायद वह रुक जाती; लेकिन आपसे यह तो न हो सका, उलटे चलते-चलते एक और चरका दिया। बोले—मैके का घमंड होगा?

कल्याणी ने द्वार पर रुककर पति की ओर लाल-लाल नेत्रों से देखा और बिफरकर बोली—मैकेवाले मेरी तकदीर के साथी नहीं हैं, और न मैं इतनी नीच हूँ कि उनकी रोटियों पर जा पड़ूं।

उदयभानु—तब कहाँ जा रही हो?

और बढ़ जाए।

कल्याणी—दस दिन में पाँच हजार से दस हजार हुए । एक महीने में तो शायद एक लाख की नौबत आ आए।

उदयभानु—क्या करूँ, जगहँसाई भी तो अच्छी नहीं लगती। शिकायत हुई तो लोग कहेंगे, नाम बड़े और दर्शन थोड़े। फिर जब वह मुझसे दहेज में एक पाई नहीं लेते, तो मेरा भी यह कर्तव्य है कि मेहमानों के आदर-सत्कार में कोई बात न उठा रखूं।

कल्याणी—जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न रख सका ? उन्हें दोष निकालने और निन्दा करने का कोई न कोई अवसर मिल ही जाता है। जिसे अपने घर सूखी रोटियाँ भी मयस्सर नहीं, वह भी बारात में जाकर तानाशाह बन बैठता है। तेल खूशबूदार नहीं, साबुन टके सेर का जाने कहाँ से बटोर लाये, कहार बात नहीं सुनते, लालटेन धुआँ देती है। कुर्सियों में खटमल हैं, चारपाइयाँ ढीली हैं। जनवासे की जगह हवादार नहीं। ऐसी-ऐसी हजारों शिकायते होती हैं। उन्हें आप कहाँ तक रोकिएगा ? अगर यह मौका न मिला तो और कोई ऐब निकाल लिए जाएँगे। भई, यह तेल तो रंडियों के लगाने लायक है, हमें तो सादा तेल चाहिए; जनाब यह साबुन नहीं भेजा है, अपनी अमीरी की शान दिखायी है, मानो हमनो साबुन देखा ही नहीं। ये कहार नहीं, यमदूत हैं, जब देखिये सिर पर सवार। लालटेन ऐसी भेजी है कि चमकने लगती हैं; अगर दस-पाँच दिन इस रोशनी में बैठना पड़े, तो आँखें फूट जाएँ। जनवासा क्या है, अभागे का भाग्य है, जिस पर चारों तरफ से झोंके आते रहते हैं। मैं तो फिर यही कहूंगी कि बारातियों के नखरे का विचार ही छोड़ दो।

उदयभानु—तो आखिर तुम मुझे क्या करने के कहती हो।

कल्याणी—कह तो रही हूं पक्का इरादा कर लो कि मैं पाँच हजार से अधिक खर्च न करूँगा। घर में तो टका है नहीं, कर्ज का ही भरोसा ठहरा। इतना कर्ज क्यों लें कि जिंदगी में अदा न हो। आखिर मेरे और बच्चे भी तो हैं, उनके लिए भी तो कुछ चाहिए।

उदयभानु—तो तुम बैठी यही मनाया करती हो।

कल्याणी—इसमें बिगड़ने की कोई बात नहीं। मरना एक दिन सभी को है। कोई यहाँ अमर होकर थोड़े ही आया है। आँखें बन्द कर लेने से तो होने वाली बात न टलेगी। रोज आंखों देखती हूँ, बाप का देहांत हो जाता है, उसके बच्चे गली-गली ठोकरें खाते फिरते हैं। आदमी ऐसा काम क्यों करे?

उदयभानु ने जलकर कहा—तो अब समझ लूं कि मरने के दिन निकट आ गए, यही तुम्हारी भविष्यवाणी है ! सुहाग से स्त्रियों का जी नहीं ऊबते सुना था; आज यह नई बात मालूम हुई। रंडापे में कोई सुख होगा ही !

कल्याणी—तुमसे दुनिया की भी कोई बात कही जाती है, तो जहर उगलने लगते हो। इसीलिए न कि जानते हो, कि इसे कहीं ठिकाना नहीं है—मेरी ही रोटियों पर पड़ी हुई है; या और कुछ? जहां कोई बात कही, बस सिर हो गए, मानो मैं घर की लौंडी हूं, मेरा केवल रोटी और कपड़े का नाता है। जितना ही मैं दबती हूं, तुम और भी दबाते हो। मुफ्त-खोर माल उड़ाए, कोई मुंह न खोले, शराब-कबाब में रुपये लुटें, कोई जबान न हिलाये। ये सारे कांटे मेरे बच्चों ही के सिर तो बोए जा रहे हैं।

उदयभानु—तो मैं तुम्हारा गुलाम हूं ?

कल्याणी—तो क्या मैं तुम्हारी हूं ?

उदयभानु—ऐसे मर्द और होंगे, जो औरतों के इशारे पर नाचते हैं।

कल्याणी—तो ऐसी स्त्रियाँ और होंगी, जो मर्दों की जूतियां सहा करती हैं।

उदयभानु—मैं कमा कर लाता हूं; जैसे चाहूं खर्च कर सकता हूं। किसी को बोलने का अधिकार नहीं है।

कल्याणी—तो आप अपना घर सँभालिए, ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम है, जहां मेरी कुछ पूछ नहीं। घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी। इससे जौ भर कम नहीं ! तुम अपने मन के राजा हो, तो मैं भी अपने मन की रानी हूं। तुम्हारा घर तुम्हें मुबारक रहे, मेरे लिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है। तुम्हारे बच्चे हैं, मारो या जिलाओ। न आँखों से देखूंगी, न पीड़ा होगी। आँखें फूटीं, पीर गयी।

उदयभानु—क्या तुम समझती हो कि तुम न सँभालोगी, तो मेरा घर ही न सँभलेगा ? मैं अकेले ऐसे-ऐसे दस घर सँभाल सकता हूं !

कल्याणी—कौन ! अगर आज के महीनवें दिन मिट्टी में न मिल जाए तो कहना कोई कहती थी !

यह कहते-कहते कल्याणी का चेहरा तमतमा उठा। वह झमककर उठी और कमरे के द्वार की ओर चली। वकील साहब मुकदमों में तो खूब मीनमेख निकालते थे, लेकिन स्त्रियों के स्वभाव का उन्हें कुछ यों ही-सा ज्ञान था। यही एक ऐसी विद्या है, जिसमें आदमी बूढ़ा होने पर भी कोरा रह जाता है। अगर वे अब भी नरम पड़ जाते और कल्याणी का हाथ पकड़कर बिठा लेते, तो शायद वह रुक जाती; लेकिन आपसे यह तो न हो सका, उलटे चलते-चलते एक और चरका दिया। बोले—मैके का घमंड होगा?

कल्याणी ने द्वार पर रुककर पति की ओर लाल-लाल नेत्रों से देखा और बिफरकर बोली—मैकेवाले मेरी तकदीर के साथी नहीं हैं, और न मैं इतनी नीच हूं कि उनकी रोटियों पर जा पड़ूं।

उदयभानु—तब कहां जा रही हो ?

कल्याणी—तुम यह पूछने वाले कौन होते हो ? ईश्वर की सृष्टि में असंख्य प्राणियों के लिए जगह है क्या मेरे लिए नहीं है ?

यह कहकर कल्याणी कमरे के बाहर निकल गई। आँगन में जाकर उसने एक बार आकाश की ओर देखा, मानो तारागण को साक्षी दे रही है कि मैं इस घर से कितनी निर्दयता से निकाली जा रही हूँ। रात के ग्यारह बज गए थे। घर में सन्नाटा छा गया था, दोनों बेटों की चारपाई उसी के कमरे में रहती थी। वह अपने कमरे में आयी, देखा चन्द्रभानु सोया है। सबसे छोटा सूर्यभानु चारपाई पर से उठ बैठा है। माता को देखते ही बोला—तुम तहाँ दई तीं अम्मा ? कल्याणी दूर ही खड़े-खड़े बोली—कहीं तो नहीं बेटा, तुम्हारे बाबूजी के पास गई थी।

सूर्य०—तुम तली दई, मुघे अतेले दर लदता ता। तुम त्यों तली दई तीं बताओ ?

यह कहकर बच्चे ने गोद में चढ़ने के लिए दोनों हाथ फैला दिए। कल्याणी अब अपने को न रोक सकी। मातृस्नेह के सुधाप्रवाह से उसका सन्तप्त हृदय परिप्लावित हो गया। हृदय के कोमल पौधे, जो क्रोध के ताप से मुरझा गए थे, फिर हरे हो गए। आँखें सजल हो गईं। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया और छाती से लगाकर बोली—तुमने पुकार क्यों न लिया बेटा ?

सूर्य०—पुतालट तो ता, तुम थुनती न थी। बताओ, अब तो तबी न दांओदी ?

कल्याणी—नहीं भैया, अब नहीं जाऊँगी।

यह कहकर कल्याणी सूर्यभानु को लेकर चारपाई पर लेटी। माँ के हृदय से लिपटते ही बालक निःशंक होकर सो गया। कल्याणी के मन में संकल्प-विकल्प होने लगे। पति की बातें याद आतीं तो मन होता, घर को तिलांजलि देकर चली जाऊँ। लेकिन बच्चों का मुंह देखती, तो वात्सल्य से चित्त गद्‌गद हो जाता। बच्चों को किस पर छोड़कर चली जाऊँ ? मेरे इन लालों को क़ौन पालेगा, ये किसके होकर रहेंगे ? कौन प्रातःकाल इन्हें दूध और हलवा खिलाएगा, कौन इनकी नींद सोएगा, इनकी नींद जागेगा ? तुम्हारे लिए सब कुछ सह लूंगी। निरादर-अपमान, जली-कटी, खोटी-खरी, घुड़की झिड़की सब तुम्हारे लिए सहूँगी।

कल्याणी तो बच्चे को लेकर लेटी; पर बाबू साहब को नींद न आई। चोट करने वाली बातें बड़ी मुश्किल से भूलती थीं। उफ ! यह मिजाज ? मानो मैं ही इनकी स्त्री हूँ ? बात मुंह से निकलनी मुश्किल है। अब मैं इनका गुलाम होकर रहूँ ? घर में अकेली वह रहें और बाकी जितने अपने-बेगाने हैं, सब निकाल दिये जाएँ। जला करती हैं। मनाती हैं कि यह किसी तरह मरे तो मैं अकेली आराम करूँ। दिल की बात मुंह से निकल ही आती है, चाहे कोई कितना ही छिपाये। कई दिन से देख रहा हूं, ऐसी ही

जलीकटी सुनाया करती हैं। मैके का घमण्ड होगा; लेकिन वहाँ कोई बात भी न पूछेगा। अभी सब आवभगत करते हैं। जब जाकर सिर पर पड़ जाएँगी, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा। रोती हुई आएँगी। वाह रे घमंड, सोचती हैं—मैं ही यह गृहस्थी चलाती हूँ। अभी चार दिन को कहीं चला जाऊँ तो मालूम हो जाएगा, सारी शेखी किरकिरी हो जाएगी। एक बार इनका घमण्ड तोड़ ही दूँ, जरा वैधव्य का मजा चखा दूँ, न जाने इनकी हिम्मत कैसे पड़ती है कि मुझे यों कोसने लगती हैं। मालूम होता है, प्रेम इन्हें छू नहीं गया, या समझती हैं, यह घर से इतना चिपटा हुआ है, कि इसे चाहे जितना कोसूं, टलने का नाम न लेगा। यही बात है, पर यहाँ संसार से चिपटनेवाला जीव नहीं है। जहन्नुम में जाए यह घर, जहाँ ऐसे प्राणियों से पाला पड़े! घर है या नरक! आदमी बाहर से थका-माँदा आता है, तो उसे घर में आराम मिलता है। यहाँ आराम के बदले कोसने सुनने पड़ते हैं। मेरी मृत्यु के लिए व्रत रखे जाते हैं। यह है पचीस वर्ष के दाम्पत्य जीवन का अन्त। बस, चल ही दूँ। जब देख लूंगा, इनका सारा घमंड धूल में मिल गया और मिजाज ठंडा हो गया, तो लौट आऊँगा। चार-पाँच दिन काफी होंगे। लो, तुम भी याद करोगी कि किसी से पाला पड़ा था।

यही सोचते हुए बाबू साहब उठे, रेशमी चादर गले में डाली, कुछ रुपये लिये, अपना कार्ड निकालकर एक दूसरे कुर्ते की जेब में रखा, छड़ी उठायी और चुपके से बाहर निकले। सब नौकर नींद में मस्त थे। कुत्ता आहट पाकर चौंक पड़ा और उनके साथ हो लिया।

पर यह कौन जानता था कि यह सारी लीला विधि के हाथों रची जा रही है। जीवन रंगशाला का वह निर्दय सूत्रधार किसी अगम्य गुप्त स्थान पर बैठा हुआ अपनी जटिल क्रूर क्रीड़ा दिखा रहा है। यह कौन जानता था कि नकल असल होने जा रही है, अभिनय सत्य का रूप ग्रहण करने वाला है।

निशा ने इंदु को परास्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी पैशाचिक सेना ने प्रकृति पर आतंक जमा रखा था, सद्‌वृत्तियाँ मुँह छिपाए पड़ी थीं और कुवृत्तियाँ विजय-गर्व से इठलाती फिरती थीं। वन में वन्य-जन्तु शिकार की खोज में विचर रहे थे और नगरों में नरपिशाच गलियों में मँडराते फिरते थे।

बाबू उदयभानु लाल लपके हुए गंगा की ओर चले जा रहे थे। उन्होंने अपना कुर्त्ता घाट के किनारे रखकर पाँच दिन के लिए मिर्जापुर चले जाने का निश्चय किया था। उनके कपड़े देखकर लोगों को डूब जाने का विश्वास हो जाएगा। कार्ड कुर्ते की जेब में था। पता लगाने में कोई दिक्कत न हो सकती थी। दम-के-दम सारे शहर में खबर मशहूर हो जाएगी। आठ बजते-बजते तो मेरे द्वार पर सारा शहर जमा हो जाएगा, तब

देखूँ, देवीजी क्या करती हैं।

यह सोचते हुए बाबू साहब गलियों में चले जा रहे थे। सहसा उन्हें पीछे किसी दूसरे आदमी के आने की आहट मिली; समझे कोई होगा। आगे बढ़े, लेकिन जिस गली में वह मुड़ते, उसी तरफ यह आदमी भी मुड़ता था। तब बाबू साहब को आशंका हुई कि यह आदमी मेरा पीछा कर रहा है। ऐसा आभास हुआ कि इसकी नियत साफ नहीं है। उन्होंने तुरन्त जेबी लालटेन निकाली और उसके प्रकाश में उस आदमी को देखा। एक बलिष्ठ मनुष्य कंधे पर लाठी रखे चला आता था। बाबू साहब उसे देखते ही चौंक पड़े। यह शहर का छटा हुआ बदमाश था। तीन साल पहले उस पर डाके का अभियोग चला था। उदयभानु ने उस मुकदमे में सरकार की ओर से पैरवी की थी और इस बदमाश को तीन साल की सजा दिलाई थी। तभी से यह इनके खून का प्यासा हो रहा था। कल ही छूटकर आया था। आज दैवात बाबू साहब अकेले रात को दिखाई दिए तो सोचा यह इनसे दाँव चुकाने का अच्छा मौका है। ऐसा मौका शायद ही फिर मिले। तुरन्त पीछे हो लिया और वार करने की घात में था कि बाबू साहब ने जेबी लालटेन जलायी। बदमाश जरा ठिठककर बोला—क्यों बाबूजी, पहचानते हो न ? मैं हूँ मतई।

बाबू साहब ने डपटकर कहा—तुम मेरे पीछे-पीछे क्यों आ रहे हो ?

मतई—क्यों, किसी को रास्ते चलने की मनाई है ? यह गली तुम्हारे बाप की है ?

बाबू साहब जवानी में कुश्ती लड़े थे, अब भी हृष्ट-पुष्ट आदमी थे। दिल के भी कच्चे न थे। छड़ी सँभालकर बोले—अभी शायद मन नहीं भरा। अब की सात साल को जाओगे।

मतई—मैं सात साल को जाऊँगा या चौदह साल को, पर तुम्हें जीता न छोड़ूंगा। हाँ, अगर तुम मेरे पैरों पर गिरकर कसम खाओ कि अब किसी को सजा न कराऊँगा, तो छोड़ दूँ। बोलो, मंजूर है ?

उदयभानु—तेरी शामत तो नहीं आयी ?

मतई—शामत मेरी नहीं आयी, तुम्हारी आयी है। बोलो, खाते हो कसम—एक !

उदयभानु—तुम हटते हो कि मैं पुलिसमैन को बुलाऊँ ?

मतई—दो !

उदयभानु—(गरजकर) हट जा बदमाश, सामने से।

मतई—तीन !

मुँह से 'तीन' शब्द निकलते ही बाबू साहब के सिर पर लाठी का ऐसा तुला हुआ हाथ पड़ा कि वह अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े। मुँह से केवल इतना ही निकला—हाय !

मार डाला! मतई ने समीप आकर देखा, तो सिर फट गया था और खून की धार निकल रही थी। नाड़ी का कहीं पता न था। समझ गया कि काम तमाम हो गया। उसने कलाई से सोने की घड़ी खोल ली, कुरते से सोने के बटन निकाल लिये, उँगली से अँगूठी उतारी और अपनी राह चला गया, मानो कुछ हुआ ही नहीं। हाँ, इतनी दया की कि लाश रास्ते से घसीटकर किनारे डाल दी।

हाय! बेचारे क्या सोचकर चले थे, क्या हो गया। जीवन, तुमसे ज्यादा असार भी दुनिया में कोई वस्तु है? क्या यह उस दीपक की भाँति ही क्षण-भंगुर नहीं है, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है? पानी के एक बुलबुले को देखते हो, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है; जीवन में उतना सार भी नहीं! साँस का भरोसा ही क्या और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं? नहीं जानते, नीचे जाने वाली साँस ऊपर आएगी या नहीं, पर सोचते इतनी दूर की हैं मानो हम अमर हैं!

: ३ :

विधवा का विलाप और अनाथों का रोना सुनाकर हम पाठकों का दिल दुखाएँगे। जिसके ऊपर पड़ती है, वह रोता है, विलाप करता है, पछाड़ खाता है। यह कोई नई बात नहीं। हाँ, आप चाहें तो कल्याणी की उस घोर मानसिक यातना का अनुमान कर सकते हैं, जो उसे इस विचार से हो रही थी कि मैं ही अपने प्राणाधार की घातिका हूँ। वे वाक्य, जो क्रोध के आवेश में उनके असंयत मुख से निकले थे, अब उसके हृदय को बाणों की भाँति छेद रहे थे। अगर पति ने उसकी गोद में कराह-कराहकर प्राणत्याग किए होते, तो उसे संतोष होता कि मैंने उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया। शोकाकुल हृदयों के लिए इससे ज्यादा सांत्वना और किसी बात से नहीं होती। उसे इसी विचार से कितना संतोष होता कि स्वामी मुझसे प्रसन्न हो गए, अंतिम समय तो उनके हृदय में पूरा प्रेम बना रहा। कल्याणी को यह संतोष न था। वह सोचती थी—हा! मेरी पचीस बरस की तपस्या निष्फल हो गई। मैं अन्त समय अपने प्राण-पति के प्रेम से वंचित हो गई। अगर मैंने उन्हें ऐसे कठोर शब्द न कहे होते, तो वह कदापि रात को घर से न जाते। न जाने उनके मन में क्या-क्या विचार आए हों? उनके मनोभावों की कल्पना करके और अपने अपराधों को बढ़ा-बढ़ाकर वह आठो पहर कुढ़ती रहती थी। जिन बच्चों पर वह प्राण देती थी, अब उनकी सूरत से चिढ़ती। इन्हीं के कारण मुझे अपने स्वामी से रार मोल लेनी पड़ी। ये मेरे शत्रु हैं। जहाँ आठों पहर कचहरी-सी लगी रहती थी, वहाँ अब खाक उड़ती है। वह मेला ही उठ गया। जब

खिलानेवाला ही न रहा, तो खानेवाले कैसे पड़े रहते ? धीरे-धीरे एक महीने के अन्दर सभी भांजे-भतीजे विदा हो गए। जिनका दावा था कि हम पानी की जगह खून बहानेवालें में हैं, वे ऐसा सरपट भागे कि पीछे फिरकर भी न देखा। दुनिया ही दूसरी हो गई। जिन बच्चों को देखकर प्यार करने को जी चाहता था, उनके चेहरे पर अब मक्खियाँ भिनभिनाती थीं। न जाने वह कान्ति कहाँ चली गई।

शोक का आवेग कम हुआ, तो निर्मला के विवाह की समस्या उपस्थित हुई। कुछ लोगों की सलाह हुई कि विवाह इस साल रोक दिया जाए। कल्याणी ने कहा—इतनी तैयारियों के बाद विवाह को रोक देने से सब किया-धरा मिट्टी में मिल जाएगा और दूसरे साल फिर यही तैयारियाँ करनी पड़ेंगी, जिसकी कोई आशा नहीं। विवाह कर ही देना अच्छा है। कुछ लेना-देना तो है ही नहीं। बारातियों के सेवा-सत्कार का काफी सामान हा चुका है, विलम्ब करने में हानि-ही-हानि है। अतएव महाशय भालचन्द्र को शोक सूचना के साथ यह सन्देश भी भेज दिया गया। कल्याणी ने अपने पत्र में लिखा—इस अनाथिनी पर दया कीजिए और डूबती हुई नाव को पार लगाइए। स्वामीजी के मन में बड़ी-बड़ी कामनाएँ थीं, किन्तु ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था। अब मेरी लाज आपके हाथ में है। कन्या आपकी हो चुकी। मैं आप लोगों की सेवा-सत्कार करने को अपना सौभाग्य समझती हूँ, लेकिन यदि इसमें कुछ कमी हो, कुछ त्रुटि पड़े, तो मेरी दशा का विचारकर क्षमा कीजिएगा। मुझे विश्वास है कि आप स्वयं इस अनाथिनी की निंदा न होने देंगे, आदि।

कल्याणी ने यह पत्र डाक से न भेजा, बल्कि पुरोहित से कहा—आपको कष्ट तो होगा, पर आप स्वय जाकर यह पत्र दीजिए और मेरी ओर से बहुत विनय के साथ कहिएगा कि जितने कम आदमी आएँ, उतना ही अच्छा। यहाँ कोई प्रबन्ध नहीं है। पुरोहित मोटेराम यह संदेश लेकर तीसरे दिन लखनऊ जा पहुँचे।

संध्या का समय था। बाबू भालचन्द्र दीवानखाने के सामने आराम कुर्सी पर नंगधड़ंग लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। बहुत ही स्थूल ऊँचे कद के आदमी थे। ऐसा मालूम होता था कि काला देव है, या कोई हब्शी अफ्रीका से पकड़कर आया है। सिर से पैर तक एक ही रंग था—काला। चेहरा इतना स्याह था कि मालूम न होता था कि माथे का अंत कहाँ है ओर सिर का आरम्भ कहां। बस, कोयले की एक सजीव मूर्ति थी। आपको गर्मी बहुत सताती थी। दो आदमी खड़े पंखा झल रहे थे, उस पर भी पसीने का तार बँधा हुआ था। आप आबकारी में एक ऊँचे ओहदे पर थे। ६०० रु. वेतन मिलता था। ठेकेदारों से खूब रिश्वत लेते। ठेकेदार शराब के नाम पानी बेचें, चौबीसों घंटे दूकान खुली रखें, आपको खुश रखना काफी था। सारा कानून आपकी खुशी थी।

इतनी भयंकर मूर्ति थी कि [illegible]
थे—बालक और स्त्रियां नहीं, पुरुष तक [illegible]
कि अँधेरी रात में तो उन्हें कोई देख [illegible]
जाती थी। केवल आँखों का रंग [illegible]
है, वैसे ही आप भी पांच बार शराब [illegible]
फिर आप तो शराब के [illegible]
जब प्यास लगती, शराब पी लेते। [illegible]
दोनों में परस्पर विरोध है। [illegible]

बाबू साहब ने पंडितजी को देखते ही [illegible]
है? आइए, आइए। धन्य भाग्य! [illegible]
गुरदीन, छकौड़ी, भवानी, [illegible]
रामगुलाम, भवानी, छकौड़ी, गुरदीन [illegible]
भर आदमी हैं, पर मौके पर एक भी [illegible]
आते हैं। आपके वास्ते कुर्सी लाओ।

बाबू साहब ने इन पदों का [illegible]
फलनेवाले दोनों आदमियों में से किसी को कुर्सी [illegible]
बाद एक काला आदमी [illegible]
कौन न होई। कहाँ तक उपकार [illegible]

मोटे०—बड़े मन, जरूर कुर्सी लाओ। [illegible]
होने लगता है। कहिए पंडितजी [illegible]

मोटेराम—क्या [illegible]
गया।

उठा जाता हूं। किसी काम में दिल नहीं लगता। भाई के मरने का रंज भी इससे कम ही होता। आदमी नहीं, हीरा था।

मोटे०—सरकार, नगर में अब ऐसा कोई रईस नहीं रहा।

माल०-मैं खूब जानता हूं पंडितजी, आप मुझसे क्या कहते हैं ! ऐसा आदमी लाख-दो-लाख में एक होता है। जितना मैं उनको जानता था, उतना दूसरा नहीं जान सकता। दो-ही-तीन बार की मुलाकात में उनका भक्त हो गया और मरते दम तक रहूंगा। आप समधिन साहब से कह दीजिएगा, मुझे दिली रंज है।

मोटे०—आपसे ऐसी ही आशा थी। आप जैसे सज्जनों के दर्शन दुर्लभ हैं, नहीं तो आज कौन बिना दहेज का विवाह करता है !

माल०—महाराज, दहेज की बातचीत ऐसे सत्यवादी पुरुषों से नहीं की जाती। उनसे तो सम्बन्ध हो जाना ही लाख रुपये के बराबर है। मैं इसको अपना अहोभाग्य समझता हूँ। हा ! कितनी उदार आत्मा थी। रुपये को तो उन्होंने कुछ समझा ही नहीं, तिनके के बराबर परवाह नहीं की। बुरा रिवाज है, बेहद बुरा ! बस चले तो दहेज लेनेवालों और दहेज देनेवालें दोनों ही को गोली मार दूं, चाहे फाँसी क्यों न हो जाए ! पूछो, आप लड़के का विवाह करते हैं या उसे बेचते हैं ? अगर आपको लड़के की शादी में दिल खोलकर खर्च करने का अरमान है, तो शौक से खर्च कीजिए; लेकिन जो कुछ , अपने बल पर। यह क्या कि कन्या के पिता का गला रेतिए। नीचता है, घोर है। मेरा बस चले, तः इन पाजियों को गोली मार दूँ।

मोटे०—धन्य हो सरकार। भगवान् ने आपको बड़ी बुद्धि दी है। यह धर्म का प्रताप है ! मालकिन की इच्छा है कि विवाह का मुहूर्त वही रहे, और तो उन्होंनो सारी बातें पत्र में लिख दी हैं। बस, अब आप ही उबारें तो हम उबर सकते हैं। इस तरह तो बारात में जितने सज्जन आएँगें, उनका सेवा-सत्कार हम करेंगे ही; लेकिन परि[illegible]ति अब बहुत बदल गई है सरकार, कोई करने-धरनेवाला नहीं है। बस, ऐसी बात कीजिए कि वकील साहब के नाम पर बट्टा न लगे।

मालचंद्र एक मिनट तक आँखें बन्द किए बैठे रहे, फिर एक लम्बी साँस खींचकर, बोले—ईश्वर को मंजूर ही न था कि यह लक्ष्मी मेरे घर आती, नहीं तो क्या यह वज्र गिरता ? सारे मनसूबे खाक में मिल गए। फूला न समाता था कि वह शुभ अवसर निकट आ रहा है, पर क्या जानता था कि ईश्वर के दरबार में कुछ षड्यंत्र रचा जा रहा है। मरनेवाले की याद ही रुलाने के लिए काफी है। उसे देखकर जख्म भी हरा हो जाएगा। उस दशा में न जाने क्या कर बैठूं। इसे गुण समझिए या दोष, कि जिससे एक बार मेरी घनिष्ठता हो गई, फिर उसकी याद चित्त से नहीं उतरती। अभी तो खैर इतना

ही है कि उनकी सूरत आँखों के सामने नाचती रहती है; लेकिन वह कन्या घर में आ गई, तब मेरा जिन्दा रहना कठिन हो जाएगा। सच मानिये, रोते-रोते मेरी आँखें फूट जाएँगी। जानता हूं, रोना-धोना व्यर्थ है। जो मर गया, वह लौटकर नहीं आ सकता ! सब्र करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। लेकिन दिल से मजबूर हूं। उस अनाथ बालिका को देखकर मेरा कलेजा फट जाएगा।

मोटे०—ऐसा न कहिए सरकार ! वकील साहब नहीं हैं तो क्या, आप तो हैं। अब आप ही उसके पिता तुल्य हैं। वह अब वकील साहब की कन्या नहीं, आपकी कन्या है। आपके हृदय के भाव तो कोई जानता नहीं। लोग समझेंगे, वकील साहब का देहान्त हो जाने के कारण आप वचन से फिर गए। इसमें आपकी बदनामी होगी, चित्त को समझाइए और हँसी-खुशी कन्या का पाणिग्रहण करा लीजिए। हाथी मरे तो नौ लाख का। लाख विपत्ति पड़ी है, लेकिन मालकिन आप लोगों का सेवा-सत्कार करने में कोई बात न उठा रखेगी।

बाबू साहब समझ गए कि पंडित मोटेराम कोरे पोथी के ही पंडित नहीं, वरन् व्यवहार नीति में भी चतुर हैं। बोले—पंडितजी, हलफ से कहता हूं, मुझे उस लड़की से जितना प्रेम है, उतना अपनी लड़की से भी नहीं है, लेकिन जब ईश्वर को मंजूर नहीं है, तो मेरा क्या बस है ? यह मृत्यु एक प्रकार की अमंगल सूचना है, जो विधाता की ओर से मिली है। यह किसी आनेवाली मुसीबत की आकाशवाणी है। विधाता स्पष्ट रीति से कह रहा है। नहीं, जान-बूझकर मक्खी नहीं निगली जाती। समधिन साहब को समझाकर कह दीजिएगा, मैं उनकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूं, लेकिन इसका परिणाम अच्छा न होगा। स्वार्थ के वश में होकर मैं अपने परम मित्र की संतान के साथ यह अन्याय नहीं कर सकता।

इस तर्क ने पंडितजी को निरुत्तर कर दिया। वादी ने वह तीर छोड़ा था, जिसका उनके पास कोई काट नहीं था। शत्रु ने उन्हीं के हथियार से उन पर वार किया और वह उसका प्रतिकार न कर सकते थे। वह अभी कोई जवाब सोच ही रहे थे कि बाबू साहब ने फिर नौकरों को पुकारना शुरू किया—अरे ! तुम सब गायब हो ? . . झगडू छकौड़ी, भवानी, गुरदीन, रामगुलाम ! एक भी नहीं बोलता। सबके सब मर गये। पंडितजी के वास्ते पानी-वानी की फिक्र है ? न-जाने इन सबों को कोई कहाँ तक समझाए। अक्ल छू तक नहीं गई। देख रहे हैं कि एक महाशय दूर से थकेमांदे चले आ रहे हैं, पर किसी को जरा भी परवाह नहा। लाओ, पानी-वानी रखो। पंडितजी, आपके लिए शर्बत बनवाऊँ या फलाहारी मिठाई मँगवा दूं ?

मोटेरामजी मिठाइयों के विषय में किसी तरह का बंधन न स्वीकार करते थे।

उन । सिद्धांत था कि घृत से सभी वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं। रसगुल्ले और बेसन के लड्डू उन्हें बहुत प्रिय थे, पर शर्बत से उन्हें रुचि न थी। पानी से पेट भरना उनके नियम के विरुद्ध था, सकुचाते हुए बोले—शर्बत पीने की मुझे आदत नहीं, मिठाई खा लूंगा।

भाल०—फलहारी न?

मोटे०—इसका मुझे विचार नहीं।

भाल०—है तो यही बात। छूत-छात सब ढकोसला है। मैं स्वयं नहीं मानता। अरे, अभी तक कोई नहीं आया ? छकौड़ी, भवानी, गुरदीन, रामगुलाम कोई तो बोलो।

अबकी भी वही बूढ़ा कहार खाँसता हुआ आकर खड़ा हो गया और बोला—सरकार, मोर तलब दै दीन जाए। ऐसी नौकरी मोसे न होई। कहाँ लौ दौरी ? दौरत-दौरत गोड़ पिराय लागत है।

भाल०—काम कुछ करो या न करो, पर तलब पहले चाहिए। दिनभर पड़े-पड़े खाँसा करो, तलब तो तुम्हारी चढ़ रही है। जाकर बाजार से एक आने की ताजी मिठाई ला। दौड़ता हुआ जा।

कहार को यह हुक्म देकर बाबू साहब घर में गये और स्त्री से बोले—वहां से एक पंडितजी आये हैं। यह खत लाये हैं, जरा पढ़ो तो।

पत्नी का नाम रँगीलीबाई था। गोरे रंग की प्रसन्न मुख महिला थीं। रूप और यौवन उनसे विदा हो रहे थे, पर किसी प्रेमी मित्र की भाँति मचल-मचलकर तीस साल तक जिसके गले से रहे, उसे छोड़ते न बनता था।

रँगीलीबाई बैठी पान लगा रही थीं। बोली—कह दिया न कि हमें वहाँ करना मंजूर नहीं।

भाल०—हाँ, कह तो दिया, पर मारे संकोच के मुँह से शब्द न निकलता था। झूठ-मूठ का हीला करना पड़ा।

रँगीली—साफ बात कहने में संकोच क्या ? हमारी इच्छा है, नहीं करते। किसी का कुछ लिया तो नहीं है ? जब दूसरी जगह दस हजार नगद मिल रहे हैं, तो वहाँ क्यों करूँ ? उनकी लड़की कोई सोने की थोड़े ही है। वकील साहब जीते होते, तो शरमाते-शरमाते पन्द्रह-बीस हजार दे मरते। अब वहाँ क्या रखा है ?

भाल०—एक दफा जबान देकर मुकर जाना अच्छी बात नहीं। कोई मुख से कुछ न कहे, पर बदनामी हुए बिना नहीं रहती। मगर तुम्हारी जिद से मजबूर हूँ।

रँगीलीबाई ने पान खाकर खत खोला और पढ़ने लगीं। हिन्दी का अभ्यास बाबू साहब को तो बिलकुल न था और यद्यपि रँगीलीबाई भी शायद ही कभी किताब पढ़ती

हो, पर खत-खत पढ़ लेती थी। पहली ही पंक्ति पढ़कर उनकी आँखें सजल हो गईं, और पत्र समाप्त किया तो उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। एक-एक शब्द करुणा के रस में डूबा था। एक-एक अक्षर से दीनता टपक रही थी। रँगीलीबाई की कठोरता पत्थर की नहीं, लाख की थी, जो एक ही आँच से पिघल जाती है। कल्याणी के करुणोत्पादक शब्दों ने उनके स्वार्थ मण्डित हृदय को पिघला दिया। रुँधे हुए कण्ठ से बोलीं—अभी ब्राह्मण बैठा है न ?

मालचढ़ पत्नी के आँसुओं को देख-देख सूखे जाते थे। अपने ऊपर झल्ला रहे थे कि नाहक मैंने यह खत इसे दिखाया। इसकी जरूरत ही क्या थी ? इतनी बड़ी भूल उनसे कभी नहीं हुई थी। संदिग्ध भाव से बोले—शायद बैठा हो, मैंने तो जाने को कह दिया था।

रँगीली ने खिड़की से झाँककर देखा। पंडित मोटेरामजी बगुले की तरह ध्यान लगाए बाजार के रास्ते की ओर ताक रहे थे। लालसा से व्यग्र होकर यह पहलू बदलते, कभी वह पहलू। 'एक आने की मिठाई' ने तो आशा की कमर पहले ही तोड़ दी थी, उसमें भी यह विलम्ब ? दारुण दशा थी। उन्हें बैठे देखकर रँगीली बोली—है, अभी है। जाकर कह दो, हम विवाह करेंगे। बेचारी बड़ी मुसीबत में है।

भाल०—तुम भी कभी-कभी बच्चों की सी बातें करने लगती हो। अभी उससे कह आया हूँ कि मुझे विवाह मंजूर नहीं। एक लम्बी भूमिका बाँधनी पड़ी। अब जाकर यह संदेश कहूँगा, तो वह अपने दिल में क्या कहेगा, जरा सोचो तो ? यह शादी-विवाह का मामला है। लड़कों का खेल नहीं कि अभी एक बात की, अभी पलट गए। भले आदमी की बात न हुई दिल्लगी हुई।

रँगीली—अच्छा तुम अपने मुँह से न कहो। उस ब्राह्मण को मेरे पास भेज दो। मैं इस तरह समझा दूँगी कि तुम्हारी बात भी रह जाए और मेरी भी। इसमें तो कोई आपत्ति नहीं है ?

भाल०—तुम अपने सिवाय सारी दुनिया को नादान समझती हो। तुम कहो या मैं कहूँ बात एक है। जो बात तय हो गई, वह तय हो गई। अब मैं उसे फिर नहीं उठाना चाहता। तुम्हीं तो बार-बार कहती थी कि मैं वहाँ न करूँगी। तुम्हारे ही कारण मुझे अपनी बात खोनी पड़ी। अब तुम फिर रंग बदलती हो। यह तो मेरी छाती पर मूंग दलना है। आखिर तुम्हें कुछ तो मेरे मान-अपमान का विचार करना चाहिए।

रँगीली—तो मुझे क्या मालूम था कि विधवा की दशा इतनी हीन हो गई है ? तुम्हीं ने तो कहा था कि उसने पति की सारी सम्पत्ति छिपा रखी है और अपनी गरीबी का ढोंग रचकर काम निकालना चाहती है। एक ही छटी हुई औरत है। तुमने जो कहा, वह मैंने

मान लिया। भलाई करके बुराई करने में तो लज्जा और संकोच है। बुराई करके भलाई करने में कोई संकोच नहीं। अगर तुम 'हाँ' कर आए होते और मैं 'नहीं' करने की कहती, तो तुम्हारा संकोच उचित होता। 'नहीं' करने के बाद 'हाँ' करने में तो अपना बड़प्पन है।

मालo—तुम्हें बड़प्पन मालूम होता हो, मुझे तो लुच्चापन ही मालूम होता है। फिर तुमने यह कैसे मान लिया कि मैंने वकलाइन के विषय में जो बात कही थी, वह झूठी थी ? क्या यह पत्र देखकर ? तुम जैसी खुद सरल हो, वैसे ही दूसरों को भी सरल समझती हो।

रँगीली—इस पत्र में बनावट नहीं मालूम होती। बनावट की बात दिल में चुभती नहीं। उसमें बनावट की गन्ध अवश्य रहती है।

मालo—बनावट की बात ऐसी चुभती है कि सच्ची बात उसके सामने बिल्कुल फीकी मालूम होती है। यह किस्से कहानियाँ लिखनेवाले, जिनकी किताबें पढ़ पढ़कर तुम घंटों रोती रहो, क्या सच्ची बातें लिखते हैं ? सरासर झूठ का तूमार बाँधते हैं ! यह भी एक कला है।

रँगीली—क्यों जी, तुम मुझसे उड़ते हो, दाई से पेट छिपाते हो ? मैं तुम्हारी मान जाती हूं तो तुम समझते हो, इसे चकमा दिया; मगर मैं तुम्हारी एक-एक नस हूँ। तुम अपना ऐब मेरे सिर मढ़कर खुद बेदाग बचना चाहते हो, बोलो, कुछ झूठ कहती हूं ? जब वकील साहब जीते थे तो तुमने सोचा था कि ठहराव की जरूरत ही क्या है, वह खुद ही जितना उचित समझेंगे देंगे, बल्कि बिना ठहराव के और भी ज्याद मिलने की आशा होगी। अब वकील साहब का देहान्त हो गया तो तरह-तरह के हीले हवाले करने लगे। यह भलमनसी नहीं, छोटापन है। इसका इलाज भी तुम्हारे सिर है। मैं शादी-वियाह के नगीच न जाऊँगी। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो। ढोंगी आदमियों से मुझे चिढ़ है। जो बात करो, सफाई से करो, बुरा हो या अच्छा। 'हाथी के दाँत दिखाने के और, खिलाने के और' वाली नीति पर चलना तुम्हें शोभा नहीं देता। बोलो, अब भी वहां शादी करते हो या नहीं ?

मालo—जब मैं बेईमान, दगाबाज और झूठा ठहरा, तो मुझसे पूछना ही क्या ! मगर खूब पहचानती हो आदमियों को। क्या कहना है, तुम्हारी इस सूझबूझ की बलैया ले लें।

रँगीली—हो बड़े हयादार, अब भी नहीं शर्माते। ईमान से कहो, मैंने बात ताड़ ली कि नहीं !

मालo—अजी जाओ, वह दूसरी औरतें होती हैं, जो मर्दों को पहचानती हैं। अब

तक मैं यही समझता था कि औरतों की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म होती है; पर आज यह विश्वास उठ गया और महात्माओं ने औरतों के विषयों में जो तत्व की बातें कही हैं, उनको मानना पड़ा।

रँगीली —ज़रा आइने में अपनी सूरत तो देख आओ, तुम्हें मेरी कसम है ! ज़रा देख लो, कितना झेंपे हुए हो।

माल०—सच कहना, कितना झेंपा हुआ हूं ?

रँगीली —उतना ही, जितना कोई भलामानस चोर चोरी खुल जाने पर झेंपता है।

माल०—खैर, मैं झेंपा ही सही; पर शादी वहाँ न होगी।

रँगीली —मेरी बला से, जहाँ चाहे करो। क्यों, भुवन से एक बार क्यों नहीं पूछ लेते ?

माल०—अच्छी बात है, उसी पर फैसला रहा।

रँगीली —ज़रा इशारा न करना।

माल०—अजी, मैं उसकी तरफ ताकूँगा भी नहीं।

संयोग से ठीक इसी वक्त भुवनमोहन भी आ पहुँचा। ऐसे सुन्दर, सुडौल, बलिष्ठ युवक कालेजों में बहुत कम देखने में आते हैं। बिलकुल माँ को पड़ा था, वही गोरा-चिट्टा रंग, वही पतले-पतले गुलाब की पत्ती के से ओठ, वही चौड़ा माथा, वही बड़ी-बड़ी आँखें, डील-डौल बाप का-सा था। ऊँचा कोट, ब्रीचेज टाई, बूट हैट उस पर खूब खिल रहे थे। हाथ में एक स्टिक थी। चाल में जवानी का गरूर था, आँखों में आत्मगौरव। रँगीली ने कहा—आज बड़ी देर लगाई तुमने। यह देखो, तुम्हारी ससुराल से यह खत आया है। तुम्हारी सास ने लिखा है। साफ-साफ बतला दो, अभी सबेरा है। तुम्हें वहाँ शादी करना मंजूर है या नहीं ?

भुवन—शादी करनी तो चाहिए अम्मां, पर मैं करूँगा नहीं।

रँगीली —क्यों ?

भुवन —इसमें शर्म की कौन-सी बात है ? रुपये किसे काटते हैं ? लाख रुपये तो लाख जन्म में भी न जमा कर पाऊँगा। इस साल पास भी हो गया, तो कम-से-कम पाँच साल तक रुपये की सूरत नजर न आयेगी। फिर सौ-दो सौ रुपये महीने कमाने लगूँगा। पाँच-छः सौ तक पहुँचते-पहुँचते उम्र के तीन भाग बीत जायेंगे। रुपए जमा करने की नौबत न आएगी। दुनिया का कुछ मजा न उठा सकूँगा। किसी धनी लड़की से शादी हो जाती, तो चैन से कटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता, बस एक लाख नगद हो या फिर कोई ऐसी जायदादवाली बेवा मिले, जिसके एक ही लड़की हो।

रँगीली—चाहे औरत कैसी ही मिले।

भुवन —धन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे वह गालियाँ भी सुनाए, तो भी चूँ न करूँ। दुधारू गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है।

बाबू साहब ने प्रशंसासूचक भाव से कहा—हमें उन लोगों के साथ सहानुभूति है और दुःख है कि ईश्वर ने उन्हें विपत्ति में डाला; लेकिन बुद्धि से काम लेकर ही कोई निश्चय करना चाहिए। हम कितने फटे-हालों जायें, फिर भी अच्छी-खासी बारात हो जाएगी। वहाँ भोजन का ठिकाना नहीं। सिवा इसके कि लोग हँसें, और कोई नतीजा न निकलेगा।

रँगीली—तुम बाप-पूत एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो। दोनों उस गरीब लड़की के ऊपर छुरी फेरना चाहते हो।

भुवन —जो गरीब है, उसे गरीबों ही के यहां सम्बन्ध करना चाहिए। अपनी हैसियत से बढ़कर.............

रँगीली—चुप भी रह, आया है वहाँ से हैसियत लेकर। तुम कहां के ऐसे धन्नासेठ हो ? कोई आदमी द्वार पर आ जाए, तो एक लोटे पानी को तरस जाए। बड़ी हैसियत वाले बने हो !

यह कहकर रँगीली वहां से उठकर रसोई का प्रवन्ध करने चली गई।

भुवनमोहन मुस्कराता हुआ अपने कमरे में चला गया और बाबू साहब मूँछों पर देते हुए बाहर आए कि मोटेराम को अन्तिम निश्चय सुना दें, पर उनका कहीं पता था।

मोटेरामजी कुछ देर तक तो कहार की बाट देखते रहे, जब उसके आने में बहुत देर हुई, तो उनसे बैठा न गया। सोचा, यहां बैठे-बैठे काम न चलेगा, कुछ उद्योग करना चाहिए। भाग्य के भरोसे यहां अड़ी किए बैठे रहे तो भूखों मर जाएँगे। यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलने की ! चुपके से लकड़ी उठायी और जिधर कहार गया था, उसी तरफ चले। बाजार थोड़ी दूर पर था, एक क्षण में जा पहुँचे। देखा तो बुड्ढा एक हलवाई की दूकान पर बैठा चिलम पी रहा था। उसे देखते ही आपने बेतकल्लुफी से कहा—अभी कुछ तैयार नहीं है क्या महरा ? सरकार वहाँ बैठे बिगड़ रहे हैं कि जाकर सो गया या कहीं ताड़ी पीने लगा। मैंने कहा—'सरकार यह बात नहीं, बुड्ढा आदमी है, आते-ही-आते तो आएगा।' बड़े विचित्र जीव हैं। न जाने, इनके यहां कैसे नौकर टिकते हैं।

कहार—मुझे छोड़कर आज तक दूसरा कोई टिका नहीं, और न टिकेगा। साल भर से तलब नहीं मिली। किसी को तलब नहीं देते। जहाँ किसी ने तलब माँगी और वे लगे उसे डाँटने। बेचारा नौकरी छोड़कर भाग जाता है। वे दोनों आदमी जो पंखा झल रहे थे, सरकारी नौकर हैं। सरकार से दो अर्दली मिले हैं न ! इसी से पड़े हुए हैं। मैं भी

पैसे हों, ले लीजिएगा।

मोटे०—आप ही के हलवाई की दूकान पर खा आया था, वह जो नुक्कड़ पर बैठता है।

माल०—कितने पैसे देने पड़े ?

मोटे०—आपके हिसाब में लिखा दिए हैं।

माल०—जितनी मिठाइयाँ ली हों, मुझे बता दीजिए; नहीं तो पीछे से बेईमानी करने लगेगा। एक ही ठग है।

मोटे०—कोई ढाई सेर मिठाई थी और आधा सेर रबड़ी।.

बाबू साहब ने विस्फारित नेत्रों से पंडितजी को देखा, मानो कोई अचम्भे की बात सुनी हो। तीन सेर तो कभी यहाँ महीने-भर का टोटल भी न होता था और यह महाशय एक बार में कोई चार रुपये का माल उड़ा गए। अगर एक-आधा दिन रह गए, तो बधिया बैठ जायगी। पेट है या शैतान की कब्र ? तीन सेर ! कुछ ठिकाना है। उद्विग्न दशा में दौड़े हुए अन्दर गए और रँगीली से बोले—कुछ सुनती हो, यह महाशय कल तीन सेर मिठाई उड़ा गए। तीन सेर पक्की तौल।

रँगीलीबाई ने विस्मित होकर कहा—अजी नहीं, तीन सेर भला क्या खा जाएगा ! आदमी है या बैल ?

माल०—तीन सेर तो अपने मुँह से कह रहा है। चार से कम न खायी होगी, पक्की तौल !

रँगीली—पेट में सनीचर है क्या ?

माल०—आज और रह गया, तो छह सेर पर हाथ फेरगा !

रँगीली—तो आज रहे ही क्यों, खत का जो जवाब देना हो, देकर विदा करो। अगर रहे, तो साफ कह देना कि हमारे यहाँ मिठाई मुफ्त नहीं आती। खिचड़ी बनाना हो बनावे, नहीं तो अपनी राह ले। जिन्हें ऐसे पेटुओं को खिलाने से मुक्ति मिलती हो, वे खिलावें, हमें ऐसी मुक्ति न चाहिए।

मगर पंडिजी विदा होने को तैयार बैठे थे, इसलिए बाबू साहब को कौशल से काम लेने की जरूरत न पड़ी। पूछा—क्या तैयारी कर दी महाराज ?

मोटे०—हाँ सरकार, अब चलूँगा। नौ बजे की गाड़ी मिलेगी न ?

माल०—भला आज तो रहिए।

यह कहते-कहते बाबू साहब को भय हुआ कि कहीं यह महाराज सचमुच न रह जाएँ, इसलिये वाक्य को यों पूरा किया—हाँ, वहाँ भी लोग आपका इन्तजार कर रहे होंगे।

मोटे०—एक दो दिन की तो कोई बात न थी। विचार भी यही था कि त्रिवेणी का
करूँगा, पर गुरु न न लिए तो कहूँ—आप लोगों में ब्राह्मणों के प्रति लेशमात्र भी
ही है। हमारे यजमान हैं, जो हमारा मुँह जोहते रहते हैं कि पंडितजी कोई आज्ञा दें
का पालन करें। हम उनके द्वार पर पहुँच जाते हैं, तो अपना धन्य भाग्य समझते
सारा घर—छोटे से बड़े तक—हमारे सेवा-सत्कार में मग्न हो जाता है। जहाँ
आदर नहीं वहाँ एक क्षण ठहरना असह्य है। जहाँ ब्राह्मण का आदर नहीं, वहाँ
नहीं हो सकता।

माल०—महाराज हमसे तो ऐसा अपराध नहीं हुआ।

मोटे०—अपराध नहीं हुआ! और अपराध कहते किसे हैं? अभी आप ही ने घर
हर कहा है कि यह महाशय तीन सेर मिठाई चट कर गए। पत्थरों तौल! आपने
आनेवाले हैं कहाँ? एक बार खिलाइए तो आँखें खुल जाएँ। ऐसे-ऐसे महान्
पड़े हुए हैं, जो पसेरी-भर मिठाई खा जाएँ और डकार तक न लें। मिठाई खाने के
इनामें चिरौरी की जाती हैं। हम भिक्षुक ब्राह्मण नहीं हैं, जो आपके द्वार पर खड़े
आपका नाम सुनकर आये थे, यह न जानते थे कि यहाँ मेरे भोजन के भी लाले
भगवान् आपका भला करे।

बाबू साहब ऐसा झेंपे कि मुँह से बात न निकली। जिन्दगी भर में उन पर कभी
फटकार न पड़ी थी। बहुत बातें बनायीं—आपकी चर्चा न थी, एक दूसरे महाशय की
थी, लेकिन पंडितजी का क्रोध शान्त न हुआ। वह सब-कुछ सह सकते थे, पर
पेट की निन्दा न सह सकते थे। औरत को रूप की निन्दा जितनी अप्रिय लगती है,
कहीं अधिक अप्रिय पुरुष को अपने पेट की निन्दा लगती है। बाबू साहब मनाते
पर यह धड़का भी समाया हुआ था कि यह टिक न जाएँ। उनकी कृपणता का पर्दा
गया था, अब इसमें सन्देह न था। उस पर्दे को ढँकना जरूरी था। अपनी कृपणता
छिपाने के लिए उन्होंने कोई बात उठा न रखी, पर होनेवाली बात होकर रही।
रहे थे कि कहाँ से घर में इसकी बात करने गया और कहा भी तो उच्च स्वर में।
ट भी कान लगाए सुनता रहा; किन्तु अब पछताने से क्या हो सकता था! जाने
मनहूस की मूरत देखी थी कि यह विपत्ति गले पड़ी। अगर इस वक्त यहाँ से रुष्ट
चला गया, तो वहाँ जाकर बदनाम करेगा और मेरा सारा कौशल खुल जाएगा। अब
का मुँह बन्द कर देना ही पड़ेगा।

यह सोच-विचार करते हुए घर में जाकर रँगीलीबाई से बोले—इस दुष्ट ने
तुम्हारी बातें सुन लीं। रूठकर चला जा रहा है।

रँगीली—जब तुम जानते थे कि द्वार पर खड़ा है, तो धीरे से क्यों न बोले?

माल०—विपत्ति आती है, तो अकेले नहीं आती। यह क्या जानता था कि द्वार पर कान लगाए खड़ा है।

रँगीली—न जाने किसका मुँह देखा था।

माल०—वही दुष्ट सामने लेटा हुआ था। जानता तो उधर ताकता ही नहीं। अभी तो इसे कुछ दे-दिलाकर राजी करना पड़ेगा।

रँगीली—ऊँह, जाने भी दो। जब तुम्हें वहाँ विवाह ही नहीं करना है, तो क्या परवाह है ? जो चाहे कहे।

माल०—यों जान न बचेगी। लाओ, दस रुपये विदाई के बहाने दे दूं। ईश्वर फिर इस मनहूस की सूरत न दिखाए। रँगीली ने बहुत पछताते-पछताते दस रुपये निकाले और बाबू साहब ने उन्हें ले जाकर पंडित जी के चरणों पर रख दिए। पंडितजी ने दिल में कहा—धत्तेरे मक्खीचूस की—ऐसा रगड़ा कि याद ही करोगे ! तुम समझते हो कि दस रुपये देकर उसे उल्लू बना लूँगा। इस फेर में न रहना। यहाँ तुम्हारी नस-नस पहचानते हैं। रुपये जेब में रख लिये और आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

बाबू साहब बड़ी देर तक खड़े सोच रहे थे—मालूम नहीं, अब भी मुझे कृपण ही समझ रहा है, या पर्दा ढक गया। कहीं ये रुपये भी तो पानी में नहीं गिर पड़े।

: ४ :

कल्याणी के सामने अब एक विषम समस्या आ खड़ी हुई। पति के देहान्त के बाद उसे अपनी दुरवस्था का यह पहला और बहुत ही कड़वा अनुभव हुआ। दरिद्र विधवा के लिए इससे बड़ी और क्या विपत्ति हो सकती है कि जवान बेटी सिर पर सवार हो ? लड़के नंगे पाँव पढ़ने जा सकते हैं, चौका-बर्तन भी अपने हाथ से किया जा सकता है, रूखा-सूखा खाकर निर्वाह किया जा सकता है, झोपड़े में दिन काटे जा सकते हैं; लेकिन युवती कन्या घर में नहीं बैठायी जा सकती। कल्याणी को भालचन्द्र पर ऐसा क्रोध आता था कि स्वयं जाकर उसके मुँह में कालिख लगाऊँ, सिर के बाल नोच लूँ, कहूँ कि तू अपनी बात से फिर गया, तू अपने बाप का बेटा नहीं। पंडित मोटेराम ने उनकी कपट-लीला का नग्न वृत्तान्त सुना दिया था।

वह इसी क्रोध में बैठी थी कि कृष्णा खेलती हुई आयी और बोली—कै दिन में बारात आएगी अम्माँ ? पंडितजी तो आ गए।

कल्याणी—बारात का सपना देख रही है क्या ?

कृष्णा—वही चन्दर तो कह रहा है कि दो-तीन दिन में बारात आएगी। क्या न आएगी अम्माँ ?

कल्याणी—एक बार तो कह दिया, सिर क्यों खाती है ?

कृष्णा—सबके घर तो बारात आ रही है, हमारे घर क्यों नहीं आती ?

कल्याणी—तेरे घर जो बारात लानेवाला था, उसके घर में आग लग गई।

कृष्णा—सच अम्माँ, तब तो सारा घर जल गया होगा। कहां रहते होंगे ? बहिन कहां जाकर रहेगी ?

कल्याणी—अरे पगली, तू तो बात ही नहीं समझती। आग लगी, वह अब हमारे यहाँ ब्याह न करेगा।

कृष्णा—यह क्यों अम्माँ ? पहले तो ठीक हो गया था ?

कल्याणी—बहुत से रुपये मांगता है। मेरे पास उसे देने को रुपये नहीं हैं।

कृष्णा—क्या बड़े लालची हैं, अम्माँ ?

कल्याणी—लालची नहीं तो और क्या ! पूरा कसाई, निर्दयी, दगाबाज !

कृष्णा—तब तो अम्माँ बहुत अच्छा हुआ कि उसके घर बहिन का ब्याह नहीं हुआ। बहिन उसके साथ कैसे रहती ? यह तो खुश होने की बात है अम्माँ, तुम रंज क्यों करती हो ?

कल्याणी ने पुत्री को स्नेहमयी दृष्टि से देखा। उसका कथन कितना सत्य है ! भोले शब्दों में समस्या का कितना मार्मिक निरूपण है ! सचमुच यह तो प्रसन्न होने की बात है कि ऐसे कुपात्रों से सम्बन्ध नहीं हुआ, रंज की कोई बात नहीं। ऐसे कुमानुसों के बीच में बेचारी निर्मला की न जाने क्या गति होती। अपने नसीबों को रोती। जरा सा घी दाल में अधिक पड़ जाता, तो सारे घर में शोर मच जाता। जरा खाना ज्यादा पक जाता तो सास दुनिया सिर पर उठा लेती। लड़का भी ऐसा लोभी है। बड़ी अच्छी बात हुई, नहीं तो बेचारी को उम्र-भर रोना पड़ता। कल्याणी यहाँ से उठी, तो उसका हृदय हलका हो गया।

लेकिन विवाह तो करना ही था और हो सके तो इसी साल नहीं तो दूसरे साल। फिर नए सिरे से तैयारियाँ करनी पड़ेगी। अब अच्छे घर की जरूरत नहीं थी। अच्छे वर की जरूरत न थी। अभागिनी को अच्छा घर-वर कहाँ मिलता ? अब किसी भाँति सिर का बोझा उतारना था, किसी भाँति लड़की को पार लगाना था—उसे कुएं में झोंकना था। वह रूपवती है, गुणशील है, चतुर है, कुलीन है, तो हुआ करे दहेज हो तो सारे दोष गुण हैं। प्राणों का कोई मूल्य नहीं, केवल दहेज का मूल्य है। कितनी विषम भाग्यलीला है !

कल्याणी का दोष कुछ कम न था। अबला विधवा होना उसे दोषों से मुक्त नहीं कर सकता। उसे अपने लड़के लड़कियों से कहीं ज्यादा प्यारे थे। लड़के हल के बैल हैं;

भूसे-खली पर पहला हक उनका है। उनके खाने से जो बचे, वह गायों का। मकान था, कुछ नकद था, कई हजार के गहने थे, उन्हें पढ़ाना-लिखाना था। एक कन्या और भी चार-पाँच साल में विवाह करने योग्य हो जाएगी। इसलिए वह कोई बड़ी रकम दहेज में न दे सकती थी। आखिर लड़कों को भी तो कुछ चाहिए ? वे क्या समझेंगे कि हमारा भी कोई बाप था।

पंडित मोटेराम को लखनऊ से लौटे पन्द्रह दिन बीत चुके थे। लौटने के बाद दूसरे दिन वर की खोज में निकले थे। उन्होंने प्रण किया था कि मैं लखनऊवालों को दिखा दूँगा कि संसार में तुम्हीं अकेले नहीं हो, तुम्हारे ऐसे और भी कितने पड़े हुए हैं। कल्याणी रोज दिन गिना करती थी। आज उसने उन्हें पत्र लिखने का निश्चय किया और कलम दवात लेकर बैठी ही थी कि पंडित मोटेराम ने पदार्पण किया।

कल्याणी—आइए पंडितजी, मैं तो आपको खत लिखने जा रही थी। कब लौटे ?

मोटेराम—लौटा तो प्रातःकाल ही था; पर उसी समय एक सेठ के यहाँ से निमन्त्रण आ गया। कई दिन से तर माल न मिले थे। मैंने कहा, लगे हाथ यह भी काम निपटाता चलूँ। अभी उधर से लौटा आ रहा हूँ, कोई पाँच सौ ब्राह्मणों की पंगत थी।

कल्याणी—कुछ कार्य सिद्ध हुआ या रास्ता ही नापना पड़ा ?

मोटे०—कार्य क्यों न सिद्ध होता ? भला यह भी कोई बात है ! पांच जगह बातचीत कर आया हूँ। पाँचों की नकल लाया हूं। उनमें से आप चाहें जिसे पसन्द करें। यह देखिये, लड़के का बाप डाक के सीगे में १०० रु० महीने का नौकर है। लड़का अभी कालेज में पढ़ रहा है। मगर नौकरी का भरोसा है, घर में कोई जायदाद नहीं है। लड़का होनहार मालूम होता है। खानदान भी अच्छा है। २००० रु० में तय हो जाएगी। माँगते तो वह तीन हजार हैं।

कल्याणी—लड़के के कोई भाई हैं ?

मोटे०—नहीं; मगर तीन बहिने हैं और तीनों क्वांरी। माता जीवित हैं। अच्छा, अब दूसरी नकल देखिये। यह लड़का रेल के सीगे में ५० रु० महीना पाता है। माँ-बाप नहीं हैं। बहुत ही रूपवान, सुशील और शरीर से हृष्ट-पुष्ट कसरती जवान है। मगर खानदान अच्छा नहीं। कोई कहता था, मां नाइन थी; कोई कहता था, ठकुराइन थी। बाप किसी रियासत में मुख्तार थे। घर पर थोड़ी-सी जमींदारी है, मगर उस पर कई हजार का कर्ज है। वहाँ कुछ लेना-देना न पड़ेगा। उम्र कोई २० साल होगी।

कल्याणी—खानदान में दाग न होता, तो मंजूर कर लेती। देखकर तो मक्खी नहीं नेगली जाती।

मोटे०—तीसरी नकल देखिए। एक जमींदार का लड़का है, कोई एक हजार

सालाना नफा है। कुछ खाता-बारी भी होती है, लड़का पढ़ा-लिखा तो थोड़ा है, पर कचहरी अदालत के काम में चतुर है। दुहाजू है, पहली स्त्री को मरे दो साल हुए कोई सन्तान नहीं। लेकिन रहन-सहन मोटा है, पीसना कूटना घर में ही होता है।

कल्याणी—कुछ दहेज मांगते हैं ?

मोटेराम- इसकी कुछ न पूछिये। चार हजार सुनाते हैं। अच्छा, यह चौथी नकल देखिए। लड़का वकील है, उम्र कोई पैंतीस साल होगी। तीन-चार सौ की आमदनी है। पहली स्त्री मर चुकी है। उसके तीन लड़के भी हैं। अपना घर बनवाया है। कुछ जायदाद भी खरीदी है। यहाँ भी लेन-देन का झगड़ा नहीं है।

कल्याणी—खानदान कैसा है ?

मोटेराम—बहुत ही उत्तम, पुराने रईस हैं। अच्छा, यह पाँचवीं नकल देखिए। बाप का छापाखाना है, लड़का पढ़ा तो बी० ए० तक है, पर उसी छापेखाने में काम करता है, उम्र अठारह साल की होगी। घर में प्रेस के सिवाय कोई जायदाद नहीं है, मगर किसी का कर्ज सिर पर नहीं। खानदान न बहुत अच्छा है, न बहुत बुरा। लड़का बहुत सुन्दर और सच्चरित्र है। मगर एक हजार से कम में मामला तय न होगा। मांगते तो वह तीन हजार हैं। अब बताइए, आप कौन-सा वर पसन्द करती हैं ?

कल्याणी—आपको सबों में कौन पसन्द है ?

मोटे०—मुझे तो दो वर पसन्द हैं। एक वह जो रेलवई में है, और दूसरा वह जो छापेखाने में काम करता है।

कल्याणी—मगर पहले के तो खानदान में दोष बताते हैं ?

मोटे०—हाँ, यह दोष है। तो छापेखानेवाले को ही रहने दीजिए।

कल्याणी—यहाँ एक हजार देने को कहाँ से आएगा ? एक हजार तो आपका अनुमान है, शायद वह मुंह फैलाएँ। आप तो घर की दशा देख ही रहे हैं। भोजन मिलता जाए, यही गनीमत है। रुपये कहाँ से आएँगे ? जमींदार साहब चार हजार सुनाते हैं, डाकबाबू भी दो हजार का सवाल करते हैं। इनको जाने दीजिए। बस, वकील साहब ही बच रहे, पैंतीस साल की उम्र भी कोई ऐसी ज्यादा नहीं। इन्हीं को क्यों न रखिए ?

मोटेराम—आप खूब सोच-विचार लें। मैं यों आपकी मर्जी का ताबेदार हूँ। जहाँ कहिएगा, वहाँ टीका कर आऊँगा। मगर एक हजार का मुंह न देखिए, छापेखानेवाला लड़का रत्न है। उसके साथ कन्या का जीवन सफल हो जाएगा। जैसी वह रूप और गुण की पूरी है, वैसा ही लड़का भी सुन्दर और सुशील है।

कल्याणी—पसन्द तो मुझे भी यही है महाराज। पर रुपये किसके घर से आएँ ? कौन देखनेवाला है ? खानेवाले तो खा पीकर चंपत हुए। अब किसी की भी सूरत दिखाई

नहीं देती, बल्कि और मुझसे बुरा मानते हैं कि हमें निकाल दिया। जो बात अपने बस के बाहर है, उसके लिए हाथ ही क्यों फैलाऊँ ? संतान किसको प्यारी नहीं होती ? कौन उसे सुखी नहीं देखना चाहता ? पर जब अपना काबू भी हो ! ईश्वर का नाम लेकर. वकील साहब को टीका कर आइए। आयु कुछ अधिक है; लेकिन मरनाजीना विधि के हाथ है। पैंतीस साल का आदमी बुड्ढा नहीं कहलाता। अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना बदा है, तो जहाँ जाएगी सुखी रहेगी; दुख भोगना है, तो जहाँ जाएगी; दुःख झेलेगी। हमारी निर्मला को बच्चों से प्रेम है। उनके बच्चों को अपना समझेगी। आप शुभ मुहूर्त देखकर टीका कर आएँ।

: ५ :

निर्मला का विवाह हो गया। ससुराल आ गई। वकील साहब का नाम था मुंशी तोताराम। साँवले रँग के मोटे-ताजे आदमी थे। उम्र तो अभी चालीस से अधिक न थी, पर वकालत के कठिन परिश्रम ने सिर के बाल पका दिये थे। व्यायाम करने का अवकाश न मिलता था। यहाँ तक कि कभी कहीं घूमने न जाते, इसलिए तोंद निकल आयी थी। देह स्थूल होते हुए भी आए दिन कोई-न-कोई शिकायत रहती थी। मन्दाग्नि और बवासीर से तो उनका चिरस्थायी सम्बन्ध था। अतएव बहुत फूंक-फूंककर कदम रखते थे। उनके तीन लड़के थे। बड़ा मंसाराम सोलह वर्ष का था, मँझला जियाराम ग्यारह और सियाराम सात वर्ष का था। तीनों अंग्रेजी पढ़ते थे। घर में वकील साहब की विधवा बहिन के सिवा और कोई औरत न थी। वही घर की मालकिन थी। उनका नाम रुक्मिणी और अवस्था पचास के ऊपर थी। ससुराल में कोई न था। स्थायी रीति से यहाँ रहती थी।

तोताराम दम्पति-विज्ञान में कुशल थे। निर्मला को प्रसन्न रखने के लिए उनमें जो स्वाभाविक कमी थी, उसे वह उपहारों से पूरी करना चाहते थे। यद्यपि वह बहुत ही मितव्ययी पुरुप थे, तथापि निर्माला के लिए कोई-न-कोई तोहफा रोज लाया करते। मौके पर धन की परवाह न करते। लड़कों के लिए थोड़ा दूध आता, पर निर्मला के लिए मेवे, मुरब्वे, मिठाइयां—किसी चीज की कमी न थी। अपनी जिन्दगी में कभी सैर-तमाशे देखने न गए थे। अब अपने बहुमूल्य समय का थोड़ा सा हिस्सा उसके साथ बैठकर ग्रामोफोन बजाने में व्यातीत किया करते थे।

लेकिन निर्मला को न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हँसने-बोलने में संकोच होता था। इसका कदाचित यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर, देह चुराकर निकलती थी। अब उसी

[illegible] वस्तु नहीं, सम्मान की वस समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जात थी।

वकील साहब को उनके दम्पति-विज्ञान ने सिखाया था कि युवती के सामने सू प्रेम की बातें करना चाहिए—दिल निकालकर रख देना चाहिए यही वशीकरण का मुख्य मन्त्र है। इसलिए वकील साहब अपने प्रेम-प्रदर्शन में कोई कसर न रखते थे, लेकिन निर्मला को इन बातों से घृणा होती थी। वही बात, जिन्हें किसी युवक के मुख से सुनकर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुंह से निकलकर उसके हृदय पर शर समान आघात करती थी। उनमें रस न था, उल्लास न था, उन्माद न था केवल बनावट थी, धोखा था और था शुष्क एवं नीरस शब्दाडम्बर। उसे इत्र और तेल बुरा न लगता, सैर-तमाशे बुरे न लगते, बनाव-सिंगार भी बुरा न लगता था; बुरा लगता था तो केवल तोताराम के पास बैठना। वह अपना रूप और यौवन उन्हें न दिखान चाहती थी; क्योंकि वहां देखनेवाली आंखें न थीं, वह उन्हें इन रसों का आस्वादन करने के योग्य ही न समझती थी। कली प्रभात-समीर के स्पर्श से खिलती है। दोनों में समान प्रेरणा है। निर्मला के लिए वह प्रभात-समीर कहाँ था ?

पहला महीना गुजरते ही तोताराम ने निर्मला को अपना खजांची बना लिया। कचहरी से आकर दिन-भर की कमाई उसी को देते। उसका ख्याल था, निर्मला इन रुपयों को देखकर फूली न समाएगी। निर्मला बड़े शौक से इस पद का काम अंजाम देती। एक-एक पैसे का हिसाब लिखती। अगर कभी रुपये कम मिलते तो पूछती, आज कम क्यों हैं ? गृहस्थी के संबंध में उनसे खूब बातें करती। इन्हीं बातों के लायक वह उनको समझती थी। ज्यों ही कोई विनोद की बात उनके मुंह से निकल जाती, उसका मुख मलिन हो जाता था।

निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आइने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौंदर्य की सुषमापूर्ण आभा देखती, तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तड़प उठता था। उस वक्त उसके हृदय में एक ज्वाला-सी उठती। मन में आता, इस घर में आग लगा दूँ। अपनी माता पर क्रोध आता, पर सबसे अधिक क्रोध बेचारे निरपराध तोताराम पर आता। वह सदैव इस बात से जला करती। बांका सवार बड़े लद्दू-टट्टू पर सवार होना कब पसन्द करेगा, चाहे उसे पैदल ही क्यों न चलना पड़े। निर्मला की दशा उसी बांके सवार की-सी थी। वह उन पर सवार होकर उड़ना चाहती थी; उस उल्लासमयी विद्युत गति का आनन्द उठाना चाहती थी; टट्टू के हिनहिनाने और कनौतियाँ खड़ी करने से क्या आशा होती ? संभव था कि बच्चों के साथ हँसने-खेलने से

यह अपनी दशा को थोड़ी देर के लिए भूल जाती, कुछ मन हरा हो जाता; लेकिन रुक्मिणी देवी लड़कों को उसके पास फटकने भी न देती; मानो वह कोई पिशाचिनी है, जो उन्हें निगल जायगी। रुक्मिणी देवी का स्वभाव सारे संसार से निराला था। यह पता लगाना कठिन था कि यह किस बात से खुश होती थीं और किस बात से नाराज। एक बार जिस बात से खुश हो जाती थीं, दूसरी बार उसी बात से जल जाती थीं। अगर निर्मला अपने कमरे में बैठती, तो कहतीं कि न जाने कहाँ की मनहूसिन है; अगर वह कोठे पर चढ़ जाती या महरियों से बातें करती, तो छाती पीटने लगतीं—न लाज है, न शरम; निगोड़ी ने हया भून खायी, अब क्या, कुछ दिनों में बाजार में नाचेगी।।

जब से वकील साहब ने निर्मला के हाथ में रुपये पैसे देने शुरू किए, रुक्मिणी उसकी आलोचना करने पर आरूढ़ हो गई थी। उन्हें मालूम होता था कि अब प्रलय होने में बहुत थोड़ी कसर रह गई है। लड़कों को बार-बार पैसे की जरूरत पड़ती। जब तक खुद स्वामिनी थीं, उन्हें बहला दिया करती थीं. अब सीधे निर्मला के पास भेज देतीं। निर्मला को लड़कों का चटोरपन अच्छा न लगता था। कभी-कभी पैसे से इनकार कर देती। रुक्मिणी को अपने वाग्बाण सर करने का अवसर मिल जाता—अब तो मालकिन हुई हैं, लड़के काहे को जिएँगे। बिना मां के बच्चों को कौन पूछे ? रुपयों की मिठाइयाँ खाते थे, अब धेले-धेले को तरसते हैं। निर्मला अगर चिढ़कर किसी दिन बिना कुछ पूछे-ताछे पैसे दे देती, तो देवीजी उसकी दूसरी आलोचना करतीं—इन्हें क्या, लड़के मरें या जिएँ, इनकी बला से ! माँ के बिना कौन समझाए कि बेटा, बहुत मिठाई मत खाओ। आयी-गयी तो मेरे किए जाएगी, उन्हें क्या ?

यहीं तक होता, तो निर्मला शायद जब्त कर जाती, पर देवी तो खुफिया पुलिस के सिपाही की भाँति निर्मला का पीछा करती थीं। अगर वह कोठे पर खड़ी है, तो अवश्य किसी पर निगाह डाल रही होगी। महरी से बातें करती है, तो अवश्य उनकी निन्दा करती होगी। बाजार से कुछ मँगवाती है, तो अवश्य कोई विलास वस्तु होगी। यह बराबर उसके पत्र पढ़ने की चेष्टा किया करती। छिप छिपकर उसकी बात सुना करती। निर्मला उसकी दोधारी तलवार से काँपती रहती थी। यहाँ तक कि उसने एक दिन पति से कहा—आप जरा जीजी को समझा दीजिए, क्यों मेरे पीछे पड़ी रहती हैं।

तोताराम ने तेज होकर कहा—तुम्हें कुछ कहा है क्या ?

'रोज ही कहती हैं। बात मुंह से निकालना मुश्किल है। अगर उन्हें इस बात की जलन हो कि यह मालकिन क्यों बनी हुई है, तो आप उन्हीं को रुपये-पैसे दीजिए, मुझे न चाहिए, वही मालकिन बनी रहें। मैं तो केवल इतना ही चाहती हूँ कि मुझे ताने-मेहने न दिया करें।'

यह कहते-कहते निर्मला की आँखों में आँसू बहने लगे। तोताराम को अपना प्रेम दिखाने का यह बहुत अच्छा मौका मिला। बोले—मैं आज ही उनकी खबर लूँगा। साफ कह दूँगा, अगर मुँह बन्द करके रहना है तो रहो, नहीं तो अपनी राह लो। इस घर की स्वामिनी वह नहीं है, तुम हो। वह केवल तुम्हारी सहायता के लिए हैं। अगर सहायता करने के बदले तुम्हें दिक करती हैं, तो उनको यहाँ रहने की जरूरत नहीं। मैंने सोचा था कि विधवा है, अनाथ है, पाव भर आटा खाएँगी, पड़ी रहेंगी। जब और नौकर-चाकर खा रहे हैं तो वह अपनी बहिन ही हैं; लड़कों की देखभाल के लिए औरत की जरूरत भी थी, रख लिया; लेकिन इसके यह माने नहीं कि वह तुम्हारे ऊपर शासन करें।

निर्मला ने फिर कहा—लड़कों को सिखा देती हैं कि जाकर माँ से पैसे माँगो, कभी कुछ, कभी कुछ। लड़के आकर मेरी जान खाते हैं। घड़ी-भर लेटना मुश्किल हो जाता है। डाँटती हूँ, तो वह आँखें लाल-पीली करके दौड़ती हैं। मुझे समझती हैं कि लड़कों को देखकर जलती है। ईश्वर जानते होंगे कि मैं बच्चों को कितना प्यार करती हूँ। आखिर मेरे ही बच्चे तो हैं, मुझे उनसे क्यों जलन होने लगी ?

तोताराम क्रोध से काँप उठे। बोले—तुम्हें जो लड़का दिक करे, उसे पीट दिया करो। मैं भी देखता हूँ कि लौंडे शरीर हो गए हैं। मंसाराम को मैं बोर्डिंग हाउस में भेज दूँगा। बाकी दोनों को तो आज ही ठीक किए देता हूँ।

उस वक्त तोताराम कचहरी जा रहे थे। डाँट-डपट करने का मौका न था, लेकिन कचहरी से लौटते ही उन्होंने घर में आकर रुक्मिणी से कहा—क्यों बहिन, तुम्हें इस घर में रहना है या नहीं ? अगर रहना है तो शांत होकर रहो, यह क्या कि दूसरों का रहना मुश्किल कर दो।

रुक्मिणी समझ गईं कि बहू ने अपना वार किया। पर वह दबनेवाली औरत न थीं। एक तो उम्र में बड़ी, तिस पर इसी घर की सेवा में जिन्दगी काट दी थी। किसकी मजाल थी कि उन्हें बेदखल कर दे। उन्हें भाई की क्षुद्रता पर आश्चर्य हुआ। बोलीं—तो क्या लौंडी बनाकर रखोगे ? लौंडी बनकर रहना है, तो इस घर की लौंडी न बनूँगी। अगर तुम्हारी यही इच्छा हो कि घर में कोई आग लगा दे और मैं खड़ी देखा करूँ, किसी को बेराह चलते देखूँ तो चुप साध लूँ, जो जिसके मन में आये करे, मैं मिट्टी की देवी बनी रहूँ, तो यह मुझसे न होगा। यह हुआ क्या, जो तुम इतने आपे से बाहर हो रहे हो ? निकल गई सारी बुद्धिमानी, कल की लौंडिया चोटी पकड़कर नचाने लगी ? कुछ पूछना न ताछना, बस उसने डोर खींचा और तुम काठ के सिपाही की तरह तलवार निकाल कर खड़े हो गए।

तोताराम—सुनता तो हूँ कि तुम हमेशा खुचुर निकालती रहती हो, बात-बात पर

ताने देती हो। अगर कुछ सीख ही देती हो, तो उसे प्यार से, मीठे शब्दों में देनी चाहिए। तानों में सीख देने के बदले उलटा और जी जलने लगता है।

रुक्मिणी—तो तुम्हारी यही मर्जी है कि किसी बात में न बोलूँ, यही सही। लेकिन फिर यह न कहना कि तुम तो घर में बैठी थीं, क्यों नहीं सलाह दी। जब मेरी बातें जहर लगती हैं, तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा है जो बोलूँ? मसल है—'नाटों खेती बहुरियों घर।' मैं भी देखूँ, बहुरिया कैसे घर चलाती है।

इतने में सियाराम और जियाराम स्कूल से आ गए। आते-ही आते दोनों बुआजी के पास जाकर खाने को माँगने लगे। रुक्मिणी ने कहा—जाकर अपनी नई अम्माँ से क्यों नहीं माँगते? मुझे बोलने का हुक्म नहीं है।

तोता०—अगर तुम लोगों ने उस घर में कदम रखे, तो टाँग तोड़ दूँगा। बदमाशी पर कमर बाँधी है!

जियाराम जरा शोख था। बोला—उनको तो आप कुछ नहीं कहते, हमीं को धमकाते हैं। कभी पैसे नहीं देतीं।

सियाराम ने इस कथन का अनुमोदन किया—कहती हैं, मुझे दिक करोगे तो कान काट लूँगी। कहती हैं कि नहीं जिया?

निर्मला अपने कमरे से बोली—मैंने कब कहा था कि कान काट लूँगी? अभी से बोलने लगे?

इतना सुनना था कि तोताराम ने सिया के दोनों कान पकड़कर उठा लिया। लड़का जोर से चीख मारकर रोने लगा।

रुक्मिणी ने दौड़कर बच्चे को मुंशीजी के हाथ से छुड़ा लिया और बोली—बस रहने भी दो; क्या बच्चे को मार डालोगे? हाय-हाय! कान लाल हो गया। सच कहा है, नई बीवी पाकर आदमी अन्धा हो जाता है। अभी से यह हाल है, तो इस घर के भगवान ही मालिक हैं।

निर्मला अपनी विजय पर मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थी, लेकिन जब मुंशीजी ने बच्चे का कान पकड़कर उठा लिया, तो उससे न रहा गया। छुटाने को दौड़ी। पर रुक्मिणी पहले ही पहुँच गई थी। बोली—पहले आग लगा दी, अब बुझाने दौड़ी हो। जब अपने लड़के होंगे, आँख खुलेंगी। परायी पीर क्या जानो?

निर्मला—खड़े तो हैं, पूछ लो न, मैंने क्या आग लगा दी? मैंने इतना ही कहा था कि लड़के मुझे पैसों के लिए बार-बार दिक करते हैं। इसके सिवाय जो मेरे मुँह से कुछ और निकला हो, मेरी आँखें फूट जाएँ।

तोता०—मैं खुद इन लौंडों की शरारत देखा करता हूँ, अंधा थोड़े ही हूँ। तीनों

ज़िद्दी और शरीर हो गए हैं. बड़े मियाँ को तो आज ही होस्टल में भेजता हूँ।

रुक्मिणी—अब तक तुम्हें इनकी कोई शरारत न सूझी थी, अब आँखें क्यों इतनी तेज़ हो गई ?

तोताराम—तुम्हीं ने इतना शोख कर रखा है।

रुक्मिणी—तो मैं ही विष की गाँठ हूँ। मेरे ही कारण तुम्हारा घर चौपट हो रहा है। लो मैं जाती हूँ, मारो चाहे काटो, मैं न बोलूँगी।

यह कह कर वह वहाँ से चली गई। निर्मला बच्चे को रोता देखकर विकल हो उठी। उसने उसे छाती से लगा लिया और गोद में लिये हुए अपने कमरे में लाकर उसे चुमकारने लगी। लेकिन बालक और भी सिसक-सिसककर रोने लगा। उसका अबोध हृदय इस प्यार में वह मातृस्नेह न पाता था, जिससे दैव ने उसे वंचित कर दिया था। यह वात्सल्य न था, केवल दया थी। यह वह वस्तु थी, जिस पर उसका कोई अधिकार न था; जो केवल भिक्षा के रूप में उसे दी जा रही थी। पिता ने पहले भी दो-एक बार मारा था, जब उसकी माँ जीवित थी; लेकिन तब उसकी माँ उसे छाती से लगाकर रोती न थी। वह अप्रसन्न होकर उससे बोलना छोड़ देती, यहाँ तक कि वह स्वयं थोड़ी ही देर के बाद सब कुछ भूलकर फिर माता के पास दौड़ जाता था। शरारत के लिए सज़ा पाना तो उसकी समझ में आता था। लेकिन मार खाने पर चुमकारा जाना उसकी समझ में न आता था।

मातृप्रेम में कठोरता होती थी, लेकिन मृदुलता से मिली हुई। इस प्रेम में करुणा थी, पर वह कठोरता न थी, जो आत्मीयता का गुप्त सन्देश है। स्वस्थ अंग की परवाह कौन करता है ? लेकिन वह अंग जब किसी वेदना से टपकने लगता है, तो उसे ठेस और धक्के से बचाने का यत्न किया जाता है। बालक का करुण रोदन निर्मला को उसके अनाथ होने की सूचना दे रहा था। वह बड़ी देर तक निर्मला की गोद में बैठा रोता रहा और रोते-रोते सो गया। निर्मला ने उसे चारपाई पर सुलाना चाहा, तो बालक ने सुषुप्तावस्था में अपनी दोनों कोमल बाँहें उसकी गर्दन में डाल दीं और ऐसा चिपट गया, मानो नीचे कोई गढ़ा हो। शंका और भय से उसका मुख विकृत हो गया। निर्मला ने फिर बालक को गोद में उठा लिया, चारपाई पर न सुला सकी। इस समय बालक को गोद में लिये हुए उसे वह तुष्टि हो रही थी, जो तब तक कभी न हुई थी। आज पहली बार उसे आत्मवेदना हुई, जिसके बिना आँख नहीं खुलती, अपना कर्तव्य-मार्ग नहीं सूझता। वह मार्ग अब दिखाई देने लगा।

: ६ :

उस दिन अपने प्रगाढ़ प्रणय का सबल प्रमाण देने के बाद मुंशी तोताराम को आशा हुई थी कि निर्मला के मर्मस्थल पर मेरा सिक्का जम जायगा, लेकिन उनकी यह आशा लेशमात्र भी पूरी न हुई, बल्कि पहले तो वह कभी-कभी उनसे हँसकर बोला भी करती थी, अब बच्चों ही के लालन-पालन में व्यस्त रहने लगी। जब घर आते, बच्चों को उसके पास बैठे पाते। कभी देखते कि उन्हें लिखा रही है, कभी कपड़े पहना रही है। कभी कोई खेल खेल रही है और कभी कोई कहानी कह रही है। निर्मला का तृषित हृदय प्रणय की ओर से निराश होकर इस अवलम्ब ही को गनीमत समझने लगा। तोताराम के साथ हँसने-बोलने में उसे जो संकोच, अरुचि तथा जो अनिच्छा होती थी, यहाँ तक कि वह उठकर भाग जाना चाहती; उसके बदले बालकों के सच्चे, सरल स्नेह से चित्त प्रसन्न हो जाता था। पहले मंसाराम उसके पास आते हुए झिझकता था, लेकिन अब वह भी कभी-कभी आ बैठता। वह निर्मला का हमसिन था, लेकिन मानसिक विकास में पाँच साल छोटा। हाकी और फुटबाल ही उसका संसार, उसकी कल्पनाओं का मुक्त क्षेत्र तथा उसकी कामनाओं का हरा-भरा बाग था। इकहरे बदन का छरहरा, सुन्दर, हँसमुख, लज्जाशील बालक था, जिसका घर से केवल भोजन का नाता था, बाकी दिन न जाने कहाँ घूमा करता। निर्मला उसके मुँह से खेल की बातें सुनकर थोड़ी देर के लिए अपनी चिन्ताओं को भूल जाती और चाहती कि एक बार फिर वही दिन आ जाते, जब गुड़ियाँ खेलती और उनके ब्याह रचाया करती थी, और जिसे अभी छोड़े, बहुत ही थोड़े दिन गुजरे थे।

मुंशी तोताराम अन्य एकान्तसेवी मनुष्यों की भांति विषयी जीव थे। कुछ दिनों तो वह निर्मला को सैर-तमाशे दिखाते रहे। लेकिन जब देखा कि इसका कुछ फल नहीं होता, तो फिर एकान्त-सेवन करने लगे। दिनभर के कठिन मानसिक परिश्रम के बाद उनका चित्त आमोद-प्रमोद के लिए लालायित हो जाता, लेकिन जब अपनी विनोद-वाटिका में प्रवेश करते और फूलों को मुरझाया, पौधों को सूखा और क्यारियों में धूल उड़ती हुई देखते, तो उनका जी चाहता, क्यों न इस वाटिका को उजाड़ दूँ ? निर्मला उनसे विरक्त रहती है, इसका रहस्य उनकी समझ में न आता था। दम्पत्ति-शास्त्र के सारे मंत्रों की परीक्षा कर चुके थे; पर मनोरथ पूरा न हुआ। अब क्या करना चाहिए, यह उनकी समझ में न आता था।

एक दिन वह इसी चिन्ता में बैठे हुए थे कि उनके सहपाठी मित्र नयनसुखराम आकर बैठ गए और सलाम-वलाम के बाद मुस्कराकर बोले—आजकल तो खूब गहरी छनती होगी। नई बीवी का आलिंगन करके जवानी का मजा आ जाता होगा। बड़े

भाग्यवान हो! भाई, रूठी हुई जवानी को मनाने का इससे अच्छा कोई उपाय नहीं कि नया विवाह हो जाय। यहाँ तो जिन्दगी बबाल हो रही है। पत्नीजी इस बुरी तरह चिमटी हैं कि किसी तरह पिंड ही नहीं छोड़तीं। मैं तो दूसरी शादी की फिक्र में हूँ। कहीं डौल हो तो ठीक-ठाक कर दो। दस्तूरी में एक दिन तुम्हें उनके हाथ के बने हुए पान खिला देंगे।

तोताराम ने गंभीर भाव से कहा—कहीं ऐसी हिमाकत न कर बैठना, नहीं तो पछताओगे। लौंडियाँ कुछ लौंडों से ही खुश रहती हैं। हम तुम अब उस काम के नहीं रहे। सच कहता हूँ, मैं शादी करके पछता रहा हूँ। बुरी बला गले पड़ी। सोचा था, दो-चार साल और जिन्दगी का मजा उठा लूँ, पर उलटी आँतें गले पड़ीं।

नयन॰—तुम क्या बातें करते हो। लौंडियों को पंजे में लाना क्या मुश्किल बात है! जरा सैर-तमाशे दिखा दो, उनके रंग-रूप की तारीफ कर दो, बस, रंग जम गया।

तोता॰—यह सब कर-करके हार गया।

नयन॰—अच्छा! कुछ इत्र-तेल, फूल-पत्ते, चाट-वाट का भी मजा चखाया?

तोता॰—अजी, यह सब कर चुका। दम्पति-शास्त्र के सारे मंत्रों का इम्तहान ले चुका, सब कोरी गप्पें हैं।

नयन॰—अच्छा, तो अब मेरी एक सलाह मानो। जरा अपनी सूरत बनवा लो। आजकल यहाँ एक बिजली के डाक्टर आये हुए हैं, जो बुढ़ापे के सारे निशान मिटा देते हैं। क्या मजाल कि चेहरे पर एक झुर्री या सिर का कोई बाल पका रह जाय। न जाने ऐसा क्या जादू कर देते हैं कि आदमी का चोला ही बदल जाता है।

तोता॰— फीस क्या लेते हैं?

नयन॰— फीस तो सुना है ज्यादा लेते हैं, शायद पाँच सौ रुपये।

तोता॰—अजी, कोई पाखंडी होगा, बेवकूफों को लूट रहा होगा। कोई रोगन लगाकर दो-चार दिन के लिए जरा चेहरा चिकना कर देता होगा। इश्तहारी डाक्टरों पर तो अपना विश्वास ही नहीं। दस-पाँच की बात होती तो कहता, जरा दिल्लगी ही सही। ५०० रु॰ बड़ी रकम है।

नयन॰—तुम्हारे लिए ५०० रु॰ कौन बड़ी बात है। एक महीने की आमदनी है। मेरे पास तो भाई ५०० रु॰ होते, तो सबसे पहला काम यही करता। जवानी की एक घण्टे की कीमत ५०० रु॰ से कहीं ज्यादा है।

तोता॰—अजी, कोई सस्ता नुस्खा बताओ, कोई फकीरी जड़ी-बूटी जो कि बिना हर्र फिटकरी के रंग चोखा हो जाए। बिजली और रेडियम बड़े आदमियों के लिए रहने दो। उन्हीं को मुबारक हो।

नयन०—तो फिर रँगीलेपन का स्वांग रचो। यह ढीलाढाला कोट फेंको; तंजेब की चुस्त अचकन हो, चुन्नटदार पाजामा, गले में सोने की जंजीर पड़ी हुई, सिर पर जयपुरी साफा बँधा हुआ, आँखों में सुर्मा और बालों में हीना का तेल पड़ा हुआ। तोंद का पिचकना भी जरूरी है। दोहरा कमरबन्द बांधो। जरा तकलीफ होगी, पर अचकन सज उठेगी। खिजाब मैं लगा दूंगा। सौ-पचास गजलें याद कर लो। मौके-मौके से शेर पढ़ो। बातों में रस भरा हो, ऐसा मालूम हो कि तुम्हें दीन और दुनिया की कोई फ्रिक नहीं है, बस जो कुछ है प्रियतमा ही है। जवांमर्दी और साहस का काम करने का मौका ढूंढते रहो। रात को झूठ-मूठ शोर करो—चोर-चोर और तलवार लेकर अकेले पिल पड़ो। हां, जरा मौका देख लेना, ऐसा न हो कि सचमुच कोई चोर आ जाय और तुम उसके पीछे दौड़ो, नहीं तो सारी कलई खुल जायगी और मुफ्त में उल्लू बनोगे। उस वक्त जो जवांमर्दी इसी में है कि दम साधे पड़े रहो, जिससे वह समझे कि तुम्हें खबर ही नहीं हुई। लेकिन ज्यों ही चोर भाग खड़ा हो, तुम भी उछलकर बाहर निकलो और तलवार लेकर 'कहां? कहां?' करके दौड़ो। ज्यादा नहीं, एक महीने मेरी बातों का इम्तहान करके देखो। अगर तुम्हारा दम न भरने लगे तो जो जुर्माना कहो, वह दूं।

तोताराम ने उस वक्त तो यह बात हँसी में उड़ा दी, जैसा कि एक व्यवहार-कुशल को करना चाहिए था, लेकिन इनमें की कुछ बातें उनके मन में बैठ गईं। उनका पड़ने में कोई सन्देह न था। धीरे-धीरे रंग बदलने लगे, जिससे लोग खटक न जायं। पहले बालों से शुरू किया, फिर सुर्मे की बारी आई, यहां तक कि एक-दो महीने में उनका कलेवर ही बदल गया। गजलें याद करने का प्रस्ताव तो हास्यास्पद था, लेकिन वीरता की डींग मारने में कोई हानि न थी।

उस दिन से वह रोज अपनी जवांमर्दी का कोई-न-कोई प्रसंग अवश्य छेड़ देते। निर्मला को सन्देह होने लगा कि कहीं इन्हें उन्माद का रोग तो नहीं हो रहा है। जो आदमी मूंग की दाल और मोटे आटे के फुलके खाकर भी नमक सुलेमानी का मोहताज हो, उसके छैलपन पर उन्माद का सन्देह हो, तो आश्चर्य ही क्या? निर्मला पर इस पागलपन का और तो क्या रंग जमता, हाँ, उसे उन पर दया आने लगी। क्रोध और घृणा का भाव जाता रहा। क्रोध और घृणा उस पर होती है, जो अपने होश में हो। पागल आदमी तो दया ही का पात्र है। वह बात-बात में उनकी चुटकियाँ लेती, उनका मजाक उड़ाती, जैसे लोग पागलों के साथ किया करते हैं। हाँ, इसका ध्यान रखती थी कि वह समझ न जायं। वह सोचती, बेचारा अपने पाप का प्रायश्चित कर रहा है। यह सारा स्वाँग केवल इसीलिए तो है कि मैं अपना दुख भूल जाऊं। आखिर अब भाग्य तो बदल सकता नहीं, इस बेचारे को क्यों जलाऊं?

एक दिन रात को नौ बजे तोताराम बाँके बने हुए सैर करके लौटे और निर्मला से बोले—आज तीन चोरों से सामना हो गया। मैं जरा शिवपुर की तरफ चला गया था। अंधेरा था ही। ज्यों ही रेल की सड़क के पास पहुँचा, तो तीन आदमी तलवार लिये हुए न जाने किधर से निकल पड़े। यकीन मानो, तीनों काले देव थे! मैं बिलकुल अकेला, हाथ में सिर्फ यह छड़ी थी। उधर तीनों तलवार बाँधे हुए, होश उड़ गए। समझ गया कि जिन्दगी का यहीं तक साथ था, मगर मैंने भी सोचा, मरता ही हूँ तो वीरों की मौत क्यों न मरूँ। इतने में एक आदमी ने ललकारकर कहा—रख दे, पास जो कुछ हो और चुपके से चला जा।

मैं छड़ी सँभालकर खड़ा हो गया और बोला—मेरे पास सिर्फ यही छड़ी है, और इसका मूल्य एक आदमी का सिर है।

मेरे मुँह से इतना निकलना था कि तीनों तलवार खींचकर मुझ पर झपट पड़े और मैं उनके वारों को छड़ी पर रोकने लगा। तीनों झल्ला-झल्लाकर वार करते थे, खटाके की आवाज होती थी और मैं बिजली की तरह झपटकर उनके वारों को काट देता था। कोई दस मिनट तक तीनों ने खूब तलवार का जौहर दिखाया, पर मुझ पर रेफ तक न आयी। मजबूरी यही थी कि मेरे हाथ में तलवार न थी। यदि कहीं तलवार होती तो एक को जीता न छोड़ता। खैर, कहाँ तक बयान करूँ, उस वक्त मेरे हाथों की सफाई देखने काबिल थी। मुझे खुद आश्चर्य हो रहा था कि यह चपलता मुझमें कहाँ से आ गई। जब तीनों ने देखा कि यहाँ दाल नहीं गलने की, तो तलवार म्यान में रख ली और पीठ ठोंककर बोले—जवान, तुम-सा वीर आज तक नहीं देखा। हम तीनों सौ पर भारी हैं, गाँव-के-गाँव ढोल बजाकर लूटते हैं, पर आज तुमने हमें नीचा दिखा दिया। हम तुम्हारा लोहा मान गए। कहकर तीनों फिर नजरों से गायब हो गए।

निर्मला ने गम्भीर भाव से मुस्कराकर कहा—इस छड़ी पर तलवारों के बहुत-से निशान बने होंगे?

मुंशीजी इस शंका के लिए तैयार न थे, पर कोई जवाब देना आवश्यक था, बोले—मैं वारों को बराबर खाली कर देता था। दो-चार चोटें छड़ी पर पड़ीं भी तो उचटती हुई, जिनसे कोई निशान नहीं पड़ सकता था।

अभी उनके मुँह से पूरी बात भी न निकली थी कि सहसा रुक्मिणी देवी बदहवास दौड़ती हुई आयीं और हाँफते बोलीं—तोता, तोता है कि नहीं? मेरे कमरे में एक साँप निकल आया है। मेरी चारपाई के नीचे बैठा हुआ है। मैं उठकर भागी। मुआ कोई दो गज का होगा। फन निकाले फुफकार रहा है, जरा चलो तो! डंडा लेते चलना।

तोताराम के चेहरे का रंग उड़ गया, मुँह पर हवाइयाँ छूटने लगीं मगर मन के भावों

को छिपाकर बोले—साँप यहाँ कहाँ ? तुम्हें धोखा हुआ होगा ? कोई रस्सी होगी।

रुक्मिणी—अरे, मैंने अपनी आँखों देखा है। जरा चलकर देख न लो। हे ! हे ! मर्द होकर डरते हो ?

मुंशीजी घर से निकले, लेकिन बरामदे में फिर ठिठक गये। उनके पाँव ही न उठते थे। कलेजा धड़-धड़ कर रहा था। साँप बड़ा क्रोधी जानवर है। कहीं काट ले तो मुफ्त में प्राण से हाथ धोना पड़े। बोले—डरता नहीं। साँप ही तो है, शेर तो नहीं। मगर साँप पर लाठी नहीं असर करती; जाकर किसी को भेजूं, किसी के घर से भाला लाये।

यह कहकर मुंशीजी लपके हुए बाहर चले गए। मंसाराम खाना खा रहा था। मुंशीजी तो बाहर गये, उधर यह खानाा खाकर अपनी हाकी का डंडा हाथ में ले, कमरे में घुस ही तो पड़ा और तुरन्त चारपाई खींच ली। साँप मस्त था, भागने के बदले फन निकालकर खड़ा हो गया। मंसाराम ने चटपट चारपाई की चादर उठाकर साँप के ऊपर फेंक दी और ताबड़तोड़ तीन-चार डण्डे कसकर जमाए। साँप चादर के अन्दर तड़पकर रह गया। तब उसे डण्डे पर उठाए, बाहर चला। मुंशीजी कई आदमियों को साथ लिए चले आ रहे थे। मंसाराम को साँप लटकाए आते देखा, तो सहसा उनके मुख से चीख निकल पड़ी। मगर फिर सँभल गए और बोले—मैं तो आ ही रहा था, तुमने क्यों जल्दी ? दे दो, कोई फेंक आये।

यह कहकर बहादुरी के साथ रुक्मिणी के कमरे के द्वार पर आकर खड़े हो गए और कमरे को खूब देखभालकर मूंछों पर ताव देते हुए निर्मला के पास जाकर बोले—मैं जब तक आऊं-आऊं मंसाराम ने मार डाला ! बेसमझ लड़का डण्डा लेकर दौड़ पड़ा। मैंने ऐसे-ऐसे कितने साँप मारे हैं। साँप को खिला-खिलाकर मारता हूं। कितनों ही को मुट्ठी में पकड़कर मसल दिया है।

रुक्मिणी ने कहा—जाओ भी, देख ली तुम्हारी मर्दानगी।

मुंशीजी झेंपकर बोले—अच्छा जाओ, मैं डरपोक ही सही ! तुमसे कुछ इनाम तो नहीं माँग रहा हूं। जाकर महाराज से कहो, खाना निकाले;

मुंशीजी तो भोजन करने गये और निर्मला द्वार की चौखट पर खड़ी सोच रही थी—भगवान् ! क्या इन्हें सचमुच कोई भीषण रोग हो रहा है ? क्या मेरी दशा को और भी दारुण बनाना चाहते हो ? मैं इनकी सेवा कर सकती हूं, अपना जीवन इनके चरणों पर अर्पण कर सकती हूं, लेकिन वह नहीं कर सकती, जो मेरे किए नहीं हो सकता। अवस्था का भेद मिटाना मेरे बस की बात नहीं। आखिर यह मुझसे क्या चाहते हैं ? —समझ गई। आह ! यह बात पहले ही नहीं समझी थी, नहीं तो इनको क्यों इतनी तपस्या करनी पड़ती, क्यों इतने स्वाँग भरने पड़ते ?

: ७ :

उस दिन से निर्मला का रंग-ढंग बदलने लगा। उसने अपने को कर्त्तव्य पर मिटा देने का निश्चय कर लिया। अब तक नैराश्य के संताप में उसने कर्त्तव्य पर ध्यान ही नहीं दिया था। उसके हृदय में विप्लव की ज्वाला-सी दहकती रहती थी, जिसकी असह्य वेदना ने उसे संज्ञाहीन-सा कर रखा था।

अब उस वेदना का वेग शांत होने लगा। उसे ज्ञात हुआ कि मेरे जीवन में कोई आनंद नहीं। उसका स्वप्न देखकर क्यों इस जीवन को नष्ट करूं? संसार के सब-के-सब प्राणी सुख-सेज पर ही तो नहीं सोते। मैं भी उन्हीं अभागों में हूं। मुझे भी विधाता ने दुःख की गठरी ढोने के लिए चुना है। यह बोझ सिर से उतर नहीं सकता। उसे फेंकना भी चाहूं तो नहीं फेंक सकती। उस कठिन भार से चाहे आंखों में अंधेरा छा जाए, चाहे गर्दन टूटने लगे, चाहे पैर उठाना दुस्तर हो जाये, लेकिन गठरी ढोनी पड़ेगी। उम्र भर का कैदी कहां तक रोयेगा? रोए भी तो कौन देखता है? किसे उस पर दया आती है? रोने से काम में हर्ज होने के कारण उसे और यातनाएं ही तो सहनी पड़ती हैं।

दूसरे दिन वकील साहब कचहरी से आये तो देखा, निर्मला की सहास्य मूर्ति अपने कमरे के द्वार पर खड़ी है। वह अनिंद्य छवि देखकर उनकी आंखें तृप्त हो गईं। आज बहुत दिनों के बाद उन्हें यह कमल खिला दिखाई दिया। कमरे में एक बड़ा-सा आईना दीवार में लटका हुआ था। आज उसका पर्दा उठा हुआ था। वकील साहब ने कदम रखा, तो शीशे पर निगाह पड़ी। अपनी सूरत साफ-साफ दिखाई दी। उनके हृदय में चोट-सी लग गई। दिन-भर के परिश्रम से मुख की कांति मलिन हो गई थी। भांति-भांति के पौष्टिक पदार्थ खाने पर भी गालों की झुर्रियां साफ दिखाई दे रही थीं। तोंद कसी होने पर भी किसी मुंहजोर घोड़े की भांति बाहर निकली हुई थी। दोनों सूरतों में कितना अन्तर था! एक रत्न जटित विशाल भवन था, दूसरा टूटा-फूटा खंडहर। वह उस आईने की ओर और न देख सके। अपनी यह हीनावस्था उनके लिए असह्य थी। वह आईने के सामने से हट गए, उन्हें अपनी ही सूरत से घृणा होने लगी। फिर इस रूपवती कामिनी का उनसे घृणा करना कोई आश्चर्य की बात न थी। निर्मला की ओर ताकने का भी उन्हें साहस न हुआ। उसकी यह अनुपम छवि उनके हृदय का शूल बन गई।

निर्मला ने कहा—आज इतनी देर कहां लगाई? दिन भर राह देखते-देखते आंखें फूट जाती हैं।

तोताराम ने खिड़की की ओर ताकते हुए जवाब दिया—मुकदमे के मारे दम मारने की छुट्टी नहीं मिलती। अभी एक मुकदमा और था लेकिन मैं सिर दर्द का बहाना करके

भाग खड़ा हुआ।

निर्मला—तो क्यों इतने मुकदमे लेते हो ? काम उतना ही करना चाहिए, जितना आराम से हो सके। प्राण देकर थोड़े ही काम किया जाता है। मत लिया करो मुकदमे मुझे रुपयों की लालच नहीं। तुम आराम से रहोगे, तो रुपये बहुत मिलेंगे।

तोताराम—भई, आती हुई लक्ष्मी तो नहीं ठुकराई जाती।

निर्मला—लक्ष्मी अगर रक्त और मांस की भेंट लेकर आती है तो उसका न आना ही अच्छा है। मैं धन की भूखी नहीं हूँ।

इसी वक्त मंसाराम भी स्कूल से लौटा। धूप में चलने के कारण मुख पर पसीने की बूँदें आयी हुई थीं, गोरे मुखड़े पर खून की लाली दौड़ रही थी। आँखों से ज्योति-सी निकलती मालूम होती थी। द्वार पर खड़ा होकर बोला—अम्मांजी, लाइए, कुछ खाने को निकालिए, जरा खेलने जाना है।

निर्मला जाकर गिलास में पानी लायी और एक तश्तरी में कुछ मेवे रख कर मंसाराम को दिये। मंसाराम जब खाकर चलने लगा, तो निर्मला ने पूछा—कब तक आओगे ?

मंसाराम—कह नहीं सकता; गोरों के साथ हाकी का मैच है। बारक यहाँ से बहुत दूर है।

निर्मला—भई, जल्द आना। खाना ठण्डा हो जाएगा तो कहोगे, मुझे भूख नहीं है।

मंसाराम ने निर्मला की ओर सरल स्नेह-भाव से देखकर कहा—मुझे देर हो जाए तो समझ लीजिएगा, यहीं खा रहा हूँ। मेरे लिए बैठने की जरूरत नहीं।

वह चला गया, तो निर्मला बोली—पहले तो घर में आते ही न थे, मुझसे बोलते शर्माते थे। किसी चीज की जरूरत होती, तो बाहर ही से मँगवा भेजते। जब से मैंने बुलाकर कहा, तब से आने लगे।

तोताराम ने कुछ चिढ़कर कहा—यह तुम्हारे पास खाने-पीने की चीजें क्यों माँगने आता है ? दीदी से क्यों नहीं कहता ?

निर्मला ने यह बात प्रशंसा पाने के लोभ से कही थी। वह यह दिखाना चाहती थी कि मैं तुम्हारे लड़कों को कितना चाहती हूँ। यह कोई बनावटी प्रेम न था। उसे लड़कों से सचमुच स्नेह था। उसके चरित्र में अभी तक बाल-भाव ही प्रधान था और बालकों के साथ उसकी ये बाल-वृत्तियाँ प्रस्फुटित होती थीं। पत्नी-सुलभ ईर्ष्या अभी तक उसके मन में उदय नहीं हुई थी; लेकिन पति के प्रसन्न होने के बदले नाक-भौं सिकोड़ने का आशय न समझकर बोली—मैं क्या जानूँ, उनसे क्यों नहीं माँगते। मेरे पास आते हैं, तो दुतकार नहीं देती। अगर ऐसा करूँ, तो यही होगा कि यह तो लड़कों को देखकर जलती है।

मुंशीजी ने इसका कुछ जवाब नहीं दिया, लेकिन आज उन्होंने मुवक्किलों से बातें नहीं कीं। मंसाराम के पास गये और उसका इम्तहान लेने लगे। यह जीवन में पहला ही अवसर था, जबकि उन्होंने मंसाराम या और किसी लड़के की शिक्षोन्नति के विषय में इतनी दिलचस्पी दिखायी हो। उन्हें अपने काम से सिर उठाने की फुरसत ही न मिलती थी। उन्हें उन विषयों को पढ़े हुए चालीस वर्ष के लगभग हो गए थे। तब से उनकी ओर आँख तक न उठायी थी। वह कानूनी पुस्तकों और पत्रों के सिवा और कुछ पढ़ते ही न थे। इसका समय ही न मिलता। पर आज उन्हीं विषयों में वह मंसाराम की परीक्षा लेने लगे। मंसाराम जहीन था और इसके साथ मेहनती था। खेल में भी टीम का कैप्टन होने पर भी वह क्लास में प्रथम रहता था। जिस पाठ को एक बार देख लेता, पत्थर की लकीर हो जाती थी। मुंशीजी को उतावली में ऐसे मार्मिक प्रश्न तो सूझे नहीं, जिनके उत्तर देने में चतुर लड़के को भी कुछ सोचना पड़ता और ऊपरी प्रश्नों को मंसाराम ने चुटकियों में उड़ा दिया।

कोई सिपाही अपने शत्रु पर वार खाली जाते देख, जैसे झल्ला-झल्लाकर और भी तेज़ी से वार करता है, उसी भाँति मंसाराम के जवाबों को सुन-सुनकर वकील साहब भी झल्लाते थे। वह कोई ऐसा प्रश्न करना चाहते थे, जिसका जवाब मंसाराम से न बन पड़े। देखना चाहते थे कि इसका कमजोर पहलू कहाँ है। यह देख अब उन्हें सन्तोष न हो सकता था कि वह क्या करता है। वह यह देखना चाहते थे कि वह क्या नहीं कर सकता। कोई अभ्यस्त परीक्षक मंसाराम की कमजोरियों को आसानी से दिखा देता। पर वकील साहब अपनी आधी शताब्दी की भूली हुई शिक्षा के आधार पर उतने सफल कैसे होते ? अंत में उन्हें अब गुस्सा उतारने के लिए कोई बहाना न मिला, तो बोले—मैं देखता हूँ, तुम सारे दिन मटरगश्ती किया करते हो। मैं तुम्हारे चरित्र को तुम्हारी बुद्धि से बढ़कर समझता हूँ। और तुम्हारा यों आवारा घूमना मुझे गवारा नहीं हो सकता।

मंसाराम ने निर्भीकता से कहा—मैं शाम को एक घंटा खेलने के लिए जाने के सिवा दिन-भर कहीं नहीं जाता। आप अम्माँ या बुआजी से पूछ लें। मुझे खुद इस तरह घूमना पसंद नहीं। हाँ, खेलने के लिए हेडमास्टर साहब आग्रह करके बुलाते हैं मजबूरन जाना पड़ता है। अगर आपको मेरा खेलने जाना पसन्द नहीं है, तो कल से न जाऊँगा।

मुंशीजी ने देखा कि बातें दूसरे ही रुख पर जा रही हैं, तो तीव्र स्वर से बोले—मुझे इस बात का इतमीनान क्योंकर हो कि खेलने के सिवा कहीं नहीं घूमने जाते ? मैं बराबर शिकायत सुनता हूँ।

मंसाराम ने उत्तेजित होकर कहा—किन महाशय ने आपसे यह शिकायत की है,

जरा मैं भी सुनूं ?

वकील—कोई हो, इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं. तुम्हें इतना विश्वास होना चाहिए कि मैं झूठा आक्षेप नहीं करता।

मंसाराम—अगर मेरे सामने आकर कोई कह दे कि मैंने इन्हें घूमते देखा है, तो मुंह न दिखाऊँ।

वकील—किसी को ऐसी क्या गरज़ पड़ी है कि तुम्हारे मुँह पर तुम्हारी शिकायत करे और तुमसे वैर मोल ले और तुम अपने दो-चार साथियों को लेकर उनके घर की खपरैल फोड़ते फिरो। मुझसे इस किस्म की शिकायत एक आदमी ने नहीं, कई आदमियों ने की है और कोई वजह नहीं है कि मैं अपने दोस्तों की बात का विश्वास न करूं। मैं चाहता हूं कि तुम स्कूल ही में रहा करो।

मंसाराम ने मुंह गिराकर कहा—मुझे वहाँ रहने में कोई आपत्ति नहीं है। जब से कहिए, चला जाऊँ।

वकील—तुमने मुंह क्यों लटका लिया, क्या वहाँ रहना अच्छा नहीं लगता ? ऐसा मालूम होता है, मानो वहाँ के भय से तुम्हारी नानी मरी जा रही है। आखिर बात क्या है, वहाँ तुम्हें क्या तकलीफ होगी ?

मंसाराम छात्रालय में रहने के लिए उत्सुक नहीं था; लेकिन जब मुंशीजी ने यही बात कह दी और इसका कारण पूछा, तो वह अपनी झेंप मिटाने के लिए प्रसन्नचित होकर बोला—मुंह क्यों लटकाऊँ ? मेरे लिए जैसे घर वैसे बोर्डिंग-हाउस। तकलीफ भी कोई नहीं, और हो भी तो उसे सह सकता हूं। मैं कल से चला जाऊँगा। हाँ, अगर जगह खाली न हुई, तो मजबूरी है।

तोताराम वकील थे। समझ गए कि यह लौंडा कोई बहाना ढूंढ़ रहा है, जिसमें वहाँ जाना भी न पड़े और कोई इल्जाम भी सिर पर न आए। बोले—सब लड़कों के लिए जगह है, तुम्हारे लिए जगह न होगी ?

मंसाराम—कितने ही लड़कों को जगह नहीं मिली और बहुत से बाहर किराये के मकानों में पड़े हुए हैं। अभी बोर्डिंग-हाऊस से एक लड़के का नाम कट गया था, तो पचास अर्जियाँ उस जगह के लिए आयी थीं।

वकील साहब ने ज्यादा तर्क-वितर्क करना उचित न समझा। मंसाराम को कल तैयार रहने की आज्ञा देकर अपनी बग्घी तैयार करायी और सैर करने चले गए। इधर कुछ दिनों से वह शाम को प्रायः सैर करने चले जाया करते थे। किसी अनुभवी प्राणी ने बतलाया था कि दीर्घ जीवन के लिए इससे बढ़कर कोई मंत्र नहीं है। उनके जाने के बाद मंसाराम आकर रुक्मिणी से बोला—बुआजी, बाबूजी ने मुझे कल से स्कूल ही में रहने

को कहा है।

रुक्मिणी ने विस्मित होकर पूछा—क्यों ?

मंसा०—मैं क्या जानूँ ? कहने लगे कि तुम यहाँ आवारों की तरह इधर-उधर फिरा करते हो।

रुक्मिणी—तूने कहा नहीं कि मैं कहीं नहीं जाता ?

मंसा०—कहा क्यों नहीं, मगर जब वह मानें भी।

रुक्मिणी—तुम्हारी नई अम्माँजी की कृपा होगी, और क्या ?

मंसाराम—नहीं बुआजी, मुझे उन पर संदेह नहीं है। वह बेचारी तो भूल से भी कभी नहीं कहती। कोई चीज माँगने जाता हूँ, तो तुरंत उठकर देती हैं।

रुक्मिणी—तू यह त्रिया-चरित्र क्या जाने ! यह उन्हीं की लगायी हुई आग है। देख, मैं जाकर पूछती हूँ।

रुक्मिणी झल्लाती हुई निर्मला के पास जा पहुँची। उसे आड़े हाथों लेने का, काँटों में घसीटने का, रुलाने का सुअवसर वह हाथ से न जाने देती थी। निर्मला उनका आदर करती थी। उनसे दबती थी, उनकी बातों का जवाब तक न देती थी। वह चाहती थी कि वह मुझे सिखावन की बातें कहें, जहाँ मैं भूलूँ, वहाँ सुधारें; वह कामों की देख-रेख करती रहें। पर रुक्मिणी उससे तनी ही रहती थी।

निर्मला चारपाई से उठकर बोली—आइए, दीदी, बैठिए।

रुक्मिणी ने खड़े-खड़े कहा—मैं पूछती हूँ, क्या तुम सब को घर से निकाल कर अकेली ही रहना चाहती हो ?

निर्मला ने कातर भाव से कहा—क्या हुआ दीदीजी ? मैंने तो किसी से कुछ नहीं कहा।

रुक्मिणी—मंसाराम को घर से निकाले देती हो, तिस पर कहती हो, मैंने तो कुछ नहीं कहा ! क्या तुमसे इतना भी नहीं देखा जाता ?

निर्मला—दीदीजी, तुम्हारे चरणों को छूकर कहती हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम। मेरी आँखें फूट जायँ, अगर मैंने उसके विषय में मुँह तक खोला हो।

रुक्मिणी—क्यों व्यर्थ कसमें खाती हो ? अब तक तोताराम कभी लड़के से नहीं बोलते थे। एक हफ्ते के लिए मंसाराम ननिहाल चला गया था, तो इतना घबराए कि खुद जाकर लिवा लाए। अब उसी मंसाराम को घर से निकाल कर स्कूल में रखे देते हैं। अगर लड़के का बाल भी बाँका हुआ, तो तुम जानोगी। वह कभी बाहर नहीं रहा। उसे न खाने की सुध रहती है, न पहनने की। जहाँ बैठा, वहीं सो जाता है। कहने को तो जवान हो गया, पर स्वभाव बालकों-सा है। स्कूल में तो उसका मरन हो जायगा। वहाँ किसे

फिक्र है कि उसने खाया या नहीं, कहाँ कपड़े उतारे कहाँ सो रहा। जब घर में कोई पूछने वाला नहीं, तो बाहर कौन पूछेगा ? मैंने तुम्हें चेता दिया, आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

यह कहकर रुक्मिणी वहां से चली गई।

वकील साहब सैर करके लौटे तो निर्मला ने तुरन्त यह विषय छेड़ दिया। मंसाराम से वह आजकल थोड़ी देर अँगरेजी पढ़ती थी। उसके चले जाने पर फिर उसके पढ़ने का हरज न होगा ? दूसरा कौन पढ़ाएगा ? वकील साहब को अब तक यह बात मालूम न थी। निर्मला ने सोचा था कि जब कुछ अभ्यास हो जाएगा, तो वकील साहब को एक दिन अंगरेजी में बातें करके चकित कर दूंगी। कुछ थोड़ा सा ज्ञान तो उसे अपने भाइयों से हो गया था। अब वह नियमित रूप से पढ़ रही थी। वकील साहब की छाती पर साँप लोट गया, त्योरियाँ बदलकर बोले—वो कब से पढ़ा रहा है तुम्हें ? मुझसे तुमने कभी नहीं कहा।

निर्मला ने उनका यह रूप केवल एक बार देखा था, जब उन्होंनो सियाराम को मारते-मारते बेदम कर दिया था। वही रूप और भी विकराल बनकर आज उसे फिर दिखाई दिया। सहमती हुई बोली—उनके पढ़ने में तो इससे कोई हरज नहीं होता। मैं उसी वक्त उनसे पढ़ती हूं, जब उन्हें फुरसत रहती है। पूछ लेती हूं कि तुम्हारा हरज हो तो जाओ। बहुधा जब वह खेलने जाने लगते हैं, तो दस मिनट के लिए रोक लेती हूं। मैं खुद चाहती हूं कि उनका नुकसान न हो।

बात कुछ न थी, मगर वकील साहब हताश होकर चारपाई पर गिर पड़े और माथे पर हाथ रखकर चिन्ता में मग्न हो गए। उन्होंने जितना समझा था, बात उससे कहीं अधिक बढ़ गई थी। उन्हें अपने ऊपर क्रोध आया कि मैंने पहले ही क्यों न इस लौंडे को बाहर रखने का प्रबन्ध किया। आजकल जो यह महारानी इतनी खुश दिखाई देती हैं, इसका रहस्य अब समझ में आया। पहले कभी इतनी सजी-सजायी न रहती थीं, बनाव-चुनाव भी न करती थीं, पर अब देखता हूं, कायापलट-सी हो गई है। जी में तो आया कि इसी वक्त चलकर मंसाराम को निकाल दें, लेकिन प्रौढ़ बुद्धि ने समझाया कि इस अवसर पर क्रोध की जरूरत नहीं। कहीं इसने भाँप लिया, तो गजब ही हो जायगा। हाँ, जरा इसके मनोभावों को टटोलना चाहिए। बोले—यह तो मैं जानता हूं कि तुम्हें दो-चार मिनट पढ़ाने से उसका कोई हरज नहीं होता; लेकिन आवारा लड़का है, अपना काम न करने का उसे एक बहाना तो मिल जाता है। कल अगर फेल हो गया, तो साफ कह देगा—मैं तो दिन-भर पढ़ाता रहता था। मैं तुम्हारे लिए कोई मिस नौकर रख दूंगा। कुछ ज्यादा खर्च न होगा। तुमने मुझसे पहले कहा ही नहीं। वह तुम्हें भला क्या पढ़ाता

होगा? दो-चार प्रश्न बताकर भाग जाता होगा। इस तरह तुम्हें कुछ भी न आएगा।

निर्मला ने तुरंत इस आक्षेप का खंडन किया—नहीं, यह बात तो नहीं। वह मुझे दिल लगाकर पढ़ाते हैं, और उनकी शैली भी ऐसी है कि पढ़ने में मन लगता है। आप एक दिन जरा उनका समझाना देखिए। मैं तो समझती हूं कि मिस इतने ध्यान से न पढ़ाएंगी।

मुंशीजी अपनी प्रश्न-कुशलता पर मूंछों पर ताव देते हुए बोले—दिन में एक ही बार पढ़ाता है या कई बार?

निर्मला अब भी इन प्रश्नों का आशय न समझी। बोली—पहले तो शाम ही को पढ़ा देते थे, अब कई दिनों से एक बार आकर लिखना भी देख लेते हैं। वह तो कहते हैं कि मैं अपने क्लास में सबसे अच्छा हूं। अभी परीक्षा में इन्हीं को प्रथम स्थान मिला था, फिर आप कैसे समझते हैं कि उनका पढ़ने में जी नहीं लगता? मैं इसलिए और भी कहती हूं कि दीदी समझेंगी, इसी ने आग लगाई है? मुफ्त में मुझे यह ताने सुनने पड़ेंगे। अभी जरा ही देर हुई, मुझसे कहकर गयी हैं।

मुंशीजी ने दिल में कहा, खूब समझता हूं। तुम कल की छोकरी होकर मुझे चराने चलीं? दीदी का सहारा लेकर अपना मतलब पूरा करना चाहती हो। बोले—मैं नहीं समझता, बोर्डिंग का नाम सुनकर क्यों लौंडे की नानी मरती है। और लड़के खुश होते हैं कि अपने दोस्तों में रहेंगे, यह उलटे रो रहा है। अभी कुछ दिन पहले तक यह दिल लगाकर पढ़ता था। यह उसी मेहनत का नतीजा है कि अपने क्लास में सबसे अच्छा है लेकिन इधर कुछ दिनों से सैर-सपाटे का चस्का पड़ चला है। अगर अभी से रोक-थाम न की गई, तो पीछे करते-धरते न बन पड़ेगा। तुम्हारे लिए मैं मिस रख दूंगा।

दूसरे दिन मुंशीजी प्रातःकाल कपड़े-लत्ते पहनकर बाहर निकले। दीवानखाने में कई मुवक्किल बैठे हुए थे। इनमें एक राजा साहब भी थे जिनसे मुंशीजी को कई हजार सालाना मेहनताना मिलता था। मगर मुंशीजी उन्हें वहीं छोड़ कर दस मिनट में आने का वादा करके बग्घी पर बैठकर स्कूल के हेडमास्टर के यहाँ जा पहुंचे। हेडमास्टर साहब बड़े सज्जन पुरुष थे। वकील साहब का बहुत आदर-सत्कार किया, पर उनके यहां एक लड़के की भी जगह खाली न थी। सभी कमरे भरे हुए थे। इंस्पेक्टर साहब की कड़ी ताकीद थी कि मुफस्सिल के लड़कों को जगह देकर तब शहर के लड़कों को दिया जाय। इसलिए कोई जगह खाली भी हुई तो भी मंसाराम को जगह न मिल सकेगी, क्योंकि कितने ही बाहरी लड़कों के प्रार्थना-पत्र रखे हुए थे। मुंशीजी वकील थे, रात-दिन ऐसे प्राणियों से साबिका रहता, जो लोभवश असंभव को भी संभव, असाध्य को भी साध्य बना सकते हैं। समझे, शायद कुछ दे-दिलाकर काम निकल जाय—दफ्तर के क्लर्क से

ढंग की कुछ बातचीत करना चाहिए, पर उसने हँसकर कहा—मुंशीजी, यह कचहरी नहीं, स्कूल है। हेडमास्टर साहब के कानों में इसकी भनक भी पड़ गई, तो जामे से बाहर हो जायँगे और मंसाराम को खड़े-खड़े निकाल देंगे। संभव है, अफसरों से शिकायत कर दें। बेचारे मुंशीजी अपना-सा मुंह ले कर रह गए। दस बजते-बजते झुंझलाते हुए घर लौटे। मंसाराम उसी वक्त घर से स्कूल जाने को निकला। मुंशीजी ने कठोर नेत्रों से उसे देखा, मानो यह उनका शत्रु हो और घर में चले गए।

इसके बाद दस-बारह निदों तक वकील साहब का यही नियम रहा कि कभी सुबह, कभी शाम, किसी-न-किसी स्कूल के हेडमास्टर से मिलने और मंसाराम को बोर्डिंग हाऊस में दाखिल कराने की चेष्टा करते, पर किसी स्कूल में जगह न थी। सभी जगहों से कोरा जवाब मिल गया। अब दो ही उपाय थे—या तो मंसाराम को अलग किराये के मकान में रख दिया जाय, या किसी दूसरे स्कूल में भर्ती करा दिया जाय। यह दोनों ही बातें आसान थीं। मुफस्सिल के स्कूल में जगह अक्सर खाली रहती थी, लेकिन अब मुंशीजी का शंकित हृदय कुछ शान्त हो गया था। उस दिन से उन्होंने मंसाराम को कभी घर में जाते न देखा। यहाँ तक कि वह खेलने भी न जाता था। स्कूल जाने के पहले और आने के बाद बराबर अपने कमरे में बैठा रहता। गर्मी के दिन थे, खुले हुए मैदान में भी देह से पसीने की धारें निकलती थीं, लेकिन मंसाराम अपने कमरे से बाहर न निकलता। उसका आत्माभिमान आवारापन के आक्षेप से मुक्त हो जाने के लिए विकल हो रहा था। वह अपने आचरण से इस कलंक को मिटा देना चाहता था।

एक दिन मुंशीजी बैठे भोजन कर रहे थे कि मंसाराम भी नहाकर खाने आया। मुंशीजी ने इधर उसे महीनों से नंगे बदन न देखा था। आज उस पर निगाह पड़ी, तो होश उड़ गए। हड्डियों का ढाँचा सामने खड़ा था। मुख पर अब भी ब्रह्मचर्य का तेज था, पर देह घुलकर काँटा हो गई थी। पूछा आजकल तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है क्या ? इतने दुबले क्यों हो ?

मंसाराम ने धोती ओढ़कर कहा—तबीयत तो बिलकुल अच्छी है।

मुंशीजी—फिर इतने दुबले क्यों हो ?

मंसाराम—दुबला तो नहीं हूं। मैं इससे ज्यादा मोटा कब था ?

मुंशीजी—वाह, आधी देह भी नहीं रही और कहते हो, मैं दुर्बल नहीं हूं। क्यों दीदी, यह ऐसा ही था ?

रुक्मिणी आँगन में खड़ी तुलसी को जल चढ़ा रही थी। बोली—दुबला क्यों होगा, अब तो बड़ी अच्छी तरह लालन-पालन हो रहा है। मैं गंवारिन थी, लड़कों को खिलाना-पिलाना नहीं जानती थी। खोमचा खिला-खिलाकर इनकी आदत बिगाड देती थी। अब तो

एक पढ़ी-लिखी गृहस्थी के कामों में चतुर औरत पान की तरह फेर रही है न ! दुबला हो उसका दुश्मन !

मुंशीजी—दीदी, तुम बहुत अन्याय करती हो। तुमसे किसने कहा कि लड़कों को बिगाड़ रही हो। जो काम दूसरे के किए न हो सके, वह तुम्हें खुद करना चाहिए। यह नहीं कि घर में कोई नाता न रखो। जो अभी खुद लड़की है, वह दूसरों की देख-भाल क्या करेगी ? यह तुम्हारा काम है।

रुक्मिणी—जब तक अपना समझती थी, करती थी। जब तुमने गैर समझ लिया, तो मुझे क्या पड़ी है कि तुम्हारे गले से चिपटूँ ? पूछो के दिन में दूध नहीं पिया ? जाकर कमरे में देख आओ, नाश्ते के लिए जो मिठाई भेजी गई थी, वह पड़ी सड़ रही है। मालकिन समझती हैं, मैंने तो खाने का सामान रख दिया, कोई न खाए तो क्या मैं मुँह में डाल दूँ ? तो भैया, इस तरह वे लड़के पलते होंगे, जिन्होंने कभी लाड़-प्यार का सुख नहीं देखा। तुम्हारे लड़के बराबर पान की तरह फेरे जाते रहे हैं, अब अनाथों की तरह रहकर सुखी नहीं रह सकते। मैं तो बात साफ कहती हूँ। बुरा मानकर ही कोई क्या कर लेगा ! उस पर सुनती हूँ कि लड़के को स्कूल में रखने का प्रबन्ध कर रहे हो। बेचारे को घर में आने तक की मनाही है। मेरे पास आते भी डरता है और फिर मेरे पास रखा ही क्या रहता है, जो जाकर खिलाऊँगी ?

इतने में मंसाराम दो फुलके खाकर उठ खड़ा हुआ। मुंशीजी ने पूछा—क्या तुम खा चुके ? अभी बैठे एक मिनट से ज्यादा नहीं हुआ। तुमने खाया क्या, दो ही फुलके तो लिये थे।

मंसाराम ने सकुचाते हुए कहा—दाल और तरकारी भी तो थी। ज्यादा खा जाता हूँ, तो गला जलने लगता है, खट्टी डकारें आने लगती हैं।

मुंशीजी भोजन करके उठे तो बहुत चिंतित थे। अगर लड़का यों ही दुबला होता गया, तो उसे कोई भयंकर रोग पकड़ लेगा। उन्हें रुक्मिणी पर इस समय बहुत क्रोध आ रहा था। उन्हें यही जलन है कि मैं घर की मालकिन नहीं हूँ। यह नहीं समझती कि मुझे घर की मालकिन बनने का क्या अधिकार है ? जिसे रुपयों का हिसाब तक करना नहीं आता, वह घर की स्वामिनी कैसे बन सकती है ? बनी तो थी साल-भर तक मालकिन—एक पाई की भी बचत न होती थी। इस आमदनी में रूपकला दो-ढाई सौ बचा लेती थी। इनके राज में वही आमदनी खर्च को भी पूरी न पड़ती थी। कोई बात नहीं, लाड़-प्यार ने इन लड़कों को चौपट कर दिया। इतने बड़े-बड़े लड़कों को इसकी क्या जरूरत कि जब कोई खिलाए तो खाएँ ? इन्हें तो खुद अपनी फिक्र करनी चाहिए। मुंशीजी दिन भर इस उधेड़बुन में पड़े रहे। दो-चार मित्रों से जिक्र किया। लोगों ने

की कुछ बातचीत करना चाहिए. पर उससे है ...

उसके खेल-कूद में बाधा न डालिए। अभी से उसे कैद न कीजिए। खुली हवा में के भ्रष्ट होने की उससे कहीं कम संभावना है, जितनी बन्द कमरे में। कुसंगत से बचाइए, मगर यह नहीं कि उसे घर से निकलने ही न दीजिए। युवावस्था में तवास चरित्र के लिए बहुत ही हानिकारक है।

मुंशीजी को अपनी गलती मालूम हुई। घर लौटकर मंसाराम के पास गये। वह भी स्कूल से आया था और बिना कपड़े उतारे एक किताब सामने खोलकर, सामने, लड़की की ओर ताक रहा था। उसकी दृष्टि एक भिखारिन पर लगी हुई थी, जो अपने बालक को गोद में लिये भिक्षा माँग रही थी। बालक माता की गोद में बैठा हुआ ऐसा प्रसन्न था, मानो वह किसी राजसिंहासन पर बैठा हो। मंसाराम उस बालक को देखकर रो पड़ा। यह बालक क्या मुझसे अधिक सुखी नहीं है ? इस अनन्त विश्व में ऐसी कौन-सी वस्तु की सृष्टि नहीं कर सकते। ईश्वर, ऐसे बालकों को जन्म ही क्यों देते हो, जिनके भाग्य में मातृवियोग का दुःख भोगना बदा हो ? आज मुझ-सा अभागा संसार में है ? किसे मेरे खाने-पीने की, मरने-जीने की सुध है। अगर आज मैं मर भी जाऊँ, तो किसके दिल को चोट लगेगी ? पिता को अब मुझे रुलाने में मजा आता है, वह मेरी सूरत भी नहीं देखना चाहते। मुझे घर से निकाल देने की तैयारियाँ हो रही हैं। आह माता ! तुम्हारा लाड़ला बेटा आज आवारा कहा जा रहा है ! वही पिताजी, जिनके हाथों में तुमने हम तीनों भाइयों के हाथ पकड़ाए थे, आज मुझे आवारा और बदमाश कह रहे हैं। मैं इस योग्य भी नहीं कि इस घर में रह सकूँ ? यह सोचते-सोचते अपार वेदना से फूट-फूटकर रोने लगा।

उसी समय तोताराम कमरे में आकर खड़े हो गए। मंशाराम ने चटपट आँसू पोंछ डाले और सिर झुकाकर खड़ा हो गया। मुंशीजी ने शायद यह पहली बार उसके कमरे में कदम रखा था। मंसाराम का दिल धड़-धड़ करने लगा कि देखें आज क्या आफत आ... है। मुंशीजी ने उसे रोते देखा, तो एक क्षण के लिए उनका वात्सलय घोर निद्रा से ... पड़ा। घबड़ाकर बोले—क्यों, रोते क्यों हो बेटा, किसी ने कुछ कहा है ?

मंसाराम ने बड़ी मुश्किल से उमड़ते हुए आँसुओं को रोककर कहा—जी, रोता नहीं हूँ।

मुंशीजी—तुम्हारी अम्माँ ने तो कुछ नहीं कहा ?

मंसाराम—जी नहीं, वह तो मुझसे बोलती ही नहीं।

मुंशीजी—क्या करूँ बेटा, शादी तो इसलिए की थी कि बच्चों को ... जायगी, लेकिन यह आशा पूरी नहीं हुई। तो क्या बिल्कुल नहीं बोलतीं ?

मंसाराम—जी नहीं, इधर महीनों से नहीं बोलीं।

मुंशीजी—विचित्र स्वभाव की औरत है, मालूम नहीं होता कि क्या चाहती है। मैं जानता कि उसका ऐसा मिजाज होगा,, तो कभी शादी न करता। रोज एक-न-एक बात लेकर उठ खड़ी होती है। उसी ने मुझसे कहा था कि यह दिन भर न जाने कहाँ गायब रहता है। मैं उसके दिल की बात क्या जानता था ? समझा तुम कुसंगत में पड़कर शायद दिन भर घूमा करते हो। कौन ऐसा पिता है, जिसे अपने प्यारे पुत्र को आवारा फिरते देखकर रंज न हो ? इसीलिए मैंने तुम्हें बोर्डिंग हाऊस में रखने का निश्चय किया। बस, और कोई बात नहीं थी, बेटा ! मैं तुम्हारा खेलना-कूदना बंद नहीं करना चाहता था। तुम्हारी यह दशा देखकर मेरे दिल के टुकड़े हुए जाते हैं। कल मुझे मालूम हुआ कि मैं भ्रम में था। तुम शौक से खेलो, सुबह-शाम मैदान में निकल जाया करो। ताजी हवा से तुम्हें लाभ होगा। जिस चीज की जरूरत हो, मुझसे कहो। उनसे कहने की जरूरत नहीं। समझ लो कि वह घर में हैं ही नहीं। तुम्हारी माता छोड़कर चली गई, तो मैं तो हूँ।

बालक का सरल, निष्कपट हृदय पितृप्रेम में पुलकित हो उठा। मालूम हुआ कि साक्षात् भगवान खड़े हैं। नैराश्य और क्षोभ से विकल होकर उसने अपने पिता को निष्ठुर और न जाने क्या-क्या समझ रखा था। विमाता से उसे कोई गिला न था। अब उसे ज्ञात हुआ कि मैंने अपने देवतुल्य पिता के साथ कितना अन्याय किया है। पितृभक्ति की एक तरंगसी हृदय में उठी और वह पिता के चरणों पर सिर रखकर रोने लगा। मुंशीजी करुणा से विकल हो गए। जिस पुत्र को एक क्षण-भर आँखो से ओझल देखकर उनका हृदय व्यग्र हो उठता था; जिसके शील बुद्धि और चरित्र का अपने-पराये सभी बखान करते थे, उसी के प्रति उनका हृदय इतना कठोर क्यों हो गया ? वह अपने ही प्रिय को शत्रु समझने लगे, उसको निर्वासन देने को तैयार हो गए। निर्मला पुत्र और पिता के बीच दीवार बनकर खड़ी थी। निर्मला को अपनी ओर खींचने के लिए पीछे हटना पड़ता था, पिता तथा पुत्र में अन्तर बढ़ता जाता था। फलतः आज यह दशा हो गई है कि अपने अभिन्न पुत्र से उन्हें इतना छल करना पड़ रहा है। आज बहुत सोचने के बाद उन्हें एक ऐसी युक्ति सूझी है, जिससे आशा हो रही है कि वह निर्मला को बीच से निकाल कर अपने दूसरे बाजू को अपनी तरफ कर लेंगे। उन्होंने उस युक्ति का आरंभ कर दिया है। लेकिन इसमें अभीष्ट सिद्ध होगा या नहीं, इसे कौन जानता है?

जिस दिन से तोताराम ने निर्मला के बहुत मिन्नत-समाजत करने पर भी मंसाराम को बोर्डिंग हाऊस भेजने का निश्चय किया था, उस दिन से उसने मंसाराम से पढ़ना छोड़ दिया था। यहाँ तक कि बोली भी न थी। उसे स्वामी की अविश्वासपूर्ण तत्परता का कुछ-कुछ आभास हो गया था। उफ्फोह ! इतना शक्की मिजाज ! ईश्वर ही इस घर में

लाज रखे। इनके मन में ऐसी-ऐसी दुर्भावनाएँ भरी हुई हैं। मुझे इतनी गयी-गुजरी समझते हैं। ये बातें सोच-सोचकर कई दिनों तक रोती रही। तब उसने सोचना शुरू किया, इन्हें क्यों ऐसा संदेह हो रहा है ? मुझमें ऐसी कौन-सी बात है, जो इनकी आँखों में खटकती है ? बहुत सोचने पर भी उसे अपने में कोई ऐसी बात नजर न आई। तो क्या उसका मंसाराम से पढ़ना, उससे हँसना-बोलना ही इनके सन्देह का कारण है ? तो फिर मैं पढ़ना छोड़ दूँगी, भूलकर भी मंसाराम से न बोलूँगी, उसकी सूरत न देखूँगी।

लेकिन यह समस्या उसे असाध्य जान पड़ती थी। मंसाराम के हँसने-बोलने में उसकी विलासिनी कल्पना उत्तेजित भी होती थी, तृप्त भी। उससे बातें करते हुए एक अपार सुख का अनुभव होता था, जिसे वह शब्दों में प्रकट न कर सकती थी। कुवासना की उसके मन में छाया भी न थी। वह स्वप्न में भी मंसाराम से कलुषित प्रेम करने की बात न सोच सकती थी। प्रत्येक प्राणी को अपने हमजोलियों के साथ हंसने-बोलने की जो एक नैसर्गिक तृष्णा होती है, उसी तृप्ति का यह एक अज्ञात साधन था। अब वह अतृप्त ... निर्मला के हृदय में दीपक की भांति जलने लगी। रह-रहकर उसका मन किसी ... वेदना से विकल हो जाता। खोयी हुई किसी अज्ञात वस्तु की खोज में इधर-उधर ...ती-फिरती, जहाँ बैठी वहाँ बैठी ही रह जाती; किसी काम में जी न लगता। हाँ, जब मुंशीजी आते, तो वह अपनी सारी तृष्णाओं को नैराश्य में डुबाकर, उनसे मुसकराकर इधर-उधर की बातें करने लगती।

कल जब मुंशीजी भोजन करके कचहरी चले गये, तो रुक्मिणी ने निर्मला को खूब तानों से छेदा—जानती तो थी कि यहाँ बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ेगा, तो क्यों घर वालों से नहीं कह दिया कि वहाँ मेरा विवाह न करो। वहाँ जाती, जहाँ पुरुष के सिवा और कोई न होता। वही यह बनाव-चुनाव और छवि देखकर खुश होता; अपने भाग्य को सराहता। यहाँ बुड्ढा आदमी तुम्हारे रंग-रूप, हाव-भाव पर क्या लट्टू होगा ? इसने इन्हीं बालकों की सेवा करने के लिए तुमसे विवाह किया है, भोग-विलास के लिए नहीं।

वह बड़ी देर तक घाव पर नमक छिड़कती रही, पर निर्मला ने चूं तक न की। वह अपनी सफाई तो पेश करना चाहती थी, पर कर न सकती थी। अगर कहे कि मैं वही कर रही हूँ, जो मेरे स्वामी की इच्छा है, तो घर का भण्डा फूटता है। अगर वह अपनी भूल स्वीकार करके उसका सुधार करती है, तो भय है कि उसका न जाने क्या परिणाम हो। वह यों बड़ी स्पष्टवादिनी थी, सत्य कहने में उसे संकोच या भय न होता था, लेकिन इस नाजुक मौके पर उसे चुप्पी साधनी पड़ी। इसके सिवाय दूसरा उपाय न था। वह देखती थी कि मंसाराम बहुत विरक्त और उदास रहता है; यह भी देखती थी कि वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता है; लेकिन उसकी वाणी और कर्म दोनों ही पर मुहर लगी

हुई थी। चोर के घर चोरी हो जाने से उसकी जो दशा होती है, वही दशा इस समय निर्मला की हो रही थी।

जब कोई बात हमारी आशा के विरुद्ध होती है, तभी दुःख होता है। मंसाराम को निर्मला से कभी इस बात की आशा न थी कि वह उसकी शिकायत करेगी इसलिए उसे घोर वेदना हो रही थी। वह क्यों मेरी शिकायत करती है ? क्या चाहती है ? यही कि यह मेरे पति की कमाई खाता है, इसके पढ़ने-लिखने मे रुपये खर्च होते है, कपड़े पहनता है। उनकी यही इच्छा होगी कि यह घर में न रहे। मेरे न रहने से उनके रुपये बच जायँगे। वह मुझसे बहुत प्रसन्नचित्त रहती हैं। कभी मैंने उनके मुँह से कटु वचन नही सुने। क्या यह सब कौशल है ? हो सकता है। चिड़िया को जाल मे फंसाने के पहले शिकारी दाने बिखेरता है। आह मै नहीं जानता था कि दाने के बीच जाल है, यह मातृस्नेह मेरे निर्वासन की भूमिका है !

अच्छा, मेरा यहाँ रहना क्यों बुरा लगता है ? जो उनका पति है, क्या वह मेरा पिता नहीं है ? क्या पिता-पुत्र का सम्बन्ध स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से कुछ कम घनिष्ठ है ? मगर मुझे उनके सम्पूर्ण आधिपत्य से ईर्ष्या नहीं होती—वह जो चाहे करें, मैं मुँह नहीं खोल सकता—तो वह मुझे पितृ-प्रेम से क्यों वंचित करना चाहती है ? वह अपने साम्राज्य में क्यों मुझे वृक्ष की छाया में बैठी नहीं देख सकतीं।

हाँ, वह समझती होंगी कि यह बड़ा होकर मेरे पति की संपत्ति का स्वामी हो जायगा, इसलिए अभी से निकाल देना अच्छा है। उनको कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मेरी ओर से यह शंका न करें। उन्हें क्योंकर बताऊँ कि मंसाराम विष खाकर प्राण दे देगा इसके पहले कि वह उनका अहित करे ! उसे चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ सहनी पड़ें वह उनके हृदय का शूल न बनेगा। यों तो पिताजी ने मुझे जन्म दिया है, और अब भी मुझ पर उनका स्नेह कम नहीं है, लेकिन क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि जिस दिन पिताजी ने उनसे विवाह किया, उसी दिन उन्होंने हमें अपने हृदय से बाहर निकाल दिया ? अब हम अनाथों की भाँति यहाँ पड़े रह सकते हैं, इस घर पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। कदाचित् पूर्व संस्कारों के कारण यहाँ अन्य अनाथो से हमारी दशा कुछ अच्छी है, पर है अनाथ ही। हम उसी दिन अनाथ हुए, जिस दिन अम्माँजी परलोक सिधारीं। जो कुछ कसर रह गई थी, वह इस विवाह ने पूरी कर दी। मै तो खुद पहले इनसे विशेष सम्बन्ध नहीं रखता था। अगर उन्ही दिनों पिताजी से मेरी शिकायत की होती, तो शायद मुझे इतना दुःख न होता। मैं तो उस आघात के लिए तैयार बैठा था। संसार मे क्या मैं

भगवान् मुझे मौत भी नहीं देते। बेचारा अकेले भूखा पड़ा है। उस वक्त भी मुँह जूठा करके उठ गया था, और उसका आहार ही क्या है—जितना वह खाता है, उतना साल-दो-साल के बच्चे खा जाते हैं।

निर्मला चली। पति की इच्छा के विरुद्ध चली। जो नाते में उसका पुत्र होता था, उसी को मनाने जाते उसका हृदय काँप रहा था।

उसने पहले रुक्मिणी के कमरे की ओर देखा। वह भोजन करके बे-खबर सो रही थी। फिर बाहर के कमरे की ओर गयी। वहाँ भी सन्नाटा था। मुंशीजी अभी न आये थे। यह सब देख-भालकर वह मंसाराम के सामने जा पहुँची। कमरा खुला हुआ था; मंसाराम एक पुस्तक सामने रखे मेज पर सिर झुकाए बैठा हुआ था, मानो शोक और चिन्ता की सजीव मूर्ति हो। निर्मला ने पुकारना चाहा, पर उसके कंठ से आवाज न निकली।

सहसा मंसाराम ने सिर उठाकर दीवार की ओर देखा। निर्मला को देखकर अंधेरे में पहचान न सका। चौंककर बोला—कौन ?

निर्मला ने काँपते स्वर में कहा—मैं तो हूँ। भोजन करने क्यों नहीं चल रहे हो ? रात गयी।

मंसाराम ने मुँह फेरकर कहा—मुझे भूख नहीं है।

निर्मला—यह तो मैं तीन बार भूँगी से सुन चुकी हूँ।

मंसाराम ने व्यंग्य की हँसी हँसकर कहा—बहुत भूख लगेगी, तो आएगा कहाँ से ?

यह कहते-कहते मंसाराम ने कमरे का द्वार बन्द करना चाहा, लेकिन निर्मला किवाड़ों को हटाकर कमरे में चली आयी और मंसाराम का हाथ पकड़कर सजल नेत्रों से विनय मधुर स्वर में बोली—मेरे कहने से चलकर थोड़ा-सा खा लो। तुम न खाओगे, तो मैं भी जाकर सो रहूँगी। दो ही कौर खा लेना। क्या मुझे रात-भर भूखों मारना चाहते हो ?

मंसाराम सोच में पड़ गया। अभी भोजन नहीं किया; मेरे ही इंतजार में बैठी रही। यह स्नेह, वात्सल्य और विनय की देवी है या ईर्ष्या और अमंगल की मायाविनी मूर्ति ? उसे अपनी माता का स्मरण हो आया। जब रूठ जाता था, तो वे भी इसी तरह मनाने आया करती थीं और जब तक वह न जाता था, वहाँ से न उठती थीं। वह इस विनय को अस्वीकार न कर सका। बोला—मेरे लिए आपको इतना कष्ट हुआ, इसका मुझे खेद है। मैं जानता कि आप मेरे इन्तजार में भूखी बैठी हैं, तो कभी खा आया होता।

निर्मला ने तिरस्कार-भाव से कहा—यह तुम कैसे समझ सकते थे कि तुम भूखे रहोगे और मैं खाकर सो रहूँगी ? क्या विमाता का नाता होने से ही ऐसी स्वार्थिनी हो जाऊँगी ?

सहसा मैदनि के कमरे से मुंशीजी के खाँसने की आवाज आयी। देखा, मालूम हुआ कि मंसाराम के कमरे की ओर आ रहे हैं। निर्मला के चेहरे का रंग उड़ गया। वह तुरन्त कमरे से निकल गयी और भीतर जाने का मौका न पाकर कठोर स्वर से बोली—मैं लौंडी नहीं हूँ कि इतनी रात तक किसी के लिए रसोई के द्वार पर बैठी रहूँ ! जिसे न खाना हो, पहले ही कह दिया करे।

मुंशीजी ने निर्मला को खड़े देखा। यह अनर्थ ! यह यहाँ क्या करने आ गई ? बोले—क्या कर रही हो ?

निर्मला ने कर्कश स्वर में कहा—क्या कर रही हूँ, अपने भाग्य को रो रही हूँ। बस, सारी बुराइयों की जड़ मैं हूँ। कोई इधर रूठा है, कोई उधर मुँह फुलाए पड़ा है। किस-किसको मनाऊँ और कहाँ तक मनाऊँ ?

मुंशीजी चकित होकर बोले—बात क्या है ?

निर्मला—भोजन करने नहीं जाते और क्या बात है ! दस दफे महरी को भेजा, आखिर आप दौड़ी आयी। इन्हें तो इतना कह देना आसान है, मुझे भूख नहीं है। यहाँ तो घर-भर की लौंडी हूँ, सारी दुनिया मुँह में कालिख पोतने को तैयार। किसी को भूख न हो, पर यह कहने वालों को कौन रोकेगा कि पिशाचिनी किसी को खाना नहीं देती !

मुंशीजी ने मंसाराम से कहा—खाना क्यों नहीं खा लेते जी ? जानते हो क्या वक्त है ?

मंसाराम स्तंभित-सा खड़ा था। उसके सामने एक ऐसा रहस्य हो रहा था, जिसका मर्म वह कुछ भी न समझ सकता था। जिन नेत्रों में एक क्षण पहले विनय के आँसू भरे हुए थे, उनमें अकस्मात् ईर्ष्या की ज्वाला कहाँ से आ गई ? जिन अधरों से एक क्षण पहले सुधा-वृष्टि हो रही थी, उनमें से विष का प्रवाह क्यों होने लगा ? उसी अर्ध चेतना की दशा में बोला—मुझे भूख नहीं।

मुंशीजी ने घुड़ककर कहा—क्यों भूख नहीं है ? भूख नहीं थी तो शाम को क्यों न कहला दिया ? तुम्हारी भूख के इन्तजार में कौन सारी रात बैठा रहे ? तुममें तो पहले यह आदत न थी। रूठना कब से सीख लिया ? जाकर खा लो।

मंसाराम—जी नहीं, मुझे जरा भी भूख नहीं है।

तोताराम ने दाँत पीसकर कहा—अच्छी बात है, जब भूख लगे तब खाना। यह कहते हुए वह अन्दर चले गए। निर्मला भी उनके पीछे चली गई ! मुंशीजी तो लेटने चले गए, उसने जाकर रसोई उठा दी और कुल्ला कर पान खा, मुस्कराती जा पहुँची। मुंशीजी ने पूछा—खाना खा लिया न ?

निर्मला—क्या करती ! किसी के लिए अन्न-जल छोड़ दूँगी?

मुंशीजी—इसे न जाने क्या हो गया है; कुछ समझ में नहीं आता। दिन-दिन घुलता जाता है; उसी कमरे में पड़ा रहता है।

निर्मला कुछ न बोली। वह चिन्ता के अपार सागर में डुबकियाँ खा रही थी। मंसाराम ने मेरे भाव-परिवर्तन को देखकर दिल में क्या समझा होगा ? क्या उसके मन में यह प्रश्न उठा होगा कि पिताजी को देखते ही उसकी त्योरियाँ क्यों बदल गई ? इसका कारण भी क्या उसकी समझ में आया होगा ? बेचारा खाने आ रहा था, तब तक यह महाशय न जाने कहाँ से फट पड़े। इस रहस्य को उसे कैसे समझाऊँ ? समझाना सम्भव भी है ? मैं किस विपत्ति में फँस गई !

सवेरे वह उठकर घर के काम-धन्धे में लगी। सहसा नौ बजे भूँगी ने आकर कहा—मंसा बाबू तो अपना कागज-पत्तर सब इक्के पर लाद रहे हैं।

निर्मला ने हकबकाकर कहा—इक्के पर लाद रहे हैं ! कहाँ जाते हैं ?

भूँगी—मैंने पूछा तो बोले, अब स्कूल ही में रहूँगा।

मंसाराम प्रातःकाल उठकर अपने स्कूल के हेडमास्टर साहब के पास गया था और अपने रहने का प्रबन्ध कर आया था। हेडमास्टर साहब ने पहले तो कहा, यहाँ जगह नहीं है, तुमसे पहले के कितने लड़कों के प्रार्थना-पत्र पड़े हुए हैं; लेकिन जब मंसाराम ने कहा, मुझे जगह न मिलेगी, तो कदाचित् मेरा पढ़ना न हो सके और मैं इम्तहान में शरीक न हो सकूँ, तो हेडमास्टर को हार माननी पड़ी। मंसाराम के प्रथम श्रेणी में पास होने की आशा थी ! अध्यापकों को विश्वास था कि वह उस शाला की कीर्ति को उज्ज्वल करेगा। हेडमास्टर साहब ऐसे लड़के को कैसे छोड़ सकते थे ? उन्होंने अपने दफ्तर का कमरा उसके लिए खाली कर दिया, इसलिए मंसाराम वहाँ से आते ही अपना सामान इक्के पर लादने लगा।

मुंशीजी ने कहा—अभी ऐसी क्या जल्दी है ? दो-चार दिन में चले जाना। मैं चाहता हूँ, तुम्हारे लिए कोई अच्छा-सा रसोइया ठीक कर दूँ।

मंसाराम—वहाँ रसोइया बहुत अच्छा भोजन पकाता है।

मुंशीजी ने कहा—अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। ऐसा न हो कि पढ़ने के पीछे स्वास्थ्य खो बैठो।

मंसाराम—वहाँ नौ बजे के बाद कोई पढ़ नहीं पाता और सबको नियम के साथ खेलना पड़ता है।

मुंशीजी—बिस्तर क्यों छोड़ देते हो ? सोओगे किस पर ?

मंसा०—कम्बल लिए जाता हूँ। बिस्तर की जरूरत नहीं।

मुंशीजी—कहार जब तक तुम्हारा सामान रख रहा है, जाकर कुछ खा लो। रात

भी तो कुछ नहीं खाया था।

मंसा०—वहीं खा लूँगा। रसोइए से भोजन बनाने को कह आया हूं। यहां खाने लगूंगा तो देर होगी।

घर में जियाराम और सियाराम भी भाई के साथ जाने की जिद कर रहे थे। निर्मला उन लोगों को बहला रही थी—बेटा! वहां छोटे लड़के नहीं रहते, सब काम अपने हाथ से करना पड़ता है.......

एकाएक रुक्मिणी ने आकर कहा—तुम्हारा वज्र का हृदय है महारानी! लड़के न रात भी कुछ न खाया, इस वक्त भी बिना खाए-पिए चला जा रहा है; और तुम लड़कों को लिये बातें कर रही हो। उसको तुम जानती हो। यह समझ लो कि वह स्कूल नहीं जा रहा है, बनवास ले रहा है; लौटकर न आएगा। वह-उन लड़कों में नहीं है, जो खेल में मार भूल जाते हैं। बात उसके दिल पर पत्थर की लकीर हो जाती है।

निर्मला ने कातर स्वर में कहा—क्या करूं दीदीजी? वह किसी की सुनते ही नहीं। आप जरा जाकर बुला लें। आपके बुलाने से आ जाएंगे।

रुक्मिणी—आखिर हुआ क्या, जिस पर भागा जाता है? घर से तो उसका जी कभी उचाट न होता था। उसको तो अपने घर के सिवा और कहीं अच्छा ही न लगता था। तुम्हीं ने उसे कुछ कहा होगा या उसकी कुछ शिकायत की होगी। क्यों अपने कांटे बो रही हो? रानी, घर को मिट्टी में मिलाकर चैन से बैठने पाओगी?

निर्मला ने रोकर कहा—मैंने उन्हें कुछ कहा हो, तो मेरी जबान कट जाय। हां, सौतेली मां होने के कारण बदनाम तो हूं ही। आपके हाथ जोड़ती हूं, जरा जाकर उन्हें बुला लाइए।

रुक्मिणी ने तीव्र स्वर में कहा—तुम क्यों नहीं बुला लाती? क्या छोटी हो जाओगी? अपना होता तो क्या इसी तरह बैठी रहती?

निर्मला की दशा उस पंखहीन की तरह हो रही थी, जो सर्प को अपनी ओर आते देखकर उड़ना चाहता है, पर उड़ नहीं सकता, उछलता है और गिर पड़ता है, पंख फड़फड़ाकर रह जाता है। उसका हृदय अन्दर-ही-अन्दर तड़प रहा था, पर बाहर न जा सकती थी।

इतने में दोनों लड़के अन्दर आकर बोले—भैयाजी चले गए। निर्मला मूर्तिवत् खड़ी रही, मानो संज्ञाहीन हो गई। चले गए। घर में आये तक नहीं, मुझसे मिले तक नहीं! चले गए? मुझसे इतनी घृणा! मैं उनकी कोई न सही; उनकी बुआ तो थी। उनसे तो मिलने आना चाहिए न? मैं यहां थी न! अन्दर कैसे कदम रखते। मैं देख लेती न! इसीलिए चले गए।

मंसाराम के जाने से घर सूना हो गया। दोनों छोटे लड़के उसी स्कूल में पढ़ते थे। निर्मला रोज उनसे मंसाराम का हाल पूछती। आशा थी कि छुट्टी के दिन आएगा; लेकिन जब छुट्टी का दिन गुजर गया और वह न आया, तो निर्मला की तबीयत घबराने लगी। उसने उसके लिए मूंग के लड्डू बना रखे थे। सोमवार को प्रातः भूंगी को लड्डू देकर मदरसे भेजा। नौ बजे भूंगी आयी। मंसाराम ने लड्डू ज्यों-के-त्यों लौटा दिए।

निर्मला ने पूछा—पहले से कुछ हरे हुए हैं रे ?

भूँगी—हरे-वरे तो नहीं हुए और सूख गए हैं।

निर्मला—क्या जी अच्छा नहीं ?

भूँगी—यह तो नहीं पूछा बहूजी, झूठ क्यों बोलूँ ? हाँ, वहां का कहार देवर लगता है। वह कहता था कि तुम्हारे बाबूजी की खुराक कुछ नहीं है। दो फुलकियाँ खाकर उठ जाते हैं। फिर दिन भर कुछ नहीं खाते। हरदम पढ़ते रहते हैं।

निर्मला—तूने पूछा नहीं कि लड्डू क्यों लौटाए देते हो ?

भूंगी— यह तो नहीं पूछा बहूजी, झूठ क्यों बोलूँ ! उन्होंने कहा, इसे लेती जा, रखने का कुछ काम नहीं। मैं लेती आयी।

निर्मला—और कुछ नहीं कहते थे ? पूछा नहीं कल क्यों नहीं आये ? छुट्टी तो थी।

भूंगी—बहूजी, झूठ क्यों बोलूं। यह पूछने की तो मुझे सुध ही न रही। हाँ, यह कहते थे कि अब तू यहाँ कभी न आना; न मेरे लिए कोई चीज लाना; और अपनी बहूजी से कह देना कि मेरे पास कोई चिट्ठी-पत्तर न भेजें; लड़कों से भी मेरे पास कोई सन्देश न भेजें। और एक बात ऐसी कही कि मुंह से निकल नहीं सकती। फिर रोने लगे।

निर्मला—कौन बात थी, कह तो ?

भूँगी—क्या कहूं बहूजी, कहते थे, मेरे जीने को धिक्कार है। यही कहकर रोने लगे।

निर्मला के मुंह से एक ठंडी साँस निकल गई। ऐसा मालूम हुआ, मानो कलेजा बैठा जाता है। उसका रोम-रोम आर्तनाद से रुदन करने लगा। वह वहाँ बैठी न रह सकी। आकर बिस्तर पर मुंह ढाँपकर लेट रही और फूट-फूटकर रोने लगी। 'वह भी जान गए' ! उसके अंतःकरण में बार-बार यही आवाज गूंजने लगी— 'वह भी जान गए' ! भगवान् अब क्या होगा ? जिस संदेह की आग में वह भस्म हो रही थी, अब शतगुण वेग से धधकने लगी। उसे अपनी कोई चिन्ता न थी। जीवन में अब सुख की आशा क्या

थी, जिसकी उन्हें लालसा होती? उसने अपने मन को इस विचार से संतुष्ट किया कि यह मेरे पूर्व कर्मों का प्रायश्चित है। कौन प्राणी ऐसा निर्दयी होगा, जो इस दशा में बहुत दिन जी सके? कर्तव्य की वेदी पर अपना जीवन और उसकी सारी कामनाएँ होम कर दी थीं। हृदय रोता था, पर मुख पर हँसी का रंग भरना पड़ता था। जिसका मुँह देखने को जी न चाहता था, उसके सामने हँस-हँस कर बातें करनी पड़ती थीं। जिस देह का स्पर्श उसे सर्प के शीतल स्पर्श के समान लगता था, उससे आलिंगित होकर उसे जितनी घृणा, जितनी मर्मवेदना होती थी, उसे कौन जान सकता है? उस समय उसकी यही इच्छा होती थी कि धरती फट जाय और उसमें समा जाय। लेकिन सारी विडम्बना अब तक अपने ही तक थी और अपनी चिन्ता करनी उसने छोड़ दी थी, लेकिन यह समस्या अब अत्यन्त भयंकर हो गई थी कि वह अपनी आँखों से मंसाराम की अन्तर्वेदना नहीं देख सकती थी। मंसाराम जैसे मनस्वी, साहसी युवक पर इस आक्षेप का जो असर पड़ सकता था, उसकी कल्पना ही से उसके प्राण काँप उठते थे। अब चाहे उस पर कितने ही सन्देह क्यों न हों, चाहे उसे आत्मसमर्पण ही क्यों न करना पड़े, पर वह चुप नहीं बैठ सकती। मंसाराम की रक्षा करने के लिए वह विकल हो गई! उसने संकोच और लज्जा की चादर उतारकर फेंक देने का निश्चय कर लिया।

वकील साहब भोजन करके कचहरी जाने के पहले एक बार उससे अवश्य मिल लिया करते थे। उनके आने का समय हो गया था। आते ही होंगे, यह सोचकर निर्मला द्वार पर खड़ी हो गई और इन्तजार करने लगी, लेकिन यह क्या? वह तो बाहर चले जा रहे हैं। गाड़ी जुतकर आ गई। यह हुक्म वह यहीं से दिया करते थे। तो क्या आज वह न आयेंगे, बाहर-ही-बाहर चले जायेंगे! नहीं, ऐसा नहीं होने पाएगा। उसने भूँगी से कहा—जाकर बाबूजी को बुलाकर ला। कहना, एक जरूरी काम है, सुन लीजिए।

मुंशीजी जाने को तैयार ही थे। यह संदेश पाकर अन्दर आये, पर कमरे में न आकर दूर ही से पूछा—क्या बात है? भाई, जल्दी कह दो, मुझे एक जरूरी काम से जाना है। अभी थोड़ी देर हुई, हेडमास्टर साहब का एक पत्र आया है कि मंसाराम को ज्वर आ गया है, बेहतर हो कि आप घर ही पर उसका इलाज करें। इसलिए उधर ही से होता हुआ कचहरी जाऊँगा। तुम्हें कोई खास बात कहनी है?

निर्मला पर मानो वज्र गिर पड़ा। आँसुओं के आवेग और कंठस्वर में घोर संग्राम होने लगा। दोनों पहले निकलने पर तुले हुए थे। दो में से कोई एक कदम पीछे हटना नहीं चाहता था। कंठस्वर की दुर्बलता और आँसुओं की सबलता देखकर यह निश्चय करना कठिन था कि एक क्षण यही संग्राम होता रहा, तो मैदान किसके हाथ रहेगा। आखिर दोनों साथ-साथ निकले, लेकिन बाहर आते ही बलवान ने निर्बल को दबा दिया।

केवल इतना मुंह से निकला—कोई खास बात नहीं थी ! आज आप तो उधर जा रहे हैं।

मुंशीजी—मैंने लड़कों से पूछा था तो वे कहते थे, कल बैठे पढ़ रहे थे। आज न जाने क्या हो गया।

निर्मला ने आवेश से कांपते हुए कहा—यह सब आप कर रहे हैं।

मुंशीजी ने त्योरियाँ बदलकर कहा—मैं कर रहा हूं ! मैं क्या कर रहा हूं ?

निर्मला—अपने दिल से पूछिए।

मुंशीजी—मैंने तो यही सोचा था कि यहाँ उसका पढ़ने में जी नहीं लगता, वहाँ और लड़कों के साथ खाहमख्वाह ही पढ़ेगा। यह तो कोई बुरी बात न थी; और मैंने क्या किया ?

निर्मला—खूब सोचिए, इसीलिए आपने उन्हें वहाँ भेजा था ! आपके मन में और कोई बात न थी ?

मुंशीजी हिचकिचाए और अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए मुसकराने की चेष्टा करके बोले—और क्या बात हो सकती थी ? भला तुम्हीं सोचो !

निर्मला—खैर, यही सही। अब आप कृपा करके उन्हें आज ही लेते आइएगा। वहाँ रहने से उनकी बीमारी बढ़ जाने का भय है। यहाँ दीदीजी तीमारदारी कर सकती हैं, दूसरा नहीं कर सकता।

एक क्षण के बाद उसने सिर नीचा करके कहा—मेरे कारण न लाना चाहते हों, मुझे मेरे घर भेज दीजिए। मैं वहाँ आराम से रहूंगी।

मुंशीजी ने इसका जवाब न दिया। बाहर चले गए और एक क्षण में गाड़ी स्कूल की ओर चली।

मन ! तेरी गति कितनी विचित्र है, कितनी रहस्य से भरी हुई, कितनी दुर्भेद्य। तू कितनी जल्द रंग बदलता है। इस कला में तू निपुण है। आतिशबाज की चर्खी को भी रंग बदलते कुछ देर लगती है, पर तुझे रंग बदलने में उसका लक्षांश समय भी नहीं लगता ! जहाँ अभी वात्सल्य था, वहाँ फिर सन्देह ने आसन जमा लिया।

यह सोचते थे—कहीं उसने बहाना तो नहीं किया है ?

: १० :

मंसाराम दो दिन गहरी चिन्ता में डूबा रहा। बराबर अपनी माता की याद आती; न खाना अच्छा लगता, न पढ़ने ही में जी लगता। उसकी कायपलट-सी हो गई। दिन गुजर गए और छात्रालय में रहते हुए भी उसने वह काम न किया, जो स्कूल के मास्टरों ने घर से कर लाने को कह दिया था। परिणामस्वरूप उसे बेंच पर खड़ा

रहना पड़ा। जो-बात कभी न हुई थी, वह आज हो गई। यह असह्य अपमान भी उसे सहना पड़ा।

तीसरे दिन वह इन्हीं चिन्ताओं से मग्न हुआ अपने मन को समझा रहा था—क्या संसार में अकेली मेरी ही माता मरी है ? विमाताएँ तो सभी इसी प्रकार की होती हैं ! मेरे साथ कोई नई बात नहीं हो रही है। अब मुझे पुरुषों की भाँति द्विगुण परिश्रम से अपना काम करना चाहिए; माता-पिता जैसे राजी रहें; उन्हें राजी रखना चाहिए। इस साल अगर छात्रवृत्ति-मिल गई, तो मुझे घर से कुछ लेने की जरूरत ही न रहेगी। कितने ही लड़के अपने बल पर बड़ी-बड़ी उपाधियाँ प्राप्त कर लेते हैं। बाधाओं पर विजय पाना और अवसर देखकर काम करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है। भाग्य के नाम को रोने-कोसने से क्या होगा ?

इतने में जियाराम आकर खड़ा हो गया।

मंसाराम ने पूछा—घर का क्या हाल है जिया ? नई अम्माँजी तो प्रसन्न होंगी ?

जिया—उनके मन का हाल तो मैं नहीं जानता; लेकिन जब से तुम आये हो, उन्होंने एक जून भी खाना नहीं खाया। जब देखो, तब रोया ही करती हैं। जब बाबूजी आते हैं, तब अलबत्ता हँसने लगती हैं। तुम चले आये, तो मैंने भी शाम को अपनी किताबें सँभाली। यहीं तुम्हारे साथ रहना चाहता था। भूँगी चुडैल ने जाकर अम्माँजी से कह दिया। बाबूजी बैठे थे, उसके सामने ही अम्माँजी ने आकर मेरी किताबें छीन लीं और रोकर बोलीं—तुम चले जाओगे, तो इस घर में कौन रहेगा ? अगर मेरे कारण तुम लोग घर छोड़-छोड़कर भागे जा रहे हो, तो लो मैं कहीं चली जाती हूं। मै तो झल्लाया हुआ था ही, वहां अब बाबूजी भी न थे, बिगड़कर बोला—आप क्यों कहीं चली जायँगी ? आपका तो घर है, आप आराम से रहिए। गैर तो हमीं लोग हैं; हम न रहेंगे तब तो आपको आराम ही आराम होगा।

मंसाराम—तुमने खूब कहा, बहुत ही अच्छा कहा ! इस पर और भी झल्लायी होंगी और जाकर बाबूजी से शिकायत की होगी।

जियाराम—नहीं, यह कुछ नहीं हुआ। बेचारी जमीन पर बैठकर रोने लगीं। मुझे भी करुणा आ गई। मैं भी रो पड़ा। उन्होंने अंचल से मेरे आँसू पोंछे और बोलीं—जिया ! मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि मैंने तुम्हारे भैया के विषय मे तुम्हारे बाबूजी से एक शब्द नहीं कहा। मेरे भाग्य में कलंक लिखा हुआ है, वही भोग रही हू। फिर और न जाने क्या-क्या कहा, जो मेरी समझ में नहीं आया। कुछ बाबूजी की बात थी।

मंसाराम ने उद्विग्नता से पूछा—बाबूजी के विषय में क्या कहा, कुछ याद है ?

जियाराम—बातें तो भई, मुझे याद नहीं आतीं। मेरी मेमोरी (memory) कौन

बड़ी तेज है; लेकिन उनकी बातों का मतलब कुछ ऐसा मालूम होता था कि उन्हें बाबूजी को प्रसन्न रखने के लिए यहाँ स्वाँग भरना पड़ रहा है। न जाने धर्म-अधर्म की कैसी बातें करती थीं जो में बिलकुल न समझ सका। मुझे तो अब इसका विश्वास आ गया है कि उनकी इच्छा तुम्हें यहाँ भेजने की न थी।

मंसाराम—तुम इन चालों का मतलब नहीं समझ सकते। ये बड़ी गहरी चालें हैं।

जियाराम—तुम्हारी समझ में होंगी, मेरी समझ में नहीं हैं।

मंसाराम—जब तुम ज्योमेट्री (geometry) नहीं समझ सकते, तो इन बातों को क्या समझ सकोगे। उस रात को जब मुझे खाना खाने के लिए बुलाने आयी थीं और उनके आग्रह पर मैं आने को तैयार हो गया था उस वक्त बाबूजी को देखते ही उन्होंने जो कैंडा बदला, वह क्या में कभी भी भूल सकता हूं ?

जियाराम—यही बात मेरी समझ में नहीं आती। अभी कल ही मैं यहाँ से गया तो लगीं तुम्हारा हाल पूछने। मैंने कहा—वह तो कहते थे कि अब कभी इस घर में कदम न रखूँगा। मैंने कुछ झूठ तो कहा नहीं तुमने मुझसे कहा ही था। इतना सुनना था कि फूट-फूटकर रोने लगीं। मैं दिल में बहुत पछताया कि कहाँ-से-कहाँ मैंने यह बातें कह दीं। बार-बार यही कहती थीं, क्या मेरे कारण घर छोड़ देंगे ? मुझसे इतने नाराज हैं ! चले गए और मुझसे मिले तक नहीं ! खाना तैयार था, खाने तक नहीं आये। हाय ! मैं क्या बताऊँ, किस विपत्ति में हूं। इतने में बाबूजी आ गए। बस, तुरन्त आँखें पोंछकर मुस्कराती उनके पास चली गईं। यह बात मेरी समझ में नहीं आती। आज मुझसे बड़ी मिन्नत की कि इनको साथ लेते आना। आज मैं तुम्हें खींच ले चलूँगा। दो दिन में वह कितनी दुबली हो गई हैं, तुम्हें यह देखकर उन पर दया आयगी। चलोगे न ?

मंसाराम ने कुछ जवाब न दिया। उसके पैर काँप रहे थे। जियाराम तो हाजिरी की घंटी सुनकर भागा, पर वह बेंच पर लेट गया और इतनी लम्बी सांस ली, मानो बहुत देर से उसने साँस नहीं ली है। उसके मुख से दुस्सह वेदना में डूबे हुए शब्द निकले—हाय ईश्वर ! इस नाम के सिवा उसे अपना जीवन निराधार मालूम होता था। इस एक उच्छ्वास में कितना नैराश्य, कितनी संवेदना, कितनी करुणा, कितनी दीनता-प्रार्थना भरी हुई थी, इसका कौन अनुमान कर सकता है ! अब सारा रहस्य उसकी समझ में आ रहा था और बारबार उसका पीड़ित हृदय आर्त्तनाद कर रहा था—हाय ईश्वर ! इतना घोर कलंक !

क्या जीवन में इससे बड़ी विपत्ति की कल्पना की जा सकती है ? क्या संसार में इससे घोरतर नीचता की कल्पना की जा सकती है ? आज तक किसी पिता ने अपने पुत्र पर इतना निर्दय कलंक न लगाया होगा। जिसके चरित्र की सभी प्रशंसा करते थे, जो

अन्य युवकों के लिए आदर्श समझा जाता था, जिसने कभी अपवित्र विचारों को अपने पास नहीं फटकने दिया, उसी पर यह घोर कलंक ! मंसाराम को ऐसा मालूम हुआ, मानो उसका दिल फटा जा रहा है।

दूसरी घंटी भी बज गई। लड़के अपने अपने कमरे में गये; पर मंसाराम हथेली पर गाल रखे अनिमेष नेत्रों से भूमि की ओर देख रहा था, मानो उसका सर्वस्व जलमग्न हो गया हो, मानो वह किसी को मुंह न दिखा सकता हो। स्कूल में गैरहाजिरी हो जायगी, जुर्माना हो जायगा, इसकी उसे चिन्ता नहीं। जब उसका सर्वस्व लुट गया, तो अब इन छोटी-छोटी बातों का क्या भय ? इतना बड़ा कलंक लगने पर भी अगर जीता रहूं, तो मेरे जीवन को धिक्कार है !

उसी शोकातिरेक की दशा में वह चिल्ला पड़ा—माताजी ! तुम कहां हो ? तुम्हारा बेटा, जिस पर तुम प्राण देती थीं—जिसे तुम अपने जीवन का आधार समझती थीं, आज घोर संकट में है। उसी का पिता उसके गर्दन पर छुरी फेर रहा है, हाय, तुम कहां हो ?

मंसाराम फिर शांत चित्त से सोचने लगा—मुझ पर यह संदेह क्यों हो रहा है ? इसका क्या कारण है ? मुझमें ऐसी कौन-सी बात उन्होंने देखी, जिससे उन्हें यह संदेह हुआ ? वह हमारे पिता हैं, मेरे शत्रु नहीं, जो अनायास ही मुझ पर यह अपराध लगाने बैठ जायं। जरूर उन्होंने कोई-न-कोई बात देखी या सुनी है। उनका मुझ पर कितना स्नेह था ! मेरे बगैर भोजन करने न जाते थे, वही मेरे शत्रु हो जायं यह बात अकारण नहीं हो सकती।

अच्छा, इस संदेह का बीजारोपण किस दिन हुआ ? मुझे बोर्डिंग हाउस में ठहराने की बात तो पीछे की है। उस दिन, रात को वह मेरे कमरे में आकर मेरी परीक्षा लेने लगे थे, उसी दिन उनकी त्योरियां बदली हुई थीं। उस दिन ऐसी कौन-सी बात हुई जो अप्रिय लगी हो ? मैं नई अम्मां से कुछ खाने को मांगने गया था। बाबूजी उस समय वहां बैठे थे। हां, अब याद आती है, उसी वक्त उनका चेहरा तमतमा गया था ! उसी दिन से नई अम्मां ने मुझसे पढ़ना छोड़ दिया। अगर मैं जानता कि मेरा घर में आना-जाना, अम्मांजी से कुछ कहना-सुनना और उन्हें पढ़ाना-लिखाना पिताजी को बुरा लगता है, तो आज क्यों यह नौबत आती ? और नई अम्मां ! उन पर क्या बीत रही होगी।

मंसाराम ने अब तक निर्मला की ओर ध्यान नहीं दिया था। निर्मला का ध्यान आते ही उसके रोएं खड़े हो गए ! उनका सरल स्नेहशील हृदय यह आघात कैसे सह सकेगा ? आह ! मैं कितने भ्रम में था ! मैं उनके स्नेह को कौशल समझता था। मुझे क्या मालूम था कि उन्हें पिताजी का भ्रम शांत करने के लिए मेरे प्रति कितना कटु व्यवहार करना पड़ता है। आह ! मैंने उन पर कितना अन्याय किया है। उनकी दशा ने

इससे भी खराब हो रही होगी। मैं तो यहाँ चला आया, मगर वह कहाँ जाएँगी ? जिया कहता था, उन्होंने दो दिन से भोजन नहीं किया। हरदम रोया करती हैं। कैसे जाकर समझाऊँ ? वह इस अभागे के पीछे क्यों अपने सिर पर यह विपत्ति ले रही हैं ? वह क्यों बार-बार मेरा हाल पूछती हैं ? क्यों बार-बार मुझे रुलाती हैं ? कैसे कह दूँ कि माता, मुझे तुमसे जरा भी शिकायत नहीं, मेरा दिल तुम्हारी तरफ से साफ है।

वह अब भी बैठी रो रही होंगी। कितना बड़ा अनर्थ है ? बाबूजी को यह क्या हो गया ? क्या इसीलिए विवाह किया था ? एक बालिका की हत्या करने के लिए ही उसे लाये थे ? इस कोमल पुष्प को मसल डालने ही के लिए तोड़ा था ?

उनका कैसे उद्धार होगा ? उस निरपराधी का मुख कैसे उज्ज्वल होगा ? उन्हें केवल मेरे साथ स्नेह का व्यवहार करने के लिए यह दंड दिया जा रहा है। उनकी सज्जनता का यह उपहार मिल रहा है। मैं उन्हें इस प्रकार निर्दय आघात सहते देखकर बैठा रहूंगा ? अपनी मानरक्षा न सही, उनकी आत्मरक्षा के लिए इन प्राणों का बलिदान करना पड़ेगा। इसके सिवाय उद्धार का कोई उपाय नहीं। आह ! दिल में कैसे-कैसे अरमान थे। वे सब खाक में मिला देने होंगे। एक सती पर संदेह किया जा रहा है; और ... कारण ! मुझे अपने से उनकी रक्षा करनी होगी, यही मेरा कर्त्तव्य है। इसी में सच्ची वीरता है। माता, मैं अपने रक्त से इस कालिमा को धो दूँगा। इसमें मेरा और तुम्हारा दोनों का कल्याण है।

वह दिन भर इन्हीं विचारों में डूबा रहा। शाम को उसके दोनों भाई आकर घर चलने के लिए आग्रह करने लगे।

सियाराम—चलते क्यों नहीं ? मेरे भैयाजी चले चलो न !

मंसाराम—मुझे फुरसत नहीं है कि तुम्हारे कहने से चला चलूँ !

जिया—आखिर कल तो इतवार है ही।

मंसाराम—इतवार को भी काम है।

जियाराम—अच्छा, कल आओगे न ?

मंसाराम—नहीं, मुझे कल एक मैच में जाना है।

जियाराम—अम्माँजी मूँग के लड्डू बना रही हैं। न चलोगे तो एक भी न पाओगे। हम-तुम मिलके खा जाएँगे जिया, इन्हें न देंगे !

जियाराम—भैया, अगर तुम कल न गये, तो शायद अम्माँजी यहीं चली आएँ !

मंसाराम—सच ! नहीं, ऐसा क्यों करेंगी। यहाँ आयीं तो बड़ी परेशानी होगी। तुम कह देना, वह कहीं मैच देखने गये हैं।

जियाराम—मैं झूठ क्यों बोलने लगा। मैं कह दूंगा, वह मुँह फुलाये बैठे थे। दे

लेना, उन्हें साथ लाता हूँ कि नहीं।

सियाराम—हम कह देंगे कि आज पढ़ने नहीं गये। पड़े-पड़े सोते रहे।

मंसाराम ने इन दूतों से कल आने का वादा करके गला छुड़ाया। जब दोनों चले गए, तो फिर चिंता में डूब गया। रात-भर उसे करवट बदलने गुजरी। छुट्टी का दिन भी बैठे-बैठे कट गया। उसे दिन भर शंका होती रही कि कहीं अम्माँजी सच न चली आएँ। किसी गाड़ी की खड़खड़ाहट सुनता, तो उसका कलेजा धक्-धक् करने लगता। कहीं आ तो नहीं गईं।!

छात्रालय में एक छोटा-सा औषधालय था। एक डाक्टर साहब सन्ध्या समय एक घण्टे के लिए आ जाया करते थे। अगर कोई लड़का बीमार होता, तो उसे दवा देते। आज वह आये तो मंसा कुछ सोचता हुआ उनके पास जाकर खड़ा हो गया। वह मंसाराम को अच्छी तरह जानते थे। उसे देखकर आश्चर्य से बोले—यह तुम्हारी क्या हालत है जी ? तुम तो मानो गले जा रहे हो ! बाजार का चस्का तो नहीं पड़ गया ? आखिर तुम्हें क्या हुआ ? जरा यहाँ तो आओ !

मंसाराम ने मुस्कराकर कहा—मुझे जिन्दगी का रोग है। आपके पास इसकी भी कोई दवा है ?

डॉक्टर—मैं तुम्हारी परीक्षा करना चाहता हूँ। तुम्हारी सूरत ही बदल गई जो पहचाने भी नहीं जाते।

यह कहकर उन्होंने मंसाराम का हाथ पकड़ लिया, और छाती, पीठ, आँखें जीभ सब बारी-बारी से देखी। तब चिन्तित होकर बोले—वकील साहब से मैं आज ही मिलूँगा। तुम्हें थाइसिस हो रहा है। सारे लक्षण उसी के हैं।

मंसाराम ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—भला, कितने दिनों में काम तमाम हो जायगा डॉक्टर साहब ?

डॉक्टर—कैसी बात करते हो जी ? मैं वकील साहब से मिलकर तुम्हें किसी पहाड़ी जगह भेजने की सलाह दूँगा। ईश्वर ने चाहा तो तुम अच्छे हो जाओगे। बीमारी अभी पहली स्टेज में है।

मंसाराम—तब तो अभी साल-दो-साल की देर मालूम होती है। मैं तो इतना इन्तजार नहीं कर सकता। सुनिए, मुझे थाइसिस-वायसिस कुछ नहीं है न कोई दूसरी शिकायत ही है, आप बाबूजी को नाहक तरद्दुद में न डालिएगा। इस वक्त मेरे सिर में दर्द है; कोई दवा दीजिए। कोई ऐसी दवा हो, जिसमें नींद भी आ जाय। मुझे दो रात से नींद नहीं आती।

डॉक्टर ने जहरीली दवाइयों की आलमारी खोली और एक शीशी से थोड़ी-सी दवा

कालकर मंसाराम को दे दी। मंसाराम ने पूछा—यह तो कोई जहर है। भला, इसे कोई ले तो मर जाय ?

डॉक्टर—नहीं मर तो नही जाय: पर सिर में चक्कर जरूर आ जायँ।

मंसाराम—कोई ऐसी भी दवा इसमें है, जिसे पीते ही प्राण निकल जायें ?

डॉक्टर—ऐसी एक-दो नहीं, कितनी दवाएँ हैं ! यह जो शीशी देख रहे हो, इसकी एक बूंद भी अगर पेट में चली जाय, तो जान न बचे। आनन-फानन में मौत हो जाय।

मंसाराम—क्यों डॉक्टर साहब, जो लोग जहर खा लेते हैं, उन्हें बड़ी तकलीफ होती होगी ?

डॉक्टर—सभी जहरों से तकलीफ नहीं होती। बाज तो ऐसे हैं कि पीते ही आदमी ठण्डा हो जाता है, फिर उसे होश नहीं आता।

मंसाराम ने सोचा, तब तो प्राण देना बहुत आसान है। फिर क्यों लोग इतना डरते हैं ? यह शीशी कैसे मिलेगी ? अगर दवा का नाम पूछकर शहर के किसी दवाफरोश से लेना चाहूं, तो वह कभी न देगा। ऊँह, इसके मिलने में कोई दिक्कत नहीं। यह तो मालूम हो गया कि प्राणों „ अन्त बड़ी आसानी से किया जा सकता है। मंसाराम इतना प्रसन्न हुआ, मानों कोई इनाम पा गया हो। उसके दिल पर से एक बोझ-सा हट गया। चिन्ता की मेघराशि, जो सिर पर मंडरा रही थी, छिन्न-भिन्न हो गई। महीनों बाद आज उसे मन में एक स्फूर्ति का अनुभव हुआ।

कई लड़के थिएटर देखने जा रहे थे। निरीक्षक से आज्ञा ले ली थी। मंसाराम भी उनके साथ थिएटर देखने चला गया। ऐसा खुश था, मानो उससे सुखी जीव संसार में कोई नहीं है। थिएटर में नकल देखकर तो वह हँसते-हँसते लोट गया। बार-बार तालियां बजाने और 'वन्स मोर' की हाँक लगाने में पहला नम्बर उसी का था। गाना सुनकर वह मस्त हो जाता था और 'ओ हो हो !' करके चिल्ला उठता था। दर्शकों की निगाहें बार-बार उसकी तरफ उठ जाती थीं। थिएटर के पात्र भी उसी की ओर ताकते थे और जानने को उत्सुक थे कि कौन महाशय इतने रसिक और भावुक हैं। उसके मित्रों को उसकी उच्छृंखलता पर आश्चर्य हो रहा था। वह बहुत ही शान्तचित, गंभीर स्वाभाव का युवक था। अजा वह क्यों इतना हास्यशील हो गया है, क्यों उसके विनोद का वारापार नहीं है ?

दो बजे रात को थिएटर से लौटने पर भी उसका हास्योन्माद कम नहीं हुआ। उसने एक लड़के की चारपाई उलट दी, कई लड़कों के कमरे के द्वार बाहर से बन्द क दिए और उन्हें भीतर खट-खट करते सुनकर हँसता रहा। यहां तक कि छात्रालय ं अध्यक्ष महोदय की नींद भी शोरगुल सुनकर खुल गई और उन्होंने मंसाराम की शरार

पर खेद प्रगट किया। कौन जानता है कि उसके अंतस्तल में कितनी भीषण क्रांति हो रही है ? सन्देह के निर्दय आघात ने उसकी लज्जा और आत्मसम्मान को कुचल डाला है। उसे अपमान और तिरस्कार का लेश मात्र भय नहीं है। यह विनोद नहीं, उसकी आत्मा का करुण विलाप है। जब और सब लड़के सो गये तो वह भी चारपाई पर लेटा, लेकिन उसे नींद नहीं आई। एक क्षण के बाद वह उठ बैठा और अपनी सारी पुस्तकें बाँधकर सन्दूक में रख दीं। जब मरना ही है तो पढ़कर क्या होगा ? जिस जीवन में ऐसी-ऐसी बाधाएँ हैं—ऐसी-ऐसी यातनाएँ हैं, उससे मृत्यु कहीं अच्छी !

यह सोचते-सोचते तड़का हो गया। तीन रात से वह एक क्षण भी न सोया था। इस वक्त उठा तो उसके पैर थर-थर काँप रहे थे और सिर में चक्कर-सा आ रहा था। आँखें जल रही थीं और शरीर के सारे अंग शिथिल हो रहे थे। दिन चढ़ता जा रहा था और उसमें इतनी शक्ति भी न थी कि उठकर मुंह-हाथ धो डाले। एकाएक उसने भूँगी को रूमाल में कुछ लिये हुए कहार के साथ आते देखा। उसका कलेजा सन्न हो गया। हाय ईश्वर ! वे आ गईं, अब क्या होगा ? भूँगी अकेले नहीं आयी होगी। बग्घी जरूर बाहर खड़ी होगी। कहाँ तो उससे उठा न जाता था कहाँ भूँगी को देखते ही दौड़ा और घबड़ायी आवाज में बोला—अम्माँजी भी आई हैं क्या रे ? जब मालूम हुआ कि अम्माँजी नहीं आयी, तब उसका चित्त शांत हुआ। भूँगी ने कहा—भैया ! कहती है, मैंने उनकी कुछ भी शिकायत नहीं की है। मुझसे आज रोकर कहने लगी—उनके पास यह मिठाई लेती जा और कहना, मेरे कारण क्यों घर छोड़ दिया है । कहाँ रख दूँ यह थाली ?

मंसाराम ने रुखाई से कहा—थाली अपने सिर पर पटक दे चुड़ैल ! यहाँ से चली जा मिठाई लेकर ! खबरदार जो फिर कभी इधर आयी। सौगात लेकर चली है ! जाकर कह देना, मुझे उनकी मिठाई नहीं चाहिए। जाकर कह देना तुम्हारा घर है [illegible] रहो, यहाँ वे बड़े आराम से हैं। खूब खाते और मौज करते हैं ! [illegible] पर कहना, समझ गई। मुझे किसी का डर नहीं है, और [illegible] जिससे दिल में कोई अरमान न रह जाय। कहे तो इलाहाबाद [illegible] लिए जैसा बनारस, वैसा दूसरा शहर। यहाँ क्या रखा है

भूँगी—भैया, मिठाई रख लो नहीं ना [illegible] मर जायँगी।

आधी भी नहीं रही। जैसे आये, उसके आधे भी न रहे।

मंसाराम—यह तेरी आँखों का फेर है। देखना दो-चार दिन में मुटाकर गोल हो जाता हूँ कि नहीं। उनसे कह दोना रोना-धोना बन्द करें। जो मैंने सुना कि रोती हैं और खाना नहीं खातीं, तो मुझसे बुरा कोई नहीं। मुझे घर से निकाला है, तो आप चैन से रहें। चली हैं प्रेम दिखाने। मैं ऐसे त्रियाचरित्र बहुत पढ़े बैठा हूँ।

मूँगी चली गई। मंसाराम को उससे बातें करते ही कुछ ठंड मालूम होने लगी थी। यह अभिनय करने के लिए उसे अपने मनोभावों को जितना दबाना पड़ा था, वह उसके लिए असाध्य था। उसका आत्मसम्मान उसे इस कुटिल व्यवहार का जल्द-से-जल्द अन्त कर देने के लिए बाध्य कर रहा था; पर इसका परिणाम क्या होगा ? निर्मला क्या यह आघात सह सकेगी ? अब तक मृत्यु की कल्पना करते समय किसी अन्य प्राणी का विचार न करता था; पर आज एकाएक ज्ञान हुआ कि मेरे जीवन के साथ एक और प्राणी का जीवन-सूत्र भी बँधा हुआ है। निर्मला यह समझेगी कि मेरी निष्ठुरता ही ने इनकी जान ली। यही समझकर उनका कोमल हृदय फट न जायगा ? उसका जीवन तो अब भी संकट में है। संदेह के कठोर फंदे में फँसी हुई अबला क्या अपने को हत्याकारिणी समझकर बहुत दिनों तक जीवित रह सकती है ?

मंसाराम ने चारपाई पर लेटकर लिहाफ ओढ़ लिया फिर भी सर्दी से कलेजा काँप रहा था। थोड़ी ही देर में उसे जोर से ज्वर चढ़ आया—वह बेहोश हो गया। इस अचेत अवस्था में उसे भाँति-भाँति के स्वप्न दिखाई देने लगे। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद चौंक पडता—आँखें खुल जातीं, फिर बेहोश हो जाता।

सहसा वकील साहब की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ा। हाँ वकील साहब ही की आवाज थी। उसने लिहाफ फेंक दिया और चारपाई से उतरकर नीचे खड़ा हो गया। उसके मन में एक आवेश हुआ कि इसी वक्त इनके सामने प्राण दे दूँ। उसे मालूम हुआ कि मैं मर जाऊँ तो इन्हें सच्ची खुशी होगी। शायद इसीलिए यह देखने आये हैं कि मेरे मरने में कितनी देर है। वकील साहब ने उसका हाथ पकड़ लिया, जिसमें वह गिर न पडे और पूछा—कैसी तबीयत है लल्लू, लेटे क्यों न रहे ? लेट जाओ; तुम खड़े क्यों हो गए ?

मंसाराम—मेरी तबीयत तो बहुत अच्छी है। आपको व्यर्थ ही कष्ट हुआ।

मुंशीजी ने कुछ जवाब न दिया। लड़के की दशा देखकर उनकी आँखों से आँसू निकल आये। हृष्ट पुष्ट बालक, जिसे देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता था, अब सूखकर काँटा हो गया था। पाँच-छह दिन में ही वह इतना दुबला हो गया था कि उसे पहचानना कठिन था। मुंशीजी ने उसे आहिस्ता से चारपाई पर लिटा दिया और लिहाफ अच्छी तरह

उठाकर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए। कहीं लड़का हाथ से तो न निकल जायगा। यह ख्याल करके वह शोक मे विह्वल हो गए और स्टूल पर बैठकर फूट-फूटकर रोने लगे। मंसाराम भी लिहाफ में मुँह लपेटे रो रहा था। अभी थोड़े ही दिन पहले उसे देखकर पिता का हृदय गर्व से फूल उठता था; लेकिन आज उसे इस दारुण दशा में देखकर भी वह सोच रहा है कि इसे घर ले चलूँ या नहीं ? क्या यहाँ दवा नहीं हो सकती ? मैं यहाँ चौबीसो घण्टे बैठा रहूँगा। डाक्टर साहब यहाँ हैं ही। कोई दिक्कत न होगी। घर ले चलने में उन्हें बाधाएँ-ही-बाधाएँ दिखाई देती थीं; सबसे बड़ा भय था कि वहाँ निर्मला इसके पास हरदम बैठी रहेगी और मना न कर सकूँगा—यह उनके लिए असह्य था।

इतने में अध्यक्ष ने आकर कहा— मैं तो समझता हूँ, आप इन्हें अपने साथ ले जाएँ। गाड़ी है ही, तकलीफ न होगी। यहाँ अच्छी तरह देखभाल न हो सकेगी।

मुंशीजी—हां, आया तो मै इसी ख्याल से था, लेकिन इसकी हालत बहुत ही नाजुक मालूम होती है। जरा-सी असावधानी होने से सरसाम हो जाने का भय है।

अध्यक्ष—यहाँ से इन्हें ले जाने में थोड़ी-सी दिक्कत जरूर है, लेकिन यह तो आप खुद सोच सकते हैं कि घर पर जो आराम मिल सकता है, वह यहाँ किसी तरह नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त किसी बीमार लड़के को यहाँ रखना नियम-विरुद्ध भी है।

मुंशीजी—कहिए तो मै हेडमास्टर से आज्ञा ले लूं ! मुझे इनको यहाँ से इस हालत में ले जाना, किसी तरह मुनासिब नहीं मालूम होता।

अध्यक्ष ने हेडमास्टर का नाम सुना तो समझे कि यह महाशय धमकी दे रहा है। जरा तिनककर बोले—हेडमास्टर नियम विरुद्ध कोई बात नहीं कर सकते। मै इतनी बड़ी जिम्मेदारी कैसे ले सकता हूं ?

अब क्या हो ? क्या घर ले जाना ही पड़ेगा ? यहा रखने का तो बहाना था कि ले जाने से बीमारी बढ़ जाने की शंका है। यहाँ से ले जाकर अस्पताल मे ठहराने के लिए कौन बहाना है ? जो सुनेगा, वह यही कहेगा कि डाक्टर की फीस बचाने के लिए लड़के को अस्पताल में फेंक आये। पर अब ले जाने के सिवा और कोई उपाय न था। अगर अध्यक्ष महोदय इस वक्त रिश्वत लेने पर तैयार हो जाते, तो शायद दो-चार साल का वेतन दे देते; लेकिन कायदे के पाबन्द लोगों में इतनी बुद्धि, इतनी चतुराई कहाँ ? अगर इस वक्त मुंशीजी को कोई आदमी ऐसा उपाय सुझा देता, जिसमें मंसाराम को घर न ले जाना पड़े, तो वह आजीवन उसका एहसान मानते। सोचने का समय भी नहीं था। अध्यक्ष महोदय शैतान की तरह सिर पर सवार थे। विवश होकर मुंशीजी ने दोनो साईसों

को बुलाया और मंसाराम को उठाने लगे। मंसाराम अर्द्धचेतना की दशा में था, चौंककर बोला—क्या है, कौन है ?

मुंशीजी—कोई नहीं है बेटा, मैं तुम्हें घर ले चलना चाहता हूं। आओ, गोद में उठा लूं।

मंसाराम—मुझे क्यों घर ले चलते हैं ? मैं वहाँ नहीं जाऊंगा।

मुंशीजी—यहाँ तो रह नहीं सकते, नियम ही ऐसा है।

मंसाराम—कुछ भी हो, वहाँ न जाऊँगा। मुझे और कहीं ले चलिए, किसी पेड़ के नीचे, किसी झोपड़े में, जहाँ चाहें रखिए; पर घर न ले चलिए।

अध्यक्ष ने मुंशीजी से कहा—आप इन बातों का ख्याल न करें। यह तो होश में नहीं है।

मंसाराम—कौन होश में नहीं है ? मैं होश में नहीं हूं ? किसी को गालियाँ देता हूं ? दाँत काटता हूं ? क्यों होश में नहीं हूं ? मुझे यहीं पड़ा रहने दीजिए, जो कुछ होना होगा, यहीं होगा। अगर ऐसा है तो मुझे अस्पताल ले चलिए, वहाँ पड़ा रहूंगा। जीना होगा तो जीऊँगा, मरना होगा तो मरूँगा; लेकिन घर किसी तरह भी न जाऊँगा।

यह जोर पाकर मुंशीजी फिर अध्यक्ष से मिन्नतें करने लगे। लेकिन वह कायदे का पाबंद आदमी कुछ सुनता ही न था। अगर छूत की बीमारी हुई और किसी दूसरे लड़के को छूत लग गई, तो कौन उनका जवाबदेह होगा ? इस तर्क के सामने मुंशीजी की कानूनी दलीलें भी मात हो गईं।

आखिर मुंशीजी ने मंसाराम से कहा—बेटा, तुम्हें घर चलने से क्यों इनकार हो रहा है ? वहाँ तो सभी तरह का आराम होगा।

मुंशीजी ने कहने को यह बात कह दी, लेकिन डर रहे थे कि कहीं मंसाराम चलने पर राजी न हो जाय। वह मंसाराम को अस्पताल में रखने का कोई बहाना खोज रहे थे और उसकी सारी जिम्मेदारी मंसाराम ही के सिर पर डालना चाहते थे। वह अध्यक्ष के सामने की बात थी, और वह इस बात की साक्षी दे सकते थे कि मंसाराम अपनी जिद से अस्पताल जा रहा है। मुंशीजी का इसमें लेश मात्र भी दोष नहीं है।

मंसाराम ने झल्लाकर कहा—नहीं, नहीं, सौ बार नहीं ! मैं घर नहीं जाऊँगा। मुझे अस्पताल ले चलिए और घर के सब आदमियों को मना कर दीजिए कि मुझे देखने न आएं। मुझे कुछ नहीं हुआ है। बिलकुल बीमार नहीं हूं। आप मुझे छोड़ दीजिए, मैं अपने पाँव से चल सकता हूं।

वह उठ खड़ा हुआ और उन्मत्त की भाँति द्वार की ओर चला; लेकिन पैर लड़खड़ा गए। यदि मुंशीजी ने संभाल न लिया होता, तो उसे बड़ी चोट आती। लेकिन नौकरों की

मदद से मुंशीजी उसे बग्घी के पास लाए और अन्दर बिठा लिया।

गाड़ी अस्पताल की ओर चली। वही हुआ जो मुंशीजी चाहते थे। इस शोक से भी उनका चित्त संतुष्ट न था। लड़का अपनी इच्छा से अस्पताल जा रहा था; क्या इस बात का प्रमाण नहीं था कि घर से इसे कोई स्नेह नहीं है ? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मंसाराम निर्दोष है ! वह उस पर अकारण ही भ्रम कर रहे थे।

लेकिन ज़रा ही देर में इस तुष्टि की जगह उनके मन में ग्लानि का भाव जागृत हुआ। वह अपने प्राणप्रिय पुत्र को घर न ले जाकर अस्पताल लिये जा रहे थे। उनके विशाल भवन में उनके पुत्र के लिए जगह न थी, उस दशा में भी जब कि उसका जीवन संकट में पड़ा हुआ था। कितनी विडम्बना है।

एक क्षण के बाद एकाएक मुंशीजी के मन में प्रश्न उठा—कहीं मंसाराम उनके भावों को ताड़ तो नहीं गया ? इसीलिए तो उसे घर से घृणा नहीं हो गई है ? अगर ऐसा है, तो गजब हो जायगा।

उस अनर्थ की कल्पना ही से मुंशीजी के रोएँ खड़े हो गए और कलेजा धक्-धक् करने लगा। हृदय में एक धक्का-सा लगा। अगर इस ज्वर का यही कारण है, तो ईश्वर ही मालिक है। इस समय उनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। वह आग, जो उन्होंने अपने ठिठुरे हुए हाथों को सेकने के लिए जलायी थी, अब उनके घर में लगी जा रही थी। इस करुणा, शोक, पश्चाताप और शंका से उनका चित्त घबरा उठा। उनके गुप्त रोदन की ध्वनि बाहर निकल सकती, तो सुननेवाले रो पड़ते ! उनके आँसू बाहर निकल सकते, तो उनका तार बँध जाता। वेदना से विकल होकर उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और इतना रोए कि हिचकी बँध गई।

सामने अस्पताल का फाटक दिखाई दे रहा था।

: ११ :

मुंशी तोताराम सन्ध्या के समय कचहरी से घर पहुँचे, तो निर्मला ने पूछा—उन्हें देखा, क्या हाल है ? मुंशी ने देखा कि निर्मला के मुख पर नाम-मात्र को भी चिन्ता का चिन्ह नहीं है, उसका बनाव-सिंगार और दिनों से कुछ गाढ़ा हुआ है। मसलन वह गले में हार न पहनती थी, पर आज वह भी गले में शोभा दे रहा था। झूमर से भी उसे बहुत प्रेम न था, पर आज वह भी महीन रेशमी साड़ी के नीचे, काले-काले केशों के ऊपर फानूस के दीपक की भाँति चमक रहा था।

मुंशीजी ने मुँह फेरकर कहा—बीमार है, और क्या हाल बताऊँ ?

निर्मला—तुम तो उन्हें यहाँ लाने गए थे ?

मुंशीजी ने झुँझलाकर कहा—वह नहीं आता तो क्या मैं जबरदस्ती उठा लाता ?

तना समझाया कि बेटा, घर चलो, वहाँ तुम्हें कोई तकलीफ़ न होने पाएगी, ले
र का नाम सुनकर उसे दूना ज्वर हो जाता था। कहने लगा—मैं यहां मर जाऊँगा, लेकिन घर न जाऊँगा। आखिर मजबूर होकर अस्पताल पहुँचा, और क्या करता ?

रुक्मिणी भी आकर बरामदे में खड़ी हो गई, बोली—वह जन्म का हटी है। यहाँ किसी तरह न आएगा और यह भी देख लेना, वहाँ अच्छा भी न होगा !

मुंशीजी ने कातर स्वर में कहा—तुम दो-चार दिन के लिए वहां चली जाओ, तो बड़ा अच्छा होगा बहिन ! तुम्हारे रहने में उसे तस्कीन होती रहेगी। मेरी, बहिन, मेरी विनय मान लो। अकेले वह रो-रोकर प्राण दे देगा। बस, 'हाय अम्माँ, हाय अम्माँ !' की रट लगाकर रोया करता है। मैं वहीं जा रहा हूं, मेरे साथ ही चली चलो। उसकी दशा अच्छी नहीं। बहिन, वह सूरत नहीं रही। देखें, ईश्वर क्या करते हैं ?

यह कहते-कहते मुंशीजी की आँखों में आँसू बहने लगे, लेकिन रुक्मिणी अविचलित भाव से बोली—मैं जाने को तैयार हूँ। मेरे वहाँ रहने से अगर मेरे लाल के प्राण बच जायँ तो मैं सिर के बल दौड़ी जाऊँ, लेकिन मेरी बात गिरह में बाँध लो भैया ! वहाँ वह अच्छा न होगा। मैं उसे खूब पहचानती हूँ। उसे कोई बीमारी नहीं है, केवल घर से निकाले जाने का शोक है। यही दुःख ज्वर के रूप में प्रकट हुआ। तुम एक नहीं लाख दवा करो—सिविल सर्जन को ही क्यों न दिखाओ, उसे कोई दवा असर न करेगी।

मुंशीजी—बहिन, उसे घर से निकाला किसने ? मैंने तो केवल पढ़ाई के ख्याल वहाँ भेजा था।

रुक्मिणी—तुमने चाहे जिस ख्याल से भेजा हो; लेकिन यह बात उसे लग ग
मैं तो अब किसी गिनती में नहीं हूँ, मुझे किसी बात में बोलने का कोई अधिकार न
मालिक तुम, मालकिन तुम्हारी स्त्री। मैं तो केवल तुम्हारी रोटियों पर पड़ी हुई अभ
विधया हूँ। मेरी कौन सुनेगा और परवाह करेगा ? लेकिन बिना बोले रहा नहीं ज
मंसा तभी अच्छा होगा, जब घर आएगा—जब तुम्हारा हृदय वही हो जाएगा, जो
था।

यह कहकर रुक्मिणी वहाँ से चली गई। उसकी ज्योतिहीन, पर अनु
आँखों के सामने जो चरित्र हो रहे थे, उनका रहस्य वह खूब समझती थी; और
सारा क्रोध निरपराधिन निर्मला पर ही उतरता था ! इस समय भी वह कहते-क
गई कि जब तक यह लक्ष्मी इस घर में रहेगी, इस घर की दशा बिगड़ती ही जा
उसके प्रकट रूप से न कहने पर भी उसका आशय मुंशीजी से छिपा नहीं र
चले जाने पर मुंशीजी ने सिर उठा लिया और सोचने लगे। उन्हें अपने ऊपर
इतना क्रोध आ रहा था कि दीवार से सिर पटककर प्राणों का अन्त कर दें। उ

विवाह किया था ? विवाह करने की जरूरत क्या थी ? ईश्वर ने उन्हें एक नहीं, तीन-तीन पुत्र दिये थे। उनकी अवस्था भी ५० के लगभग पहुँच गई थी, फिर उन्होंने क्यों विवाह किया ?

क्या इसी बहाने ईश्वर को उनका सर्वनाश करना मंजूर था ? उन्होंने सिर उठाकर एक बार निर्मला की सहास, पर निश्चल मूर्ति देखी और अस्पताल चले गए। निर्मला की सहास छवि ने उनका चित्त शांत कर दिया था। आज कई दिनों के बाद उन्हें यह शांति मयस्सर हुई थी। प्रेम-पीड़ित हृदय इस दशा में क्या इतना शांत और अविचलित रह सकता है ? नहीं, कभी नहीं। हृदय की चोट भाव कौशल से नहीं छिपाई जा सकती। अपने चित्त की दुर्बलता पर इस समय उन्हें अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्होंने अकारण ही संदेह को हृदय में स्थान देकर इतना अनर्थ किया। मंसाराम की ओर से भी उनका मन निःशंक हो गया। हां, उसकी जगह अब एक नई शंका उत्पन्न हो गई। क्या मसाराम भांप तो नहीं गया ? क्या भांपकर ही तो आने से इनकार नहीं कर रहा है ? अगर वह भांप गया है, तो महान् अनर्थ हो जायगा। इस कल्पना से ही उनका मन दहल उठा; उनकी देह की सारी हड्डियां मानो इस हाहाकार पर पानी डालने के लिए व्याकुल हो उठीं।

उन्होंने कोचवान से घोड़े को तेज चलाने को कहा। कई दिनों के बाद उनके हृदय मण्डल पर छाया घन फट गया था और प्रकाश की लहरें अन्दर से निकलने के लिए व्यग्र हो रही थीं। उन्होंने बाहर सिर निकाल कर देखा कोचवान सो तो नहीं रहा है। घोड़े की चाल उन्हें इतनी मन्द कभी न मालूम हुई थी। अस्पताल पहुँचकर लपके हुए मंसाराम के पास गए। देखा तो डाक्टर साहब उसके सामने चिंता में मग्न खड़े थे। मुंशीजी के हाथ-पांव फूल गए। मुंह से शब्द न निकल सका। थरथरायी हुई आवाज में बड़ी मुश्किल से बोले—क्या हाल है डॉक्टर साहब ? यह कहते-कहते वह रो पड़े और जब डॉक्टर साहब को उनके प्रश्न का उत्तर देने में एक क्षण विलम्ब हुआ, तब तो उनके प्राण नहीं समा गए। उन्होंने पलंग पर बैठकर अचेत बालक को गोद में उठा लिया और बालकों की भांति सिसक-सिसककर रोने लगे। मंसाराम की देह तवे की तरह जल रही थी। मंसाराम ने एक बार आंखें खोलीं। आह, कितनी भयंकर और उसके साथ ही कितनी दीन दृष्टि थी ! मुंशीजी ने बालक को कंठ से लगाकर डॉक्टर से पूछा—क्या हाल है डाक्टर साहब ? आप चुप क्यों हैं ?

डॉक्टर ने संदिग्ध स्वर से कहा—हाल जो कुछ है, वह आप देख ही रहे हैं। १०६ डिग्री का ज्वर है; और मैं क्या बताऊँ ? अभी ज्वर का प्रकोप बढ़ता ही जाता है। मेरे किए जो कुछ हो सकता है, कर रहा हूँ। ईश्वर मालिक है। जब से आप गये हैं एक

ट के लिए भी यहाँ से नहीं हिला। भोजन तक नहीं कर सका। हालत इतनी नाज़ुक कि एक मिनट में क्या हो जायगा, नहीं कहा जा सकता। यह महाज्वर है, बिलकुल श नहीं है। रह-रहकर डिलिरियम (Delirium) का दौरासा हो जाता है। क्या घर र इन्हें किसी ने कुछ कहा है ? बार-बार, 'अम्माँजी तुम कहाँ हो' यही आवाज मुंह से निकलती है।

डॉक्टर साहब कह ही रहे थे कि सहसा मंसाराम उठकर बैठ गया और धक्के से मुंशीजी को चारपाई के नीचे ढकेल, उन्मत्त स्वर में बोला—क्यों धमकाते हैं आप ? मार डालिए, मार डालिए, अभी मार डालिए ! तलवार नहीं मिलती ? रस्सी का फन्दा है। या वह भी नहीं ? मैं अपने गले में लगा लूँगा। हाय अम्माँ, तुम कहाँ हो ? यह कहते-कहते वह फिर अचेत होकर गिर पड़ा।

मुंशीजी एक क्षण तक मंसाराम की शिथिल मुद्रा की ओर व्यथित नेत्रों से ताकते रहे; फिर सहसा उन्होंने डॉक्टर साहब का हाथ पकड़ लिया और अत्यन्त दीनतापूर्ण आग्रह से बोले—डॉक्टर साहब, इस लड़के को बचा लीजिए, ईश्वर के लिए बचा लीजिए, नहीं तो मेरा सर्वनाश हो जायगा। मैं अमीर नहीं हूँ, लेकिन आप जो कुछ कहेंगे, वह हाजिर करूँगा, इसे बचा लीजिए। मैं—मैं सब खर्च दूंगा ! इसकी यह दशा नहीं देखी जाती ! हाय, मेरा होनहार बेटा !

डॉक्टर साहब ने करुण स्वर में कहा—बाबू साहब, मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ कि मैं इनके लिए अपनी तरफ से कोई बात उठा नहीं रख रहा हूं। अब आप दूसरे डॉक्टरों से सलाह लेने को कहते हैं। अभी डॉक्टर लहरी, डॉक्टर भाटिया और डॉक्टर माथुर को बुलाता हूं। विनायक शास्त्री को भी बुलाए लेता हूं, लेकिन मैं आपको व्यर्थ का आश्वासन नहीं देना चाहता—हालत नाज़ुक है।

मुंशीजी ने रोते हुए कहा—नहीं डॉक्टर साहब, यह शब्द मुँह से न निकालिए। हालत इसके दुश्मनों की नाज़ुक हो। ईश्वर मुझ पर इतना कोप न करेंगे। आप कलक[illegible] और बम्बई के डॉक्टरों को तार दीजिए। मैं जिन्दगी भर आपकी गुलामी करूँगा। य[illegible] मेरे कुल का दीपक है। यही मेरे जीवन का आधार है। मेरा हृदय फटा जा रहा है। [illegible] ऐसी दवा दीजिए, जिससे इसे होश आ जाय ! मैं जरा अपने कानों से इसकी बात [illegible] कि इसे क्या कष्ट हो रहा है ? हाय मेरा बच्चा !

डॉक्टर—आप जरा दिल को तस्कीन दीजिए ! आप बुजुर्ग आदमी हैं, यों [illegible] हाय करने और डॉक्टरों की फौज जमा करने से कोई नतीजा न निकलेगा। शांत [illegible] बैठिए। मैं शहर के डॉक्टरों को बुला रहा हूं, देखिए क्या कहते हैं ! आप तो [illegible] बदहवास हुए जाते हैं।

मुंशीजी—अच्छा डॉक्टर साहब, में अब न बोलूँगा जवान तक न खोलूगा। आप जो चाहें करें, बच्चा अब आपके हाथ में है। आप ही उसकी रक्षा कर सकते हैं। मैं इतना ही चाहता हूं कि जरा इसे होश आ जाय, मुझे पहचान ले, मेरी बातें समझने लगे। क्या कोई ऐसी सजीवनी बूटी नहीं कि मै इससे दो-चार बाते कर लेता ?

यह कहते-कहते मुंशीजी आवेश मे आकर मंसाराम से बोले—बेटा, जरा आँखें खोलो, कैसा जी है ! मैं तुम्हारे पास बैठा रो रहा हू। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है, मेरा दिल तुम्हारी तरफ से साफ है।

डॉक्टर—फिर आपने अनर्गल बातें करनी शुरू की। अरे साहब, आप बच्चे नहीं हैं,—बुजुर्ग आदमी हैं, जरा धैर्य से काम लीजिए।

मुंशीजी—अच्छा डॉक्टर साहब, अब न बोलूंगा, खता हुई। आप जो चाहे कीजिए। मैने सब कुछ आप पर छोड दिया। कोई उपाय ऐसा नही है, जिससे मै इसे इतना समझा सकूँ कि मेरा दिल साफ है ? आप ही कह दीजिए, डॉक्टर साहब, कह दीजिए, तुम्हारा अभागा पिता बैठा रो रहा है। उसका दिल तुम्हारी तरफ से बिलकुल साफ है। उसे कुछ भ्रम हुआ था। वह अब दूर हो गया। बस, इतना ही कह दीजिए। मै और कुछ नही चाहता। मै चुपचाप बैठा हूं। जबान तक नहीं खोलता; लेकिन आप इतना जरूर कह दीजिए।

डॉक्टर—ईश्वर के लिए बाबू साहब, जरा सब्र कीजिए, वरना मुझे मजबूर होकर आपसे कहना पडेगा कि घर जाइए। जरा दफ्तर मे जाकर डॉक्टरों को खत लिख रहा हूं। चुपचाप बैठे रहिए।

निर्दयी डॉक्टर ! जवान बेटे की यह दशा देखकर कौन पिता है, जो धैर्य से काम लेगा ? मुंशीजी बहुत गंभीर स्वभाव के मनुष्य थे। यह भी जानते थे कि इस समय हाय-हाय मचाने से कोई नतीजा नहीं, लेकिन फिर भी इस समय शात बैठना उनके लिए असमव था। अगर दैव-गति से वह बीमार होता, तो वह शात हो सकते थे, दूसरो को समझा सकते थे, खुद डॉक्टरों को बुला सकते थे। लेकिन क्या यह जानकर भी धैर्य रख सकते थे कि यह सब आग उनकी ही लगायी हुई है ? कोई पिता इतना वज्र हृदय हो सकता है ? उनका रोम-रोम इस समय उन्हे धिक्कार रहा था। उन्होने सोचा, मुझे यह दुर्भावना उत्पन्न ही क्यो हुई ? मैने क्यो बिना किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के ऐसी भीषण कल्पना कर डाली ? अच्छा, मुझे उस दशा मे क्या करना चाहिए था ? जो कुछ उन्होंने किया, उसके सिवा वह और क्या करते—इसका वह निश्चय न कर सके। वास्तव में विवाह के बन्धन में पडना ही अपने पैरो मे कुल्हाड़ी मारना था। हां, यही सारे उपद्रव की जड़ है।

मगर यह मैंने कोई अनोखी बात नहीं की। सभी स्त्री-पुरुष विवाह करते हैं।
का जीवन आनंद से कटता है। आनंद की इच्छा से ही तो हम विवाह करते हैं।
ल्ले में सैकड़ों आदमियों ने दूसरी, तीसरी, चौथी यहाँ तक कि सातवीं शादियां की हैं
र मुझसे भी कहीं अधिक अवस्था में। वह जबतक जिए, आराम ही से जिए। यह भी
हीं हुआ कि सभी स्त्री से पहले मर गए हों। दुहाज-तिहाज होने पर भी कितने ही रंडुए
ो गए। अगर मेरी-जैसी दशा सबकी होती, तो विवाह का नाम ही कौन लेता ? मेरे
पिताजी ने पचपनवें वर्ष में विवाह किया था और मेरे जन्म के समय उनकी अवस्था साठ
से कम न थी। हाँ, इतनी बात जरूर है कि तब और अब में कुछ अन्तर हो गया है।
पहले स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी न होती थीं। पति चाहे कैसा ही हो, उसे पूज्य समझती थीं; या
यह बात हो कि पुरुष सब कुछ देखकर भी बेहयाई से काम लेता हो; अवश्य यही बात
है। जब युवक वृद्धा के साथ प्रसन्न नहीं रह सकता, तो युवती क्यों किसी वृद्ध के साथ
प्रसन्न रहने लगी।

लेकिन मैं तो कुछ ऐसा बुड्ढा न था। मुझे देखकर कोई चालीस से अधिक नहीं
बता सकता। कुछ भी हो, जवानी ढल जाने पर जवान औरत से विवाह करके कुछ-न-
कुछ बेहयाई जरूर करनी पड़ती है, इसमें सन्देह नहीं। स्त्री स्वभाव से लज्जाशील होती
है। कुलटाओं की बात दूसरी है, साधारणतः स्त्री पुरुष से कहीं ज्यादा संयमशील होती
है। जोड़ का पति पाकर वह परपुरुष से हँसी-दिल्लगी कर ले, उसका मन शुद्ध रहता
है। बेजोड़ विवाह हो जाने से वह चाहे किसी की ओर आँखें उठाकर न देखे, पर उसका
चित्त दुःखी रहता है। वह पक्की दीवार है, उसमें सबरी का असर नहीं होता; यह कच्ची
दीवार है और उसी वक्त तक खड़ी रहती है जब तक उस पर सबरी न चलायी जाए।

इन्हीं विचारों में पड़े-पड़े मुंशीजी को एक झपकी आ गई। मन के भावों
तत्काल स्वप्न का रूप धारण कर लिया। क्या देखते हैं कि उनकी पहली स्त्री मंसा
के सामने कह रही है—स्वामी, यह तुमने क्या किया ? जिस बालक को मैंने अ
रक्त पिला-पिलाकर पाला, उसको तुमने इतनी निर्दयता से मार डाला ! ऐसे आ
चरित्र बालक पर तुमने इतना घोर कलंक लगा दिया ? अब बैठे क्या बिसूरते
तुमने उससे हाथ धो लिया ! मैं तुम्हारे निर्दयी हाथों से छीनकर उसे अपने साथ
जाती हूँ। तुम तो इतने शक्की कभी न थे। क्या विवाह करते ही शक को भी गल
लाए ? इस कोमल हृदय पर इतना कठोर आघात ! इतना भीषण कलंक ! इत
अपमान सहकर जीनेवाले कोई बेहया होंगे ! मेरा बेटा नहीं सह सकता। यह कह
उसने बालक को गोद में उठा लिया और चली गई। मुंशीजी ने रोते हुए उसकी
मंसाराम को छीनने के लिए हाथ बढ़ाया, तो आँखें खुल गईं और डॉक्टर लहरी

निर्मला के चेहरे का रंग उड़ गया। घबराकर पूछा—तुम्हारे बाबूजी ने

जियाराम—डॉक्टर भी खड़े थे और आपस में कुछ सलाह कर रहे थे। सबसे बड़ा ल-सर्जन अँग्रेजी में कह रहा था कि मरीज की देह में कुछ ताजा खून डालना हिए। इस पर बाबूजी ने कहा, मेरी देह से जितना खून चाहें, ले लीजिए। सिविल-र्जन ने हँसकर कहा—आपके खून से काम नहीं चलेगा; किसी जवान आदमी का ब्लड ाहिए। आखिर उसने पिचकारी से कोई दवा भैया के बाजू में डाल दी। चार अंगुल से कम की सुई नहीं रही होगी; पर भैया मिनके तक नहीं। मैंने तो मारे डर के आँखें बन्द कर लीं।

बड़े-बड़े महान् संकल्प आवेश में ही जन्म लेते हैं। कहाँ तो निर्मला भय से सूखी जाती थी, कहाँ उसके मुंह पर दृढ़ संकल्प की आभा झलक पड़ी। उसने अपनी देह का ताजा खून देने का निश्चय कर लिया। अगर उसके रक्त से मंसाराम के प्राण बच जायँ, तो यह बड़ी खुशी से उसकी अन्तिम बूंद तक दे डालेगी। अब जिसका जो जी चाहे समझे, यह कुछ परवाह न करेगी। उसने जियाराम से कहा—तुम लपककर एक एक्का बुला लाओ, मैं अस्पताल जाऊँगी।

जियाराम—वहाँ इस वक्त बहुत से आदमी होंगे। जरा रात हो जाने दीजिए।

निर्मला—नहीं, तुम अभी एक्का बुला लो।

जियाराम—कहीं बाबूजी बिगड़ें न !

निर्मला—बिगड़ने दो। तुम अभी जाकर सवारी लाओ।

जियाराम—मैं कह दूंगा, अम्माँजी ही ने मुझसे सवारी मँगायी थी।

निर्मला—कह देना।

जियाराम उधर ताँगा लाने गया, इतनी देर में निर्मला ने सिर में कंघी की, बाँधा, कपड़े बदले, आभूषण पहने, पान खाया और द्वार पर आकर ताँगे की राह लगी।

रुक्मिणी अपने कमरे में बैठी हुई थी। उसे इस तैयारी से जाते बोली—कहाँ जाती हो बहू ?

निर्मला—जरा अस्पताल तक जाती हूँ।

रुक्मिणी—वहाँ जाकर क्या करोगी ?

निर्मला—कुछ नहीं, करूँगी क्या ? करनेवाले तो भगवान हैं। देख चाहता है।

रुक्मिणी—मैं कहती हूँ मत जाओ।

निर्मला ने विनीत भाव से कहा—अभी चली आऊँगी दीदीजी। जिय

है कि इस वक्त उनकी हालत अच्छी नहीं है। जी नहीं मानता। आप भी चलिए न?

रुक्मिणी—मैं देख आयी हूँ। इतना समझ लो कि अब बाहरी खून पहुँचने पर ही जीवन की आशा है। कौन अपना ताजा खून देगा, और क्यों देगा? उसमें भी तो प्राणों का भय है!

निर्मला—इसीलिए तो जाती हूँ। मेरे खून से क्या काम न चलेगा?

रुक्मिणी—चलेगा क्यों नहीं, जवान है ही, तो खून चाहिए, लेकिन तुम्हारे खून से मंसाराम की जान बचे, इससे यह कहीं अच्छा है कि तुम्हें पानी में बहा दिया जाय!

ताँगा आ गया। निर्मला और सियाराम दोनों जा बैठे। ताँगा चला।

रुक्मिणी द्वार पर खड़ी देर तक रोती रहीं। आज पहली बार उन्हें निर्मला पर दया आयी। उनका बस होता, तो वह निर्मला को बाँध रखतीं। करुणा और सहानुभूति का आवेश उसे वहाँ लिए जाता है, यह वह प्रत्यक्ष रूप से देख रही थीं। आह! यह दुर्भाग्य की प्रेरणा है। सर्वनाश का मार्ग है।

निर्मला अस्पताल पहुँची, तो दीपक जल चुके थे। डॉक्टर लोग अपनी राय देकर विदा हो चुके थे। मंसाराम का ज्वर कुछ कम हो गया था। वह टकटकी लगाये द्वार की ओर देख रहा था। उसकी दृष्टि उन्मुक्त आकाश की ओर लगी हुई थी, मानो किसी देवता की प्रतीक्षा कर रहा हो! वह कहाँ है, इसका उसे ज्ञान न था।

सहसा निर्मला को देखते ही वह चौंककर उठ बैठा। उसकी समाधि टूट गई। उसकी विलुप्त चेतना प्रदीप्त हो गई। उसे अपनी स्थिति का, अपनी दशा का ज्ञान हो गया, मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो। उसने आँखें फाड़कर निर्मला को देखा और मुँह फेर लिया।

एकाएक मुंशीजी तीव्र स्वर में बोले—तुम यहाँ क्या करने आयीं?

निर्मला अवाक् रह गई। [illegible] का भी यह क्या कोई उत्तर है भला? वह क्या करने आयी थी? इतना [illegible] प्रश्न किसके सामने आया होगा? घर का आदमी बीमार है, उसे देखने आयी है। यह बात क्या बिना पूछे मालूम न हो सकती थी? फिर यह प्रश्न क्यों?

वह हतबुद्धि-सी खड़ी रही, मानो संज्ञाहीन हो गई हो। [illegible] और संताप की बातें सुनकर [illegible] पर अब उसे ज्ञात हुआ कि [illegible] था। हाँ, [illegible] आँसुओं की वृष्टि ने [illegible] कुढ़कुढ़कर मर जाती, पर घर से पाँव न निकालती।

मुंशीजी ने फिर वही प्रश्न किया—तुम यहाँ क्या करने आयीं?

र्मला ने निःशंक भाव से उत्तर दिया—आप यहाँ क्या करने आये हैं ?

शीजी के नथने फड़कने लगे। वह झल्लाकर चारपाई से उठे और निर्मला का डकर बोले—तुम्हारे यहाँ आने की कोई जरूरत नहीं। जब मैं बुलाऊँ तब आना, इ।

अरे ! यह क्या अनर्थ हुआ ! मंसाराम जो चारपाई से हिल न सकता था, उठकर हो गया और निर्मला के पैरों पर गिरकर रोते हुए बोला—अम्माँजी, इस अभागे के आपको व्यर्थ इतना कष्ट हुआ। मैं आपका स्नेह कभी न भूलूँगा। ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो हूँ। ईश्वर जानता है, मैंने आपको विमाता नहीं समझा। मैं आपको अपनी माता समझता रहा। आपकी उम्र मुझसे बहुत ज्यादा न हो, लेकिन आप मेरी माता के स्थान पर थीं और मैंने आपको सदैव उसी दृष्टि से देखा .... अब नहीं बोला जाता अम्माँजी, क्षमा कीजिए ! यह अंतिम भेंट है।

निर्मला ने अश्रुप्रवाह को रोकते हुए कहा—तुम ऐसी बातें क्यों करते हो ? दो-चार दिन में अच्छे हो जाओगे।

मंसाराम ने क्षीण स्वर में कहा—अब जीने की इच्छा नहीं और न बोलने की शक्ति ही है।

यह कहते-कहते मंसाराम अशक्त होकर जमीन पर लेट गया। निर्मला ने पति की ओर निर्भय नेत्रों से देखते हुए कहा—डॉक्टरों ने क्या सलाह दी ?

मुंशीजी—सबके सब भंग खा गए हैं, कहते हैं ताजा खून चाहिए।

निर्मला—ताजा खून मिल जाय, तो प्राणरक्षा हो सकती है ?

मुंशीजी ने निर्मला की ओर तीव्र नेत्रों से देखकर कहा—मैं ईश्वर नहीं हूँ और न डॉक्टर ही को ईश्वर समझता हूँ।

निर्मला—ताजा खून तो ऐसी अलभ्य वस्तु नहीं।

मुंशीजी—आकाश के तारे भी तो अलभ्य नहीं। मुँह के सामने खन्दक क्या ची है ?

निर्मला—मैं अपना खून देने को तैयार हूँ। डॉक्टर को बुलाइए।

मुंशीजी ने विस्मित होकर कहा—तुम ?

निर्मला—हाँ ! क्या मेरे खून से काम न चलेगा ?

मुंशीजी—तुम अपना खून दोगी ? नहीं, तुम्हारे खून की जरूरत नहीं, इसमें का भय है।

निर्मला—मेरे प्राण और किस दिन काम आएँगे ?

मुंशीजी ने सजल नेत्र होकर कहा—नहीं निर्मला, उसका मूल्य अब मेरी निगाहों में बहुत बढ़ गया है। आज तक वह मेरे भोग की वस्तु थी; आज से वह भक्ति की वस्तु है। मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है, क्षमा करो।

: १३ :

जो कुछ होना था हो गया, किसी की कुछ न चली। डॉक्टर साहब निर्मला की देह में रक्त निकालने की चेष्टा कर ही रहे थे कि मंसाराम अपने उज्ज्वल चरित्र की अन्तिम झलक दिखाकर इस भ्रम-लोक से विदा हो गया। कदाचित् इतनी देर तक उसके प्राण निर्मला ही की राह देख रहे थे। उसे निष्कलंक सिद्ध किए बिना वे देह को कैसे त्याग देते ? अब उनका उद्देश्य पूरा हो गया। मुंशीजी को निर्मला के निर्दोष होने का विश्वास हो गया, पर कब ? जब हाथ से तीर निकल चुका था—जब मुसाफिर ने रकाब में पाँव डाल दिया था।

पुत्रशोक में मुंशीजी का जीवन भारस्वरूप हो गया। उस दिन से फिर उनके ओठों पर हँसी न आयी। यह जीवन उन्हें व्यर्थ-सा जान पड़ता था। कचहरी जाते, मगर मुकदमों की पैरवी करने के लिए नहीं, केवल दिल बहलाने के लिए। घंटे-दो-घंटे में वहाँ से उकताकर चले आते। खाने बैठते तो कौर मुँह में न जाता। निर्मला अच्छी-से-अच्छी चीज पकाती, पर मुंशीजी दो-चार कौर से अधिक न खा सकते। ऐसा जान पड़ता कि कौर मुँह से निकला जाता है। मंसाराम के कमरे की ओर जाते ही उनका हृदय टूक-टूक हो जाता था। जहाँ उनकी आशाओं का दीपक जलता रहता था, वहाँ अब अन्धकार छाया हुआ था। उनके दो पुत्र अब भी थे, लेकिन दूध देती हुई गाय मर गयी, तो बछिया का क्या भरोसा ? जब फलने-फूलनेवाला वृक्ष गिर पड़ा, तो नन्हे-नन्हे पौधों से क्या आशा ? यों तो जवान-बूढ़े सभी मरते हैं, लेकिन दुःख इस बात का था कि उन्होंने स्वयं लड़के की जान ली। जिस दम यह बात याद आ जाती, तो ऐसा मालूम होता था कि उनकी छाती फट जाएगी—मानो हृदय बाहर निकल पड़ेगा।

निर्मला को पति से सच्ची सहानुभूति थी। जहाँ तक हो सकता था, वह उनको प्रसन्न रखने की फिक्र रखती थी और भूलकर भी पिछली बातें जबान पर न लाती थी। मुंशीजी उससे मंसाराम की कोई चर्चा करते शरमाते थे। उनकी कभी-कभी ऐसी इच्छा होती कि एक बार निर्मला से अपने मन के सारे भाव खोलकर कह दूँ, लेकिन लज्जा जबान रोक लेती थी। इस भाँति उन्हें सान्त्वना भी न मिलती थी, जो अपनी व्यथा कह डालने से, दूसरे को अपने गम में शरीक कर लेने से मिलती है। मवाद बाहर न निकलकर अन्दर-ही-अन्दर विष फैलाता जाता था। दिन-दिन देह घुलती जाती थी।

इधर कुछ दिन से मुंशीजी और उन डॉक्टर साहब में, जिन्होंने मंसाराम की दवा [illegible]

याराना हो गया था। बेचारे कभी-कभी आकर मुंशीजी को समझाया करते थे, कभी अपने साथ हवा खिलाने के लिए खींच ले जाते। उनकी स्त्री भी दो-चार बार ा से मिलने आयी थी। निर्मला भी कई बार उनके घर गयी थी, मगर वहाँ से जब ती, तो कई दिन तक उदास रहती। उस दम्पत्ति का सुखमय जीवन देखकर उसे नी दशा पर दुःख हुए बिना न रहता था। डॉक्टर साहब को २०० रुपये मिलते थे, इतने ही में दोनों आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे। घर में केवल एक महरी थी हस्थी का बहुत-सा काम स्त्री को अपने ही हाथों करना पड़ता था। गहने भी उसकी देह र बहुत कम थे, पर उन दोनों में वह प्रेम था, जो धन की तृण बराबर परवाह नहीं करता। पुरुष को देखकर स्त्री का चेहरा खिल उठता था, स्त्री को देखकर पुरुष निहाल हो जाता था।

निर्मला के घर में धन इससे कहीं अधिक था—आभूषणों से उसकी देह फट पड़ती थी—घर का कोई काम उसे अपने हाथों से न करना पड़ता था, पर निर्मला सम्पन्न होने पर अधिक दुःखी थी, और सुधा विपन्न होने पर भी सुखी। सुधा के पास ई ऐसी वस्तु न थी, जो निर्मला के पास न थी, जिसके सामने उसे अपना वैभव तुच्छ जान पड़ता था। यहां तक कि वह सुधा के घर गहने पहनकर जाते शरमाती थी।

एक दिन निर्मला डॉक्टर साहब के घर आयी, तो उसे बहुत उदास देखकर सुधा ने पूछा—बहिन, आज बहुत उदास हो, वकील साहब की तबीयत तो अच्छी है न ?

निर्मला—क्या कहूँ सुधा ? उनकी दशा दिन-दिन खराब होती जाती है—कुछ कहते नहीं बनता। न जाने ईश्वर को क्या मंजूर है ?

सुधा—हमारे बाबूजी तो कहते हैं कि उन्हें कहीं जलवायु बदलने के लिए जा जरूरी है, नहीं तो कोई भयंकर रोग खड़ा हो जायेगा। कई बार वकील साहब से चुके हैं। पर वह यही कह दिया करते हैं मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ—मुझे शिकायत नहीं। आज तुम कहना।

निर्मला—जब डॉक्टर साहब की नहीं सुनते तो मेरी क्या सुनेंगे ?

वह कहते-कहते निर्मला की आँखें डबडबा गईं, और जो शंका इधर मही उसके मन को विकल करती थी, मुँह से निकल पड़ी। अब तक उसने शंका को था, पर अब न छिपा सकी। बोली—बहन, मुझे तो लक्षण कुछ अच्छे नहीं माल देखें भगवान् क्या करते हैं ?

सुधा—तुम उनसे आज खूब जोर देकर कहना कि कहीं जलवायु बदल दो-चार महीने बाहर रहने से बहुत-सी बातें भूल जाएँगे। मैं समझती हूँ, श बदलने से भी उनका शोक कुछ कम हो जायेगा। लेकिन तुम कहीं बाहर

की थी, याराना हो गया था। बेचारे कभी-कभी आकर मुंशीजी को समझाया करते थे, कभी-कभी अपने साथ हवा खिलाने के लिए खींच ले जाते। उनकी स्त्री भी दो-चार बार निर्मला से मिलने आयी थी। निर्मला भी कई बार उनके घर गयी थी, मगर वहाँ से जब लौटती, तो कई दिन तक उदास रहती। उस दम्पत्ति का सुखमय जीवन देखकर उसे अपनी दशा पर दुःख हुए बिना न रहता था। डॉक्टर साहब को २०० रुपये मिलते थे, पर इतने ही में दोनों आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे। घर में केवल एक महरी थी गृहस्थी का बहुत-सा काम स्त्री को अपने ही हाथों करना पड़ता था। गहने भी उसकी देह पर बहुत कम थे, पर उन दोनों में वह प्रेम था, जो धन की तृण बराबर परवाह नहीं करता। पुरुष को देखकर स्त्री का चेहरा खिल उठता था, स्त्री को देखकर पुरुष निहाल हो जाता था।

निर्मला के घर में धन इससे कहीं अधिक था—आभूषणों से उसकी देह फट —घर का कोई काम उसे अपने हाथों से न करना पड़ता था, पर निर्मला पर अधिक दुःखी थी, और सुधा विपन्न होने पर भी सुखी। सुधा के पास वस्तु न थी, जो निर्मला के पास न थी, जिसके सामने उसे अपना वैभव तुच्छ पड़ता था। यहां तक कि वह सुधा के घर गहने पहनकर जाते शरमाती थी।

एक दिन निर्मला डॉक्टर साहब के घर आयी, तो उसे बहुत उदास देखकर सुधा ने पूछा—बहिन, आज बहुत उदास हो, वकील साहब की तबीयत तो अच्छी है न ?

निर्मला—क्या कहूँ सुधा ? उनकी दशा दिन-दिन खराब होती जाती है—कुछ कहते नहीं बनता। न जाने ईश्वर को क्या मंजूर है ?

सुधा—हमारे बाबूजी तो कहते हैं कि उन्हें कहीं जलवायु बदलने के लिए जाना जरूरी है, नहीं तो कोई भयंकर रोग खड़ा हो जायेगा। कई बार वकील साहब से कह चुके हैं। पर वह यही कह दिया करते हैं मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ—मुझे कोई शिकायत नहीं। आज तुम कहना।

निर्मला—जब डॉक्टर साहब की नहीं सुनते तो मेरी क्या सुनेंगे ?

यह कहते-कहते निर्मला की आँखे डबडबा गईं, और जो शंका इधर महीनों से उसके मन को विकल करती थी, मुँह से निकल पड़ी। अब तक उसने शंका को छिपाया था, पर अब न छिपा सकी। बोली—बहन, मुझे तो लक्षण कुछ अच्छे नहीं मालूम होते। देखें भगवान् क्या करते हैं ?

सुधा—तुम उनसे आज खूब जोर देकर कहना कि कहीं जलवायु बदलना चाहिए। दो-चार महीने बाहर रहने से बहुत-सी बातें भूल जाएँगे। मैं समझती हूँ, शायद मकान बदलने से भी उनका शोक कुछ कम हो जायेगा। लेकिन तुम कहीं बाहर जा भी तो न

सकोगी। यह कौन सा महीना है ?

निर्मला—आठवाँ महीना बीत रहा है। यह चिन्ता तो मुझे और भी मारे डालती है। मैंने तो इसके लिए ईश्वर से कभी प्रार्थना न की थी। यह बला मेरे सिर न जाने क्यों मढ़ दी ! मैं बड़ी अभागिन हूँ ! बहिन, विवाह के एक महीने पहले पिताजी का देहान्त हो गया। उनके मरते ही मेरे सिर पर सनीचर सवार हुए। जहाँ पहले विवाह की बातचीत पक्की हुई थी, उन लोगों ने आँखें फेर लीं। बेचारी अम्माँ को हार कर मेरा विवाह यहाँ करना पड़ा। अब छोटी बहिन का विवाह होने वाला है। देखें, उसकी नाव किस घाट जाती है !

सुधा—जहाँ पहले विवाह की बातचीत हुई थी उन लोगों ने इन्कार क्यों कर दिया ?

निर्मला—यह तो वे ही जानें। पिताजी न रहे तो सोने की गठरी कौन देता ?

सुधा—यह तो नीचता है। कहाँ के रहने वाले थे ?

निर्मला—लखनऊ के, नाम तो याद नहीं, आबकारी के कोई बड़े अफसर थे।

सुधा ने गम्भीर भाव से पूछा—और उनका लड़का क्या करता था ?

निर्मला—कुछ नहीं, कहीं पढ़ता था; पर था बड़ा होनहार।

सुधा ने सिर नीचा करके कहा—उसने अपने पिता से कुछ न कहा था ? वह तो जवान था, अपने बाप को दबा न सकता था ?

निर्मला—अब मैं क्या जानूँ बहिन ! सोने की गठरी किसे प्यारी नहीं होती ? जो पंडित मेरे यहाँ से संदेश लेकर गया था उसने तो कहा था कि लड़का ही इनकार कर रहा है। लड़के की माँ अलबत्ता देवी थीं। उसने पुत्र और पति दोनों ही को समझाया पर उसकी कुछ न चली।

सुधा—मैं जो उस लड़के को पाती, तो खूब आड़े हाथों लेती !

निर्मला—मेरे भाग्य में जो लिखा था, वह हो चुका। बेचारी कृष्णा पर न जाने क्या बीतेगी।

संध्या समय निर्मला के जाने के बाद डॉक्टर बाहर से आये, तो सुधा ने कहा—क्यों जी तुम उस आदमी को क्या कहोगे जो एक जगह विवाह ठीक कर लेने के बाद फिर लोभवश किसी दूसरी जगह सम्बन्ध कर ले ?

डॉक्टर सिन्हा ने स्त्री की ओर कुतूहल से देखकर कहा—ऐसा नहीं करना चाहिए, और क्या !

सुधा—यह क्यों नहीं कहते कि यह घोर नीचता है-परले सिरे का कमीनापन है।

सिन्हा—हाँ, यह कहने में मुझको इनकार नहीं।

सुधा—किसका अपराध बड़ा है—वर का या वर के पिता का ?

सिन्हा की समझ में अभी तक नहीं आया कि सुधा के इन प्रश्नों का आशय क्या है ? विस्मय से बोले—जैसी स्थिति हो। अगर वह पिता के अधीन हो तो पिता का ही अपराध समझो।

सुधा—अधीन होने पर भी क्या जवान आदमी का अपना कोई कर्त्तव्य नहीं है। अगर उसे अपने लिए नए कोट की जरूरत हो, तो वह पिता के विरोध करने पर भी उसे रो-धोकर मनवा लेता है। क्या ऐसे महत्त्व के विषय में वह अपनी आवाज पिता के कानों तक नहीं पहुँचा सकता ? यह कहो कि वर और उसका पिता दोनों अपराधी हैं; परन्तु वह अधिक ! बूढ़ा आदमी सोचता है, मुझे सारा खर्च सँभालना पड़ेगा, कन्या पक्ष से जितना ऐंठ सकूँ, उतना ही अच्छा; मगर यह वर का धर्म है कि यदि वह स्वार्थ के हाथों बिल्कुल बिक नहीं गया है, तो अपने आत्मबल का परिचय दे। अगर वह ऐसा नहीं करता, तो कहूँगी कि वह लोभी है और कायर भी। दुर्भाग्यवश ऐसा ही एक प्राणी मेरा पति भी है, और मेरी समझ में नहीं आता, किन शब्दों में उनका तिरस्कार करूँ।

सिन्हा ने हिचकिचाते हुए कहा—वह ... वह ... वह दूसरी बात थी। लेनदेन का नहीं था; बिल्कुल दूसरी बात थी। कन्या के पिता का देहान्त हो गया था। ऐसी में हम लोग क्या करते ? यह भी सुनने में आया कि कन्या में कोई ऐब है। वह दूसरी बात थी; मगर तुमसे यह कथा किसने कही ?

सुधा—कह दो, वह कानी थी या कुबड़ी थी, या नाइन के पेट की थी या भ्रष्टा ! इतनी कसर क्यों छोड़ दी ? भला सुनूँ तो उस कन्या में क्या ऐब था ?

सिन्हा—मैंने देखा तो था नहीं; सुनने में आया था कि उसमें कोई ऐब है।

सुधा—सबसे बड़ा ऐब यही था कि उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था, और कोई लम्बी-चौड़ी रकम न दे सकती थी। इतना स्वीकार करते क्यों झेंपते हो ? मैं तुम्हारे कान तो काट न लूँगी ? अगर दो-चार फिकरे कसूँ, तो इस कान से सुनकर उस कान से उड़ा देना। ज्यादा चीं-चपड़ करूँ तो छड़ी से काम ले सकते हो। औरत लात-घूँसे ही से ठीक रहती है। अगर उस कन्या में कोई ऐब था, तो मैं कहूँगी, लक्ष्मी भी बे-ऐब नहीं ! तुम्हारी तकदीर खोटी थी बस ! और क्या ? तुम्हें तो मेरे पाले पड़ना था।

सिन्हा—तुम से किसने कहा था कि वह ऐसी थी और वैसी थी ! जैसे तुमने किसी से सुनकर मान लिया, वैसे ही हम लोगों ने भी सुनकर मान लिया।

सुधा—मैंने सुनकर नहीं मान लिया। अपनी आखों से देखा। ज्यादा बखान क्या करूँ, मैंने ऐसी सुन्दर स्त्री कभी नहीं देखी थी।

सिन्हा ने व्यग्र होकर पूछा—क्या वह यहीं कहीं है ? सच बताओ, उसे कहाँ

देखा ? क्या तुम्हारे घर आयी थी ?

सुधा—हाँ मेरे घर आयी थी; और एक बार नहीं, कई बार आ चुकी है। मैं भी उसके यहाँ कई बार जा चुकी हूँ। वकील साहब की बीवी वही कन्या है, जिसे आपने ऐबों के कारण त्याग दिया।

सिन्हा—सच !

सुधा—बिलकुल सच ! आज उसे अगर मालूम हो जाए कि आप वही महापुरुष हैं तो शायद फिर इस घर में कदम न रखे। ऐसी सुशीला, घर के कामों में निपुण और ऐसी परम सुन्दरी स्त्री इस शहर में दो-ही-चार होंगी। तुम मेरा बखान करते हो। मैं उसकी लौंडी बनने के योग्य भी नहीं हूँ। घर में ईश्वर का दिया हुआ सब कुछ है, मगर जब प्राणी ही मेल का नहीं तो और सब रह कर क्या करेगा ? धन्य है उसके धैर्य को कि उस बुड्ढे खूसट वकील के साथ जीवन के दिन काट रही है। मैंने तो कब का ज़हर खा लिया होता। मगर मन की व्यथा कहने से ही थोड़े प्रकट होती है। हँसती है, बोलती है; गहने-कपड़े पहनती है, पर रोआँ-रोआँ रोया करता है।

सिन्हा—वकील साहब की खूब शिकायत करती होगी।

सुधा—शिकायत क्यों करेगी ? क्या वह उसके पति नहीं हैं ? संसार में अब उसके लिए जो कुछ हैं, वकील साहब हैं। वह बुड्ढे हों या रोगी, पर हैं तो उसके स्वामी ही। कुलवती स्त्रियाँ पति की निन्दा नहीं करतीं—यह कुलटाओं का काम है। वह उनकी दशा देखकर कुढ़ती है, पर मुँह से कुछ नहीं कहती है।

सिन्हा—इन वकील साहब को क्या सूझी थी, जो इस उम्र में ब्याह करने चले ?

सुधा—ऐसे आदमी न हों, तो गरीब क्वाँरियों की नाव कौन पार लगाए ? तुम और तुम्हारे साथी बिना भारी गठरी लिये बात नहीं करते, तो फिर ये बेचारी किसके घर जाएँ ? तुमने बड़ा अन्याय किया है और तुम्हें इसका प्रायश्चित करना पड़ेगा। ईश्वर इसका सुहाग अमर करे ! फिर वकील साहब को कहीं कुछ हो गया तो बेचारी का जीवन नष्ट हो जायगा। आज तो वह बहुत रोती थी। तुम लोग सचमुच बड़े निर्दय हो। मैं तो अपने सोहन का विवाह किसी गरीब लड़की से करूँगी।

डॉक्टर साहब ने पिछला वाक्य नहीं सुना। वह घोर चिन्ता में पड़ गए। उनके मन में प्रश्न उठ-उठकर उन्हें विकल करने लगे—कहीं वकील साहब को कुछ हो गया तो ? आज अपने स्वार्थ का भयंकर स्वरूप दिखाई दिया। वास्तव में यह उन्हीं का अपराध था। अगर उन्होंने पिता से ज़ोर देकर कहा होता कि और कहीं विवाह न करूँगा तो क्या वह उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका विवाह कर देते ?

सहसा सुधा ने कहा—कहो तो निर्मला से तुम्हारी मुलाकात करा दूँ ? वह भी ज़रा

सुधा—किसका अपराध बड़ा है—वर का या वर के पिता का ?

सिन्हा की समझ में अभी तक नहीं आया कि सुधा के इन प्रश्नों का आशय क्या है ? विस्मय से बोले—जैसी स्थिति हो। अगर वह पिता के अधीन हो तो पिता का ही अपराध समझो।

सुधा—अधीन होने पर भी क्या जवान आदमी का अपना कोई कर्तव्य नहीं है। अगर उसे अपने लिए नए कोट की जरूरत हो, तो वह पिता के विरोध करने पर भी उसे रो-धोकर मनवा लेता है। क्या ऐसे महत्त्व के विषय में वह अपनी आवाज पिता के कानों तक नहीं पहुँचा सकता ? यह कहो कि वर और उसका पिता दोनों अपराधी हैं; परन्तु वह अधिक ! बूढ़ा आदमी सोचता है, मुझे सारा खर्च सँभालना पड़ेगा, कन्या पक्ष से जितना ऐंठ सकूँ, उतना ही अच्छा; मगर यह वर का धर्म है कि यदि वह स्वार्थ के हाथों बिल्कुल बिक नहीं गया है, तो अपने आत्मबल का परिचय दे। अगर वह ऐसा नहीं करता, तो कहूँगी कि वह लोभी है और कायर भी। दुर्भाग्यवश ऐसा ही एक प्राणी मेरा पति भी है, और मेरी समझ में नहीं आता, किन शब्दों में उनका तिरस्कार करूँ।

सिन्हा ने हिचकिचाते हुए कहा—वह ... वह ... वह दूसरी बात थी। लेनदेन का कारण नहीं था; बिल्कुल दूसरी बात थी। कन्या के पिता का देहान्त हो गया था। ऐसी दशा में हम लोग क्या करते ? यह भी सुनने में आया कि कन्या में कोई ऐब है। वह बिलकुल दूसरी बात थी; मगर तुमसे यह कथा किसने कही ?

सुधा—कह दो, वह कानी थी या कुबड़ी थी, या नाइन के पेट की थी या भ्रष्टा थी ! इतनी कसर क्यों छोड़ दी ? भला सुनूँ तो उस कन्या में क्या ऐब था ?

सिन्हा—मैंने देखा तो था नहीं; सुनने में आया था कि उसमें कोई ऐब है।

सुधा—सबसे बड़ा ऐब यही था कि उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था, और वह कोई लम्बी-चौड़ी रकम न दे सकती थी। इतना स्वीकार करते क्यों झेंपते हो ? मैं कुछ तुम्हारे कान तो काट न लूँगी ? अगर दो-चार फिकरे कसूँ, तो इस कान से सुनकर उस कान से उड़ा देना। ज्यादा चीं-चपड़ करूँ तो छड़ी से काम ले सकते हो। औरत लात-डण्डे ही से ठीक रहती है। अगर उस कन्या में कोई ऐब था, तो मैं कहूँगी, लक्ष्मी भी बे-ऐब नहीं ! तुम्हारी तकदीर खोटी थी बस ! और क्या ? तुम्हें तो मेरे पाले पड़ना था।

सिन्हा—तुम से किसने कहा था कि वह ऐसी थी और वैसी थी ! जैसे तुमने किसी से सुनकर मान लिया, वैसे ही हम लोगों ने भी सुनकर मान लिया।

सुधा—मैंने सुनकर नहीं मान लिया। अपनी आखों से देखा। ज्यादा बखान क्या करूँ, मैंने ऐसी सुन्दर स्त्री कभी नहीं देखी थी।

सिन्हा ने व्यग्र होकर पूछा—क्या वह यहीं कहीं है ? सच बताओ, उसे कहाँ

देखा ? क्या तुम्हारे घर आयी थी ?

सुधा—हाँ मेरे घर आयी थी; और एक बार नहीं, कई बार आ चुकी है। मैं भी उसके यहाँ कई बार जा चुकी हूँ। वकील साहब की बीबी वही कन्या है, जिसे आपने पैसों के कारण त्याग दिया।

सिन्हा—सच !

सुधा—बिलकुल सच ! आज उसे अगर मालूम हो जाए कि आप वही महापुरुष हैं तो शायद फिर इस घर में कदम न रखे। ऐसी सुशीला, घर के कामों में निपुण और ऐसी परम सुन्दरी स्त्री इस शहर में दो-ही-चार होंगी। तुम मेरा बखान करते हो। मैं उसकी लौंडी बनने के योग्य भी नहीं हूँ। घर में ईश्वर का दिया हुआ सब कुछ है, मगर जब प्राणी ही मेल का नहीं तो और सब रह कर क्या करेगा ? धन्य है उसके धैर्य को कि उस बुड्ढे खूसट वकील के साथ जीवन के दिन काट रही है। मैंने तो कब का जहर खा लिया होता। मगर मन की व्यथा कहने से ही थोड़े प्रकट होती है। हँसती है, बोलती है; गहने-कपड़े पहनती है, पर रोआँ-रोआँ रोया करता है।

सिन्हा—वकील साहब की खूब शिकायत करती होगी।

सुधा—शिकायत क्यों करेगी ? क्या वह उसके पति नहीं हैं ? संसार में अब उसके लिए जो कुछ हैं, वकील साहब हैं। वह बुड्ढे हों या रोगी, पर हैं तो उसके स्वामी ही। कुलवती स्त्रियाँ पति की निन्दा नहीं करतीं—यह कुलटाओं का काम है। वह उनकी दशा देखकर कुढ़ती है, पर मुँह से कुछ नहीं कहती है।

सिन्हा—इन वकील साहब को क्या सूझी थी, जो इस उम्र में ब्याह करने चले ?

सुधा—ऐसे आदमी न हों, तो गरीब क्वारियों की नाव कौन पार लगाए ? तुम और तुम्हारे साथी बिना भारी गठरी लिये बात नहीं करते, तो फिर ये बेचारी किसके घर जाएँ ? तुमने बड़ा अन्याय किया है और तुम्हें इसका प्रायश्चित करना पड़ेगा। ईश्वर उसका सुहाग अमर करे ! फिर वकील साहब को कहीं कुछ हो गया तो बेचारी का जीवन नष्ट हो जायगा। आज तो वह बहुत रोती थी। तुम लोग सचमुच बड़े निर्दय हो। मैं तो अपने सोहन का विवाह किसी गरीब लड़की से करूँगी।

डॉक्टर साहब ने पिछला वाक्य नहीं सुना। वह घोर चिन्ता में पड़ गए। उनके मन में प्रश्न उठ-उठकर उन्हें विकल करने लगा—कहीं वकील साहब को कुछ हो गया तो ? आज अपने स्वार्थ का भयंकर स्वरूप दिखाई दिया ! वास्तव में यह उन्हीं का अपराध था। अगर उन्होंने पिता से जोर देकर कहा होता कि और कहीं विवाह न करूँगा तो क्या वह उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका विवाह कर देते ?

सहसा सुधा ने कहा—कहो तो निर्मला से तुम्हारी मुलाकात करा दूँ ! वह भी जरा

तुम्हारी सूरत देख ले। वह कुछ बोलेगी तो नहीं, पर कदाचित् एक दृष्टि में वह तुम्हारा उतना तिरस्कार कर देगी, जिसे तुम कभी न भूल सकोगे। बोलो, कल मिला दूँ ? तुम्हारा बहुत संक्षिप्त परिचय भी दे दूंगी।

सिन्हा ने कहा—नहीं सुधा, तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, कहीं ऐसा गजब न करना नहीं तो सच कहता हूँ, घर छोड़कर भाग जाऊँगा।

सुधा—जो काँटा बोया है, उसका फल खाते क्यों इतना डरते हो ? जिसकी गर्दन पर कटार चलायी है, जरा उसे तड़पते भी तो देखो ! मेरे दादाजी ने पाँच हजार दिये न ! अभी छोटे भाई के विवाह में पाँच-छह हजार और मिल जाएँगे। फिर तो तुम्हारे बराबर धनी संसार में कोई दूसरा न होगा ! ग्यारह हजार बहुत होते हैं। बाप रे बाप ! ग्यारह हजार ! उठा-उठाकर रखने लगें, तो महीनों लग जायँ। अगर लड़के उड़ाने भी लगें तो तीन पीढ़ियों तक चलें ! कहीं से बात हो रही है या नहीं ?

इस परिहास से डॉक्टर साहब इतना झेंपे कि सिर तक न उठा सके। उनका सारा वाक्‌चातुर्य गायब हो गया। नन्हा-सा मुंह निकल आया, मानो मार पड़ गई हो। इसी वक्त किसी ने डॉक्टर साहब को बाहर से पुकारा। बेचारे जान लेकर भागे। स्त्री कितनी परिहास-कुशल होती है, इसका आज परिचय मिल गया।

रात को डॉक्टर साहब शयन करते हुए सुधा से बोले—निर्मला की तो कोई बहिन है न ?

सुधा—हाँ, आज उसी की तो चर्चा करती थी। उसी की चिन्ता अभी से सवार हो रही है ! अपने ऊपर तो जो कुछ बीतना था, बीत चुका; बहिन की फिक्र में पड़ी हुई माँ के पास तो अब और भी कुछ न रहा; मजबूरन किसी ऐसे ही बूढ़े बाबा के गले भी मढ़ दी जायगी।

सिन्हा—निर्मला अब तो अपनी माँ की मदद कर सकती है।

सुधा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—तुम भी कभी-कभी बिल्कुल बेसिर-पैर की बातें करने लगते हो। निर्मला बहुत करेगी, तो दो-चार सौ रुपये दे देगी, और क्या कर सकती है ? वकील साहब का यह हाल हो रहा है; उसे अभी पहाड़ सी उम्र काटनी है। फिर कौन जाने, उनके घर का क्या हाल है। इधर छह महीने से बेचारे घर बैठे हैं। रुपये आकाश से थोड़े ही बरसते हैं। दस बीस हजार होंगे भी तो बैंक में होंगे; कुछ निर्मला के पास तो रखे न होंगे। हमारा २०० रु महीने का खर्च है, तो क्या उनका ४०० रु महीने का भी न होगा ?

सुधा को तो नींद आ गई, पर डॉक्टर साहब बहुत देर तक करवट बदलते रहे। फिर कुछ सोचकर उठे और मेज पर बैठकर एक पत्र लिखने लगे।

तीनों बातें एक साथ हुईं—निर्मला की कन्या ने जन्म लिया, कृष्णा का विवाह निश्चित हुआ और मुंशी तोताराम का मकान नीलाम हो गया। कन्या का जन्म तो साधारण बात थी, यद्यपि निर्मला की दृष्टि में यह उसके जीवन की सबसे महान् घटना थी; लेकिन शेष घटनाएँ असाधारण थीं। कृष्णा का विवाह ऐसे सम्पन्न घराने में क्यों कर ठीक हुआ ? उसकी माता के पास तो दहेज के नाम की कौड़ी भी न थी; और इधर बुड्ढे सिन्हा साहब जो पेंशन लेकर घर आ गए थे, बिरादरी में लोभी मशहूर थे। वह अपने पुत्र का विवाह ऐसे दरिद्र घराने में करने पर कैसे राजी हुए ? किसी को सहसा विश्वास न आता था। इससे भी बड़े आश्चर्य की बात मुंशीजी के मकान का नीलाम होना था। लोग मुंशीजी को लखपती नहीं, तो बड़े आदमी अवश्य समझते थे। उनका मकान कैसे नीलाम हुआ ? बात यह थी कि मुंशीजी ने एक महाजन से कुछ रुपये कर्ज लेकर एक गाँव रेहन रखा था। उन्हें आशा थी कि साल-आध-साल में यह रुपये पटा देंगे। फिर दस-पाँच साल में उस गाँव पर कब्जा कर लेंगे। वह जमींदार असल और सूद के कुल रुपये अदा करने में असमर्थ हो जायगा। इसी भरोसे पर मुंशीजी ने यह मामला किया था। गाँव बहुत बड़ा था—चार-पाँच सौ रुपये नफा होता था, लेकिन मन की सोची मन ही में रह गई। मुंशीजी दिल को बहुत समझाने पर भी कचहरी न जा सके। पुत्रशोक ने कोई काम करने की शक्ति ही न छोड़ी। कौन ऐसा हृदयशून्य पिता है जो पुत्र की गर्दन पर तलवार चलाकर चित्त को शान्त कर ले ?

महाजन के पास जब साल-भर तक सूद न पहुँचा और न उसके बार-बार बुलाने पर मुंशीजी उसके पास गये—यहाँ तक कि पिछली बार उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि हम किसी के गुलाम नहीं हैं साहुजी जो चाहें करें—तब साहुजी को गुस्सा आ गया। उसने नालिश कर दी। मुंशीजी पैरवी करने भी न गये। एकाएक डिग्री हो गई। यहाँ घर में रुपये कहाँ रखे थे। इतने ही दिनों में मुंशीजी की साख भी उठ गई थी। वह रुपये का कोई प्रबन्ध न कर सके। आखिर मकान नीलाम पर चढ़ गया। निर्मला सौर में थी। यह खबर सुनी तो कलेजा सन्न-सा हो गया। जीवन में कोई और सुख न होने पर भी धनाभाव की चिन्ताओं से मुक्त थी। धन मानव जीवन में अगर सर्वप्रधान वस्तु नहीं तो वह उसके बहुत निकट की वस्तु अवश्य है। अब और अभावों के साथ यह चिन्ता भी उसके सिर सवार हुई। उसने दाई द्वारा कहला भेजा मेरे सब गहने बेचकर घर को बचा लीजिए, लेकिन मुंशीजी ने यह प्रस्ताव किसी तरह स्वीकार न किया।

उस दिन से मुंशीजी और भी चिन्ताग्रस्त रहने लगे। जिस धन का सुख भोगने के लिए उन्होंने विवाह किया था वह अब अतीत की स्मृतिमात्र था। वह मारे ग्लानि के

अब निर्मला को अपना मुँह तक न दिखा सकते थे। उन्हें अब उस अन्याय का अनुमान हो रहा था, जो उन्होंने निर्मला के साथ किया था और कन्या के जन्म ने तो रही-सही कसर भी पूरी कर दी—सर्वनाश ही कर डाला !

बारहवें दिन सौर से निकल कर निर्मला नवजात शिशु को गोद में लिये पति के पास गयी। वह इस अभाव में भी इतनी प्रसन्न थी, मानो कोई चिंता नहीं है। बालिका को हृदय से लगाकर वह अपनी सारी चिन्ताएँ भूल गई थी। शिशु के विकसित और हर्षप्रदीप्त नेत्रों को देखकर उसका हृदय प्रफुल्लित हो रहा था। मातृत्व के इस उद्गार में उसके सारे क्लेश विलीन हो गए थे। वह शिशु को पति की गोद में देखकर निहाल हो जाना चाहती थी, लेकिन मुंशीजी कन्या को देखकर सहम उठे। गोद में लेने के लिए उनका हृदय हुलसा नहीं; पर उन्होंने एक बार उसे करुण नेत्रों से देखा और फिर सिर झुका लिया। शिशु की सूरत मंसाराम से बिलकुल मिलती थी।

निर्मला ने उनके मन का भाव कुछ और ही समझा। उसने शतगुण स्नेह से लड़की को हृदय से लगा लिया, मानो उनसे कह रही है—अगर तुम इसके बोझ से दबे जाते हो, तो आज से मैं इस पर तुम्हारी छाया भी न पड़ने दूंगी। जिस रत्न को मैंने इतनी तपस्या के बाद पाया है, उसका निरादर करते हुए तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता। वह उसी क्षण शिशु को चिपकाए हुए अपने कमरे में चली आयी और देर तक रोती रही। उसने पति की इस उदासीनता को समझने की जरा भी चेष्टा न की, नहीं तो शायद वह उन्हें इतना कठोर न समझती। उसके सिर उत्तरदायित्व का इतना बड़ा भार कहां था, जो उसके पति पर आ पड़ा था। वह सोचने की चेष्टा करती, तो क्या इतना भी उसकी समझ में न आता।

मुंशीजी को एक ही क्षण में अपनी भूल मालूम हो गई। माता का हृदय प्रेम में इतना अनुरक्त रहता है कि भविश्य की चिन्ता और बाधाएँ उसे जरा भी भयभीत नहीं करतीं। उसे अपने अन्त:करण में एक अलौकिक शक्ति का अनुभव होता है, जो बाधाओं को उसके सामने परास्त कर देती है। मुंशीजी दौड़ते हुए घर में आये और शिशु को गोद में लेकर बोले—मुझे यद आती है, मंसा भी ऐसा ही था—बिल्कुल ऐसा ही !

निर्मला—दीदीजी भी तो यही कहती हैं।

मुंशीजी—बिलकुल वही बड़ी-बड़ी आँखें और लाल-लाल होंठ हैं। ईश्वर ने मुझे मंसाराम इस रूप में दे दिया। वही माथा है, वही मुँह वही हाथ-पांव ! ईश्वर, तुम्हारी लीला अपार है।

सहसा रुक्मिणी भी आ गई। मुंशीजी को देखते ही बोली—देखो बाबू मंसाराम है कि नहीं ? वही आया है, कोई लाख कहे, मैं न मानूंगी। साफ मंसाराम है ! साल भर के

लड़कियों को दूज के चन्द्रमा की भाँति ससुराल जाते और पूर्ण चन्द्र बनकर आते देखा। मन में कल्पना कर रही थी, निर्मला का रंग निखर गया होगा, देह भरकर सुडोल हो गई होगी—अंग-प्रत्यंग की शोभा कुछ और ही हो गई होगी। अब जो देखा, तो वह आधी भी न रही थी। न यौवन की चंचलता थी, न वह विहसित छवि, जो हृदय को मोह लेती है। वह कमनीयता, सुकुमारता, जो विलासमय जीवन से आ जाती है, यहाँ नाम को न थी। मुख पीला, चेष्टा गिरी हुई, अंग शिथिल। उन्नीसवें ही वर्ष में बुड्ढी हो गई थी। जब माँ-बेटियां रो-धोकर शान्त हुईं तो माता ने पूछा—क्यों री, तुझे क्या तकलीफ थी ?

कृष्णा ने हँसकर कहा—वहां मालकिन थीं कि नहीं ? मालकिन को दुनियाभर की चिन्ताएं रहती हैं, भोजन कब करे !

निर्मला—नहीं अम्माँ, वहां का पानी मुझे रास नहीं आता। तबीयत भरी रहती है।

माता—वकील साहब न्योते में आएंगे न ? तब पूछूंगी कि आपने फूल-सी लड़की ले जाकर उसकी यह गत बना डाली। अच्छा, यह बता कि तूने यहां रुपये क्यों भेजे थे ? मैंने तो तुझसे कभी न मांगे थे। लाख गयी-गुजरी हूं, लेकिन बेटी का धन खाने की नीयत नहीं।

निर्मला ने चकित होकर पूछा—किसने रुपये भेजे थे अम्माँ ! मैंने तो नहीं भेजे।

माता—झूठ न बोल ! तूने ५०० रु के नोट नहीं भेजे थे ?

कृष्णा—भेजे नहीं थे तो क्या आसमान से आ गए ? तुम्हारा नाम साफ लिखा था। मोहर भी वहीं की थी।

निर्मला—चरण छूकर कहती हूं, मैंने रुपये नहीं भेजे। यह कब की बात है ?

माता—अरे, यही दो-ढाई महीने हुए होंगे। मगर तूने नहीं भेजे, तो आये कहां से ?

निर्मला—यह मैं क्या जानूं ? मगर मैंने रुपये नहीं भेजे। हमारे यहां तो जब से जवान बेटा मरा है, कचहरी ही नहीं जाते। मेरा हाथ तो आप ही तंग था, रुपये कहां से आते ?

माता—यह बड़े आश्चर्य की बात है। वहां और कोई तेरा सगा-संबंधी तो नहीं है ? वकील साहब ने तुमसे छिपाकर तो नहीं भेजे ?

निर्मला—नहीं अम्माँ, मुझे तो विश्वास नहीं।

माता—इसका पता लगाना चाहिए। मैंने सारे रुपये कृष्णा के गहने-कपड़े में खर्च कर डाले। यही बड़ी मुश्किल हुई।

दोनों लड़कों में किसी विषय पर विवाद उठ खड़ा हुआ और कृष्णा उधर फैसला करने चली गई, तो निर्मला ने माता से कहा—इस विवाह की बात सुनकर मुझे बड़ा

आश्चर्य हुआ। यह कैसे हुआ अम्माँ?

माता—यहाँ जो सुनता है, दाँतों उँगली दबाता है। जिन लोगों ने पक्की-पकाई बात फेर दी और केवल थोड़े से रुपये के लोभ से, वे अब बिना कुछ लिए कैसे विवाह करने को तैयार हो गए, समझ में नहीं आता। उन्होंने खुद पत्र भेजा। मैंने साफ लिख दिया कि मेरे पास देने-लेने को कुछ नहीं है, कुश-कन्या ही से आपकी सेवा कर सकती हूँ।

निर्मला—इसका कुछ जवाब नहीं दिया?

माता—शास्त्रीजी पत्र लेकर गये थे। वह तो यही कहते थे कि अब मुंशीजी कुछ लेने के इच्छुक नहीं हैं। अपनी पहली वादाखिलाफी पर कुछ लज्जित भी हैं। मुंशीजी से तो इतनी उदारता की आशा न थी, मगर सुनती हूँ, उनके बड़े पुत्र सज्जन आदमी हैं। उन्होंने कह-सुनकर बाप को राजी किया है।

निर्मला—पहले तो वह महाशय भी थैली चाहते थे न?

माता—हाँ, मगर अब तो शास्त्रीजी कहते थे कि दहेज के नाम से चिढ़ते हैं। सुना है, यहाँ विवाह न करने पर पछताते भी थे। रुपये के लिए बात छोड़ी थी, और रुपये खूब पाये पर स्त्री पसंद नहीं।

निर्मला के मन में उस पुरुष को देखने की प्रबल उत्कंठा हुई, जो उसकी अवहेलना करके अब उसकी बहिन का उद्धार करना चाहता है। प्रायश्चित सही, लेकिन कितने ऐसे प्राणी हैं, जो इस तरह प्रायश्चित करने को तैयार हैं? उनसे बातें करने के लिए, नम्र शब्दों से उनका तिरस्कार करने के लिए, अपनी अनुपम छवि दिखाकर उन्हें और भी जलाने के लिए निर्मला का मन अधीर हो उठा। रात को दोनों बहिनें एक ही कमरे में सोईं। मुहल्ले में किन-किन लड़कियों का विवाह हो गया, कौन-कौन लड़कोरी हुईं, किस-किसका विवाह धूम-धाम से हुआ, किस-किसके पति कन्या के इच्छानुकूल मिले, कौन कितने और कैसे-कैसे गहने चढ़ावे में लाया—इन्हीं विषयों पर दोनों में बड़ी देर तक बातें होती रहीं। कृष्णा बराबर चाहती थी कि बहिन के घर का कुछ हाल पूछे, मगर निर्मला उसे पूछने का अवसर न देती थी। वह जानती थी कि यह जो बातें पूछेगी, उनके बताने में मुझे संकोच होगा। एक बार कृष्णा पूछ ही बैठी—जीजाजी भी आएँगे न?

निर्मला—आने को कहा तो है।

कृष्णा—अब तो तुमसे प्रसन्न रहते हैं न या अब भी वही हाल है? मैं तो सुना करती थी, दुहाजू पति अपनी स्त्री को प्राणों से भी प्रिय समझते हैं, यहाँ बिल्कुल उल्टी बात देखी। आखिर किस बात पर बिगड़ते रहते हैं?

निर्मला—अब मैं किसी के मन की बात क्या जानूँ ?

कृष्णा—मैं तो समझती हूँ, तुम्हारी रुखाई से चिढ़ते होंगे। तुम तो यहीं से जली गयी थीं। वहाँ भी उन्हें कुछ कहा होगा।

निर्मला—यह बात नहीं है कृष्णा, मैं सौगन्ध खाकर कहती हूं, जो मेरे मन में नकी ओर से जरा भी मैल हो। मुझसे जहाँ तक हो सकता है, उनकी सेवा करती हूं। गर उनकी जगह कोई देवता भी होता, तो भी मैं इससे ज्यादा और कुछ न कर सकती। न्हें भी मुझसे प्रेम है। बराबर मेरा मुँह देखते रहते हैं, लेकिन जो बात उनके और मेरे हाथ के बाहर है, उसके लिए वह क्या कर सकते हैं, और मैं क्या कर सकती हूं ! न वह जवान हो सकते हैं, न मैं बुढ़िया हो सकती हूं। जवान बनने के लिए वह न जाने कितने रस और भस्म खाते रहते हैं, मैं बुढ़िया बनने के लिए दूध घी सब छोड़ देती हूं। सोचती हूं, मेरे दुबलेपन ही से अवस्था का भेद कुछ कम हो जाय, लेकिन न उन्हें पौष्टिक पदार्थों से कुछ लाभ होता है, न मुझे उपवासों से। जब से मंसाराम का देहान्त हो गया है, तब से उनकी दशा और खराब हो गई है।

कृष्णा—मंसाराम को तुम भी बहुत प्यार करती थीं ?

निर्मला—वह लड़का ऐसा था जो देखता था, प्यार करता था। ऐसी बड़ी-बड़ी डोरेदार आँखे मैंने किसी की नहीं देखीं। कमल की भाँति मुख हरदम खिला रहता था। ऐसा साहसी कि अगर अवसर आ पड़ता तो आग में फाँद जाता। कृष्णा मैं तुम से सच कहती हूँ, जब मेरे पास आकर बैठ जाता, तो मैं अपने को भूल जाती थी। जी चाहता था, वह हरदम सामने बैठा रहे और मैं देखा करूँ। मेरे मन में पाप का लेश भी न था। अगर एक क्षण के लिए भी मैंने उसकी ओर किसी और भाव से देखा हो, तो मेरी आंखें फूट जायँ पर न जाने क्यों उसे अपने पास देखकर मेरा हृदय फूला न समाता था। इसीलिए मैंने उससे पढ़ने का स्वाँग रचा नहीं तो वह घर में आता ही न था। यह मैं जानती हूँ कि अगर उसके मन में पाप होता, तो मैं उसके लिए सब कुछ कर सकती थी।

कृष्णा—अरे बहिन, चुप रहो, कैसी बात मुँह से निकालती हो।

निर्मला—हाँ, हाँ, यह बात सुनने में बुरी मालूम होती है, और है भी बुरी, लेकिन मनुष्य की प्रकृति को कोई नहीं बदल सकता। तू ही बता, एक पचास वर्ष के मर्द से तेरा विवाह हो जाय तो क्या करेगी ?

कृष्णा—मैं तो जहर खाकर सो रहूँ। मुझसे मुँह देखते भी न बने।

निर्मला—तो बस यही समझ ले। उस लड़के ने कभी मेरी ओर आँख उठाक नहीं देखा, लेकिन बुड्ढे शक्की तो होते ही हैं—तुम्हारे जीजा उस लड़के के दुश्मन गए, और आखिर उसकी जान लेकर ही छोड़ी। जिस दिन से उसे ज्वर चढ़ा तो उ

लेकर ही उतरा। हाय ! उस अन्तिम समय का दृश्य आँखों से नहीं उतरता। मैं अस्पताल गयी थी, वह ज्वर में बेहोश पड़ा था—उठने की शक्ति न थी, लेकिन ज्यों ही मेरी आवाज सुनी, चौंककर और 'माता-माता' कहकर मेरे पैरों पर गिर पड़ा। (रोकर) कृष्णा ! उस समय ऐसा जी चाहता था कि अपने प्राण निकालकर उसे दे दूँ। मेरे पैरों पर ही वह मूर्छित हो गया और आँखें न खोलीं। डॉक्टरों ने उसके देह में ताजा खून डालने का प्रस्ताव किया था, यही सुनकर मैं दौड़ी गई थी, लेकिन डॉक्टर लोग यह क्रिया आरम्भ करें, उसके प्राण निकल गए।

कृष्णा—ताजा रक्त पड़ जाने से उसकी जान बच जाती ?

निर्मला—कौन जानता है ? लेकिन मैं तो अपनी रुधिर की अन्तिम बूँद तक देने को तैयार थी ! उस दशा में भी उसका मुख-मण्डल दीपक की भाँति चमकता था। अगर वह मुझे देखते ही दौड़कर मेरे पैरों पर न गिर पड़ता और पहले कुछ रक्त देह में पहुँच पाता, तो शायद बच जाता।

कृष्णा—तो तुमने उन्हें उसी वक्त लिटा क्यों न दिया ?

निर्मला—अरे पगली, तू अभी तक बात न समझी। वह मेरे पैरों पर गिरकर और माता-पुत्र का सम्बन्ध दिखाकर अपने बाप के दिल से वह सन्देह निकाल देना चाहता था। केवल इसीलिए वह उठा था। मेरा क्लेश मिटाने के लिए उसने प्राण दिये और उसकी यह इच्छा पूरी हो गई। तुम्हारे जीजाजी उसी दिन से सीधे हो गए। अब तो उनकी दशा पर मुझे दया आती है। पुत्रशोक उनके प्राण लेकर छोड़ेगा। मुझ पर संदेह करके जो अन्याय किया है, अब उनका प्रतिशोध कर रहे हैं। अबकी उनकी सूरत देखकर तू डर जायगी। बूढ़े बाबा हो गए हैं। कमर भी झुक चली है।

कृष्णा—बुड्ढे लोग इतने शक्की क्यों होते हैं, बहिन ?

निर्मला—यह जाकर बुड्ढों से पूछो।

कृष्णा—मैं तो समझती हूँ, उनके दिल में हरदम एक चोर-सा बैठा रहता होगा कि युवती को प्रसन्न नहीं रख सकता। इसीलिए ज़रा-ज़रासी बात पर उन्हें शक होने लगता है।

निर्मला—जानती तो है फिर मुझसे क्यों पूछती है ?

कृष्णा—इसीलिए बेचारा स्त्री से दबता भी होगा। देखने वाले समझते होंगे कि यह प्रेम करता है।

निर्मला—तूने इतने ही दिनों में इतनी बातें कहाँ से सीख लीं ? इन बातों को जाने दे; बता तुझे अपना घर पसंद है ? उसकी तस्वीर तो देखी होगी ?

कृष्णा—हाँ, आयी तो थी। लाऊँ देखोगी ?

एक क्षण में कृष्णा ने तस्वीर लाकर निर्मला के हाथ में रख दी।

निर्मला ने मुस्कराकर कहा—तू बड़ी भाग्यवान है।

कृष्णा—अम्माँजी ने भी बहुत पसन्द किया।

निर्मला—तुझे पसन्द है कि नहीं, सो कह; दूसरों की बात न चला।

कृष्णा—(लजाती हुई) शक्ल-सूरत तो बुरी नहीं है, स्वभाव का हाल ईश्वर जाने। शास्त्रीजी तो कहते थे, ऐसे सुशील और चरित्रवान कम होंगे।

निर्मला—यहाँ से तेरी तस्वीर गई थी ?

कृष्णा—गई तो थी, शास्त्रीजी तो ले गए थे।

निर्मला—उन्हें पसन्द आई ?

कृष्णा—अब किसी के मन की बात मैं क्या जानूँ ? शास्त्रीजी तो कहते थे, बहुत खुश हुए थे।

निर्मला—अच्छा, बता तुझे क्या उपहार दूँ ? अभी से बता दे जिसमें बनवा रखूँ।

कृष्णा—जो तुम्हारा जी चाहे, दे देना। उन्हें पुस्तकों से बहुत प्रेम है। अच्छी-अच्छी पुस्तकें मँगवा देना।

निर्मला—उनके लिए नहीं पुछती, तेरे लिए पुछती हूँ।

कृष्णा—अपने ही लिए तो मैं कह रही हूं।

निर्मला—(तस्वीर की तरफ देखती हूई) कपड़े सब खद्दर के मालूम होते हैं।

कृष्णा—हाँ, खद्दर के बड़े प्रेमी हैं। सुनती हूँ कि पीठ पर खद्दर लादकर देहातों में बेचने जाया करते हैं। व्याख्यान देने में बड़े चतुर हैं।

निर्मला तब तो तुझे भी खद्दर पहनना पड़ेगा। तुझे तो मोटे कपड़ों से चिढ़ है।

कृष्णा—जब उन्हें मोटे कपड़े अच्छे लगते हैं, तो मुझे क्यों चिढ़ होगी; मैंने तो चर्खा चलाना सीख लिया है।

निर्मला—सच! सूत निकाल लेती है ?

कृष्णा—हाँ बहिन, थोड़ा-थोड़ा निकाल लेती हूं। ज्ब वह खद्दर के इतने प्रेमी हैं, ो चर्खा भी जरूर चलाते होंगे। मैं न चला सकूँगी, तो मुझे कितना लज्जित होना ड़ेगा।

इस तरह बात करते-करते दोनों बहिनें सोयीं. कोई दो बजे रात को बच्ची रोयी, । निर्मला की नींद खुली। देखा तो कृष्णा की चारपाई खाली पड़ी थी। निर्मला को ाश्चर्य हुआ कि इतनी रात गए, कृष्णा कहाँ चली गई। शायद पानी वानी पीने गयी हो, ार पानी तो सिरहाने रखा हुआ है, फिर कहाँ गयी है ? उसने दो-तीन बार उसका

नाम लेकर आवाज दी; पर कृष्णा का पता न था। तब तो निर्मला घबड़ा उठी। उसके मन में भाँति-भाँति की शंकाएँ होने लगीं। सहसा उसे ख्याल आया कि शायद अपने कमरे में न चली गई हो। बच्ची सो गई, तो वह उठकर कृष्णा के कमरे के द्वार पर आयी। उसका अनुमान ठीक था, कृष्णा अपने कमरे में थी। सारा घर सो रहा था और वह बैठी चर्खा चला रही थी। इतनी तन्मयता से शायद उसने थिएटर भी न देखा होगा। निर्मला दंग रह गई और अन्दर जाकर बोली—क्या कर रही है रे! यह चर्खा चलाने का समय है ?

कृष्णा चौंक कर उठ बैठी और संकोच से सिर झुकाकर बोली—तुम्हारी नींद कैसे खुल गई ? पानी-वानी तो मैंने रख दिया था।

निर्मला—मैं कहती हूँ, दिन को तुझे समय नहीं मिलता, जो पिछली रात को चर्खा लेकर बैठी है ?

कृष्णा—दिन को फुरसत नहीं मिलती।

निर्मला—(सूत देखकर) सूत तो बहुत महीन है।

कृष्णा—कहाँ बहिन, यह सूत तो मोटा है। मैं बारीक सूत कातकर उनके लिए साफा बनाना चाहती हूँ। यही मेरा उपहार होगा।

निर्मला—बात तो तूने खूब सोची है। इससे अधिक मूल्यवान वस्तु उनकी दृष्टि में और क्या होगी ? अच्छा उठ इस वक्त, कल कातना। कहीं बीमार पड़ जायगी, तो यह सब धरा रह जायगा।

कृष्णा—नहीं मेरी बहिन; तुम चलकर सोओ, मैं अभी आती हूँ।

निर्मला ने अधिक आग्रह नहीं किया—लेटने चली गई। मगर किसी तरह नींद न आई। कृष्णा की उत्सुकता और यह उमंग देखकर उसका हृदय किसी अलक्षित आकांक्षा से आन्दोलित हो उठा। ओह ! इस समय इसका हृदय कितना प्रफुल्लित हो रहा है। अनुराग ने इसे कितना उन्मत्त कर रखा है। तब उसे अपने विवाह की याद आई। जिस दिन तिलक गया था, उसी दिन से उसकी सारी चंचलता, सारी सजीवता विदा हो गई थी। अपनी कोठरी में बैठी वह अपनी किस्मत को रोती थी और ईश्वर से विनय करती थी कि प्राण निकल जाएं। अपराधी जैसे दण्ड की प्रतीक्षा करता है, उसी भाँति वह विवाह की प्रतीक्षा करती थी—उस विवाह की, जिसमें उसके जीवन की सारी अभिलाषाएँ विलीन हो जाएँगी, जब मण्डप के नीचे बने हुए एक हवन-कुण्ड में उसकी आशाएँ जलकर भस्म हो जाएँगी।

: १६ :

महीना कटते देर न लगी। विवाह का शुभ मुहूर्त आ पहुँचा। मेहमानों से घर भर गया। मुंशी तोताराम एक दिन पहले घर से आ गए और उसके साथ निर्मला की सहेली भी आयी। निर्मला ने तो बहुत आग्रह न किया था—वह खुद ही आने को उत्सुक थी। निर्मला की सबसे बड़ी उत्कण्ठा यही थी कि वर के बड़े भाई के दर्शन करूंगी; और हो सका तो उनकी सुबुद्धि पर धन्यवाद दूंगी।

सुधा ने हंसकर कहा—तुम उनसे बोल सकोगी ?

निर्मला—क्यों, बोलने में क्या हानि है ? अब तो दूसरा ही सम्बन्ध हो गया। और न बोल सकूँगी तो तुम तो हो ही।

सुधा—न भाई, मुझसे न होगा। मैं पराये मर्द से नहीं बोल सकती। न जाने कैसे आदमी हों।

निर्मला—आदमी तो बुरे नहीं हैं, और तुम्हें उनसे विवाह तो करना नहीं। जरा-सा बोलने में क्या हानि ? डॉक्टर साहब यहाँ होते, तो मैं तुम्हें आज्ञा दिला देती।

सुधा—जो लोग हृदय के उदार होते हैं, क्या चरित्र के भी अच्छे होते हैं ? परायी स्त्री को घूरने में तो किसी मर्द को संकोच नहीं होता।

निर्मला—अच्छा, न बोलना, मैं ही बातें कर लूंगी। घूर लेंगे जितना उनसे घूरते बनेगा, बस अब तो राजी हुई ?

इतने में कृष्णा आकर बैठ गई। निर्मला ने मुस्कराकर कहा—सच बता कृष्णा, मन इस वक्त क्यों उचाट हो रहा है ?

कृष्णा—जीजाजी बुला रहे हैं, पहले जाकर सुन आओ, पीछे गप्पें लगाना। बहुत विगड़ रहे हैं।

निर्मला—क्या है; तूने कुछ पुछा नहीं ?

कृष्णा—कुछ बीमार से मालूम होते हैं। बहुत दुबले हो गए हैं।

निर्मला—तो जरा बैठकर उनका मन बहला देती। यहाँ दौड़ी क्यों चली आयी ? यह कहो, ईश्वर ने कृपा की, नहीं तो ऐसा ही पुरुष तुझे भी मिलता। जरा बैठकर बातें करो। बुड्ढे बात बड़ी लच्छेदार करते हैं। जवान इतने डींगियल नहीं होते।

कृष्णा—नहीं बहिन, तुम जाओ, मुझसे तो वहाँ नहीं बैठा जाता।

निर्मला चली गई, तो सुधा ने कृष्णा से कहा—अब तो बारात आ गई होगी। द्वार-पूजा क्यों नहीं होती ?

कृष्णा—क्या जाने बहिन, शास्त्रीजी सामान इकट्ठा कर रहे हैं।

सुधा—सुना है, दूल्हा की भावज बड़े कड़े स्वभाव की स्त्री हैं !

कृष्णा—कैसे मालूम?

सुधा—मैंने सुना है, इसलिए बतलाए देती हूं। वहां बड़े मान से रहना होगा।

कृष्णा—मेरी झगड़ने की आदत नहीं। जब मेरी तरफ से कोई शिकायत ही न पाएंगी, तो क्या अनायास ही बिगड़ेंगी?

सुधा—हां, सुना तो ऐसा ही है। झूठ-मूठ लड़ा करती हैं।

कृष्णा—मैं तो सौ बात की एक बात जानती हूं—नम्रता पत्थर को भी मोम कर देती है।

सहसा शोर मचा। बारात आ रही है। दोनों रमणियां खिड़कियों के सामने आ बैठीं। एक क्षण में निर्मला भी आ पहुंची।

वर के बड़े भाई को देखने की उसे बड़ी उत्सुकता हो रही थी।

सुधा ने कहा—कैसे पता चलेगा कि बड़े भाई कौन हैं?

निर्मला—शर्माजी से पूछूं तो मालूम हो। हाथी पर तो कृष्णा के ससुर महाशय हैं। अच्छा, डॉक्टर साहब यहां कैसे आ पहुंचे! घोड़े पर क्या हैं, देखती नहीं हो?

सुधा—हां, हैं तो वही।

निर्मला—इन लोगों से मित्रता होगी। कोई सम्बन्ध तो नहीं है?

सुधा—अब भेंट हो तो पूछूं, मुझे तो कुछ नहीं मालूम।

निर्मला—पालकी में जो महाशय बैठे हुए हैं, वह तो दूल्हा के भाई जैसे नहीं दीखते।

सुधा—बिलकुल नहीं। मालूम होता है, सारी देह में पेट-ही-पेट है।

निर्मला—दूसरे हाथी पर कौन बैठा हुआ है, समझ में नहीं आता।

सुधा—कोई हो, दूल्हा का भाई नहीं हो सकता। उसकी उम्र नहीं देखते हो, चालीस के ऊपर होगी।

निर्मला—शर्माजी तो इस वक्त द्वार-पूजा की फिक्र में हैं नहीं तो पूछती।

संयोग से नाई आ गया। संदूक की कुंजियां निर्मला के पास थीं। इस वक्त द्वारचार के लिए कुछ रुपयों की जरूरत थी, माता ने भेजा था। यह नाई भी पंडित मोटेराम के साथ तिलक लेकर गया था।

निर्मला ने कहा—क्या अभी रुपये चाहिए?

नाई—हां बहिन, चलकर दे दीजिए।

निर्मला—अच्छा चलती हूं। पहले यह बता, तू दूल्हा के बड़े भाई को पहचानता है?

नाई—पहचानता काहे नहीं, यह क्या सामने हैं।

निर्मला—कहाँ, मैं तो नहीं देखती ?

नाई—अरे, वह क्या घोड़े पर सवार हैं। वही तो हैं।

निर्मला ने चकित होकर कहा—क्या कहता है, घोड़े पर दूल्हा के भाई हैं ! पहचानता है या अटकल से ही कह रहा है ?

नाई—अरे बहिनजी, क्या इतना भूल जाऊँगा ? अभी जलपान का सामान दिये चला आ रहा हूँ।

निर्मला—अरे, यह तो डॉक्टर साहब हैं; मेरे पड़ोस में रहते हैं।

निर्मला ने सुधा की ओर देखकर कहा—सुनती हो बहिन, इसकी बातें ?

सुधा ने हँसी रोककर कहा—झूठ बोलता है।

नाई—अच्छा साहब झूठ ही सही, अब बड़ों के मुँह कौन लगे ? अभी शास्त्रीजी से पुछवा दूंगा, तब मानिएगा ?

नाई को आने में देर हुई, तो मोटेराम खुद आगन मे आकर शोर मचाने लगे—इस घर की मर्यादा ईश्वर ही के हाथ है ! नाई घण्टे-भर से आया हुआ है और अभी तक रुपये नहीं मिले।

निर्मला—जरा यहाँ चले आइएगा शास्त्रीजी ! कितने रुपये दरकार हैं, निकाल दूँ।

शास्त्रीजी भुन-भुनाते और जोर-जोर से हाँफते हुए ऊपर आये, और एक लम्बी साँस लेकर बोले—क्या है ? यह बातों का समय नहीं है, जल्दी से रुपये निकाल दो।

निर्मला—लीजिए, निकाल तो रही हूँ, अब क्या मुँह के बल गिर पड़ूं ? पहले यह बताइए कि दूल्हा के बड़े भाई कौन हैं ?

शास्त्रीजी—राम राम ! इतनी-सी बात के लिए मुझे आकाश पर लटका दिया। नाई क्या न पहचान सकता था ?

निर्मला—नाई तो कहता है कि वह घोड़े पर सवार हैं, वही हैं?

शास्त्रीजी—तो फिर किसे बता दें ! वही तो हैं ही।

नाई—घड़ी-भर से कह रहा हूँ, पर बहिनजी मानती ही नहीं।

निर्मला ने सुधा की ओर स्नेह, ममता, विनोद और कृत्रिम तिरस्कार की दृष्टि से देखकर कहा—अच्छा, तुम्हीं अब तक मेरे साथ यह त्रियाचरित्र खेल रही थीं ! मैं जानती तो तुम्हें यहाँ बुलाती ही नहीं। ओफ्फोह ! बड़ा गहरा पेट है तुम्हारा ! तुम महीनों से मेरे साथ शरारत करती चली आती हो, और कभी भूल से इस विषय का एक शब्द तुम्हारे मुँह से नहीं निकला। मैं तो दो-चार दिन ही में उबल पड़ती।

सुधा—तुम्हें मालूम हो जाता, तो मेरे यहाँ आती ही क्यों ?

निर्मला—गजब, रे गजब, मैं डॉक्टर साहब से कई बार बातें कर चुकी हूँ।

तुम्हारे ऊपर यह सारा पाप पड़ेगा। देखी कृष्णा, तूने अपनी चेठानी की शरारत ! यह ऐसी मायाविनी है, इनसे डरती रहना।

कृष्णा—मैं तो ऐसी देवी के चरण धो-धोकर चढ़ाऊँगी। धन्य भाग कि इनके दर्शन हुए।

निर्मला—अब समझ गई। रुपये भी तुम्हीं ने भेजवाए होंगे। अब सिर हिलाया तो सच कहती हूँ, मार बैठूंगी।

सुधा—अपने घर बुलाकर मेहमान का अपमान नहीं किया जाता।

निर्मला—देखो तो अभी कैसी-कैसी खबर लेती हूं। मैंने तुम्हारा मान रखने को जरा-सा लिख दिया था, और तुम सचमुच आ पहुँचीं। भला वहाँ वाले क्या कहते होंगे ?

सुधा—सबसे कहकर आयी हूँ।

निर्मला—अब तुम्हारे पास कभी न आऊँगी। इतना तो इशारा कर देतीं कि डॉक्टर साहब से परदा रखना।

सुधा—उनके देख लेने से ही कौन बुराई हो गई ? न देखते तो अपनी किस्मत को रोते कैसे ? जानते कैसे कि लोभ में पड़कर कैसी चीज खो दी ? अब तो तुम्हें देखकर लालाजी हाथ मलकर रह जाते हैं। मुंह से कुछ नहीं कहते, पर मन में अपनी भूल पर पछताते हैं।

निर्मला—अब तुम्हारे घर कभी न आऊँगी।

सुधा—अब पिंड नहीं छूट सकता। मैंने कौन तुम्हारे घर की राह नहीं देखी है।

द्वार-पूजा समाप्त हो चुकी थी। मेहमान लोग बैठे जलपान कर रहे थे। मुंशीजी के बगल में डॉक्टर सिन्हा बैठे थे। निर्मला ने कोठे पर चिक की आड़ से उन्हें देखा और कलेजा थाम कर रह गई। एक आरोग्य यौवन और प्रतिभा का देवता था; पर दूसरा . इस विषय में कुछ न कहना उचित है।

निर्मला ने डॉक्टर साहब को सैकड़ों बार देखा था, पर आज उसके हृदय में जो विचार उठे, वे कभी न उठे थे। बार-बार जी यही चाहता था कि बुलाकर खूब फटकारूँ, ऐसे-ऐसे ताने मारूँ कि वह भी याद करें; रुला-रुलाकर छोड़ूं, मगर रहम करके रह जाती थी। बारात जनवासे चली गयी थी। भोजन की तैयारी हो रही थी। निर्मला भोजन के थाल चुनने में व्यस्त थी। सहसा महरी ने आकर कहा—बिट्टो, तुम्हें सुधा रानी बुला रही हैं। तुम्हारे कमरे में बैठी हैं।

निर्मला ने थाल छोड़ दिये और घबरायी हुई सुधा के पास आयी मगर अन्दर कदम रखते ही ठिठक गई—डॉक्टर सिन्हा खड़े थे।

सुधा ने मुसकराकर कहा—लो, बहिन, बुला दिया। अब जितना चाहो,

फटकारो। मैं दरवाजा रोके खड़ी हूं, भाग नहीं सकते।

डॉक्टर साहब ने गम्भीर भाव से कहा—भागता कौन है? यहाँ तो सिर झुकाए खड़ा हूँ।

निर्मला ने हाथ जोड़कर कहा—इसी तरह सदा कृपादृष्टि रखिए, भूल न जाइएगा यही मेरी विनय है।

: १७ :

कृष्णा के विवाह के बाद सुधा चली गई। लेकिन निर्मला मैके में ही रह गई। वकील साहब बारबार लिखते थे, पर वह न जाती थी। जाने को उसका जी न चाहता था। वहाँ कोई ऐसी चीज न थी, जो उसे खींच ले जाए। यहाँ माता की सेवा छोटे भाइयों की देखभाल में उसका समय बड़े आनन्द से कट जाता था। वकील साहब खुद आते, तो शायद वह जाने पर राजी हो जाती, लेकिन इस विवाह में मुहल्ले की लड़कियों ने उनकी वह दुर्गत की थी कि बेचारे आने का नाम ही न लेते थे। सुधा ने भी कई बार पत्र लिखा, पर निर्मला ने उससे भी हीले-हवाले किए। आखिर एक दिन सुधा ने नौकर को साथ लिया और आ धमकी।

जब दोनों गले मिल चुकीं, तो सुधा ने कहा—तुम्हें तो वहाँ जाते मानो डर लगता है।

निर्मला—हाँ बहिन, डर तो लगता है। ब्याह की गयी, तीन साल में आई अबकी तो वहाँ उम्र ही खतम हो जायगी। फिर कौन बुलाता है और कौन आता है ?

सुधा—आने को क्या हुआ, जब जी चाहे, चली आना। वहाँ वकील साहब बहुत बेचैन हो गए हैं।

निर्मला—बहुत बेचैन, रात को शायद नींद न आती हो !

सुधा—बहिन, तुम्हारा कलेजा पत्थर का है। उनकी दशा देखकर तरस आता है। कहते थे, घर में कोई पूछनेवाला नहीं, न कोई लड़का, न बाला, किससे जी बहलाएँ ? जब से दूसरे मकान में उठ आये हैं, बहुत दुःखी रहते हैं।

निर्मला—लड़के तो ईश्वर के दिये दो-दो हैं।

सुधा—उन दोनों की बड़ी शिकायत करते थे। जियाराम तो अब बात ही नहीं सुनता—तुरकी-बतुरकी जवाब देता है। रहा छोटा, वह भी उसी के कहने में है। बेचारे बड़े लड़के को याद करके रोया करते हैं।

निर्मला—जियाराम तो शरीर न था; वह बदमाशी कब से सीख गया ? मेरी तो कोई बात न टालता था—इशारे पर काम करता था।

सुधा—क्या जाने बहिन ! सुना, कहता है आप ने मैया को जहर देकर मार डाला—आप हत्यारे हैं। कई बार उनसे विवाह करने के लिए ताने दे चुका है। ऐसी-ऐसी बातें कहता है कि वकील साहब रो पड़ते हैं। अरे, और तो क्या कहूं, एक दिन पत्थर उठा कर मारने दौड़ा था।

निर्मला ने गम्भीर चिन्ता में पड़कर कहा—यह लड़का तो बड़ा शैतान निकला। उससे यह किसने कहा कि उसकी माई को उन्होंने जहर दे दिया है!

सुधा—यह तुम्हीं से ठीक होगा।

निर्मला को यह नई चिन्ता पैदा हुई। अगर जिया का यही रंग है—अपने बाप से लड़ने पर तैयार रहता है, तो मुझसे क्यों दबने लगा ? वह रात को बड़ी देर तक इसी फिक्र में डूबी रही। मंसाराम की आज उसे बहुत याद आई। उसके साथ जिंदगी आराम से कट जाती। इस लड़के का जब अपने पिता के सामने ही यह हाल है, तो उनके पीछे उसके साथ कैसे निर्वाह होगा ! घर हाथ से निकल ही गया। कुछ-न-कुछ कर्ज अभी सिर पर होगा ही। आमदनी का यह हाल ! ईश्वर ही बेड़ा पार लगाएंगे। आज पहली बार निर्मला को बच्ची की फिक्र पैदा हुई। इस बेचारी का न जाने क्या हाल होगा ? ईश्वर ने यह विपत्ति सिर पर डाल दी। मुझे तो इसकी जरूरत ही न थी। जन्म ही लेना था, तो किसी भाग्यवान के घर जन्म लेती। बच्ची उसकी छाती से लिपटी हुई सो रही थी। माता ने उसको और भी चिपटा लिया, मानो कोई उसके हाथ से उसे छीने लिये जाता है।

निर्मला के पास ही सुधा की चारपाई थी। निर्मला तो चिन्ता-सागर में गोता खा रही थी और सुधा मीठी नींद का आनन्द उठा रही थी। क्या उसे अपने बालक की फिक्र सताती है ? मृत्यु तो बूढ़े और जवान का भेद नहीं रखती, फिर सुधा को कोई चिन्ता क्यों नहीं सताती ? उसे तो कभी भविष्य की चिन्ता से उदास नहीं देखा।

सहसा सुधा की नींद खुल गई। उसने निर्मला को अभी तक जागते देखा, तो बोली—अरे, अभी तक सोई नहीं ?

निर्मला—नींद ही नहीं आती।

सुधा—आंखें बंद कर लो, आप ही नींद आ जायगी। मैं तो चारपाई पर आते ही मर-सी जाती हूं। वह जगाते भी हैं, तो खबर नहीं होती। न जाने मुझे क्यों इतनी नींद आती है ? शायद कोई रोग है।

निर्मला—हां, बड़ा भारी रोग है। इसे राज-रोग कहते हैं। डॉक्टर साहब से कहो दवा शुरू कर दें।

सुधा—तो आखिर जागकर क्या सोचूं । कभी-कभी मैके की याद आ जाती है, तो

उस दिन जरा देर में आँख लगती है।

निर्मला—डॉक्टर साहब की याद नहीं आती ?

सुधा—कभी नहीं, उनकी याद क्यों आए ? जानती हूँ कि टेनिस खेलकर आये होंगे, खाना खाया होगा और आराम से लेटे होंगे।

निर्मला—लो, सोहन भी जाग गया ! जब तुम जाग गईं, तो भला वह क्यों सोने लगा ?

सुधा—हाँ बहिन, इसकी अजीब आदत है। मेरे साथ सोता और मेरे ही साथ जागता है। उस जन्म का कोई तपस्वी है। देखो, इसके माथे पर तिलक का कैसा निशान है। बाँहों पर ऐसे ही निशान हैं। जरुर कोई तपस्वी है।

निर्मला—तपस्वी लोग तो चन्दन-तिलक नहीं लगाते। उस जन्म का कोई धूर्त पुजारी होगा। क्यों रे, तू कहाँ का पुजारी था ? बता ?

सुधा—इसका ब्याह मैं बच्ची से करुँगी।

निर्मला—चलो बहिन, गाली देती हो। बहिन से भी भाई का ब्याह होता है।

सुधा—मैं तो करूँगी, चाहे कोई कुछ कहे। ऐसी सुन्दर बहू और कहाँ पाऊँगी ? जरा देख तो बहिन, इसकी देह कुछ गर्म है या मुझे ही मालूम होती है।

निर्मला ने सोहन का माथा छूकर कहा—नहीं, नहीं, देह गर्म है। यह ज्वर कब आ गया ? दूध तो पी रहा है न ?

सुधा—अभी सोया था, तब तो देह ठंडी थी। शायद सर्दी लग गई। उढ़ाकर सुलाए देती हूँ। सवेरे तक ठीक हो जायगा।

सवेरा हुआ तो सोहन की हालत और भी खराब हो गई। उसकी नाक बहने लगी और बुखार भी तेज हो गया। आँखें चढ़ गईं और सिर झुक गया। न वह हाथ-पैर हिलाता था, न हँसता-बोलता था, बस चुपचाप पड़ा था। ऐसा मालूम होता था कि उसे इस वक्त किसी का बोलना अच्छा नहीं लगता। कुछ खाँसी भी आने लगी। अब तो सुधा घबरायी। निर्मला की भी राय हुई कि डॉक्टर साहब को बुलाया जाए, लेकिन उसकी बूढ़ी माता ने कहा—डॉक्टर-हकीम का यहाँ कुछ काम नहीं। साफ तो देख रही हूँ कि बच्चे को नजर लग गई है। भला, डॉक्टर क्या करेगा?

सुधा—अम्माँजी, भला यहाँ नजर कौन लगा देगा ? अभी तक तो बाहर कहीं गया भी नहीं।

माता—नजर कोई लगाता नहीं बेटी, किसी-किसी आदमी की दीठ बुरी होती है, आप-ही-आप लग जाती है। कभी-कभी माँ-बाप तक की नजर लग जाती है। मैं तो इसे

हुमकते देखकर डरी थी कि कुछ-न-कुछ अनिष्ट होने वाला है। आँखें नहीं देखती हो, कितनी चढ़ गइ हैं। यही नजर की सबसे बड़ी पहचान है।

बुढ़िया महरी और पड़ोस की पंडिताइन ने इस कथन का अनुमोदन कर दिया। बस महँगू ने आकर बच्चे का मुँह देखा और हँसकर बोला—मालकिन, यह दीठ है, और कुछ नहीं। जरा पतली-पतली तीलियाँ तो मँगवा दीजिए। भगवान् ने चहा, तो संझा तक बच्चा हँसने लगेगा।

सरकण्डे के पाँच टुकड़े लाए गए। महँगू ने उन्हें बराबर करके एक डोरे से बाँध दिया और कुछ बुदबुदाकर उसी पीले हाथों से पाँच बार सोहन का सिर सहलाया। अब जो देखा, तो पाँचों तीलियाँ छोटी-बड़ी हो गई थीं। सब स्त्रियाँ कौतुक देखकर दंग रह गईं। अब नजर में किसे सन्देह हो सकता था ? महँगू ने फिर बच्चे को तीलियों से सहलाना शुरू किया। अबकी तीलियाँ बराबर हो गईं, केवल थोड़ा-सा अन्तर रह गया। यह सब इस बात का प्रमाण था कि नजर का असर अब थोड़ा-सा रह गया है। महँगू सबको दिलासा देकर शाम को फिर आने का वायदा करके चला गया।

बालक की दशा दिन को और भी खराब हो गई। खाँसी का जोर हो गया। शाम के समय महँगू ने आकर फिर तीलियों का तमाशा किया। इस वक्त पाँचों तीलिया बराबर निकलीं. स्त्रियाँ निश्चिन्त हो गईं। लेकिन सोहन को सारी रात खाँसते गुजरी। यहाँ तक कि कई बार उसकी आँखें उलट गईं। सुधा और निर्मला दोनों ने बैठकर सवेरा किया। खैर, रात कुशल से कट गई। अब बूढ़ा माताजी नया रंग लायीं। महँगू नजर न उतार सका, इसलिए अब किसी मौलवी से फूँक डलवाना जरूरी हो गया। सुधा फिर भी अपने पति को सूचना न दे सकी। महरी सोहन को एक चादर से लपेटकर मस्जिद में ले गई और फूंक डलवा लायी। शाम को भी फूंक छोड़ी गई, पर सोहन ने सिर न उठाया। रात आ गई। सुधा ने मन में निश्चय किया कि रात कुशल से बीतेगी, तो प्रातःकाल ही पति को तार दूँगी।

लेकिन रात कुशल से न बीतने पायी। आधी रात जाते-जाते बच्चा हाथ से निकल गया। सुधा की जीवन-सम्पत्ति देखते-देखते उसके हाथों से छिन गई।

वही जिसके विवाह का दो दिन पहले विनोद हो रहा था, आज सारे घर को रुला रहा है। जिसकी भोली-भोली सूरत देखकर माता की छाती फूल उठती थी, उसी को देखकर आज माता की छाती फटी जाती है। सारा घर सुधा को समझाता था, पर उसके आँसू न थमते थे, सब्र न होता था। सबसे बड़ा दुःख इस बात का था कि पति को कौन मुँह दिखलाऊँगी। उन्हें खबर तक न थी।

रात को ही तार दिया गया और दूसरे दिन डॉक्टर सिन्हा नौ बजते-बजते मोटर

पर आ पहुँचे। सुधा ने उनके आने की खबर पायी, तो और भी फूट-फूट कर रोने लगी। बालक की जल-क्रिया हुई ! डॉक्टर साहब कई बार अन्दर आये, पर सुधा उनके पास न गयी। उनके सामने कैसे जाए ? कौन मुख दिखाए ? उसने अपनी नादानी से उनके जीवन का रत्न छीनकर दरिया में डाल दिया। अब उनके पास जाते उसकी छाती के टुकड़े-टुकड़े हुए जाते थे। बालक को उसकी गोद में देखकर पति की आँखें चमक उठती थीं। बालक ठुमककर पिता की गोद में चला जाता था। माता फिर बुलाती, तो पिता की छाती से चिमट जाता था, और लाख चुमकारने-दुलारने पर भी बाप की गोद न छोड़ता था। तब माँ कहती थी, बड़ा मतलबी है ! आज वह किसे गोद में लेकर पति के पास जायगी ? उसकी सूनी गोद देखकर कहीं वह चिल्लाकर रो न पड़ें। पति के सम्मुख जाने की अपेक्षा उसे मर जाना कहीं आसान जान पड़ता था। वह एक क्षण के लिए निर्मला को न छोड़ती थी कि कहीं पति से सामना न हो जाए।

निर्मला ने कहा—बहिन, अब तो जो होना था हो चुका; अब उनसे कब तक भागती फिरोगी ? रात ही को चले जायेंगे, अम्माँ कहती थीं।

सुधा ने सजल नेत्रों से ताकते हुए कहा—कौन मुँह लेकर उनके पास जाऊँ ? मुझे डर लग रहा है कि उनके सामने जाते ही मेरे पैर न थरनि लगें और मैं गिर न पड़ूँ।

निर्मला—चलो, मैं तुम्हारे साथ चलती हूं। तुम्हें सँभाले रहूंगी।

सुधा—मुझे छोड़कर भाग तो न जाओगी ?

निर्मला—नहीं-नहीं, भागूँगी नहीं।

सुधा—मेरा कलेजा तो अभी से उमड़ा आता है। मैं इतना घोर वज्रपात होने पर भी बैठी हूं, मुझे यही आश्चर्य हो रहा है। सोहन को वह बहुत प्यार करते थे बहिन ! न जाने उनके चित्त की क्या दशा होगी। मैं उन्हें ढाढ़स क्या दूँगी, आप ही रोती रहूंगी। क्या रात ही को चले जायेंगे ?

निर्मला—हाँ, अम्माँजी तो कहती थीं, छुट्टी नहीं ली है।

दोनों सहेलियाँ मर्दाने की ओर चलीं; लेकिन कमरे के द्वार पर पहुँचकर सुधा ने निर्मला को विदा कर दिया। अकेली कमरे में दाखिल हुई।

डॉक्टर साहब घबरा रहे थे कि न जाने सुधा की क्या दशा हो रही है। भाँति-भाँति की शंकाएँ मन में आ रही थीं। जाने को तैयार तो बैठे थे, लेकिन जी न चाहता था। जीवन शून्य-सा मालूम होता था। मन-ही-मन कुढ़ रहे थे। अगर ईश्वर को इतनी जल्दी यह पदार्थ देकर छीन लेना था, तो दिया ही क्यों था ? उन्होंने तो कभी सन्तान के लिए ईश्वर से प्रार्थना भी न की थी। वह आजन्म निःसन्तान रह सकते थे, पर सन्तान पाकर उससे वंचित हो जाना उन्हें असह्य जान पड़ता था। क्या सचमुच मनुष्य ईश्वर

, मैं तो एकाध झपकी भी लेती थी; उसकी आँखें
पर आ पहुँचे। सुधा ने उनके आने टहलती रहती थी। उसके एहसान कभी न भूलूँगी।
बालक की जल-क्रिया हुई ! डॉक्
गयी। उनके सामने कैसे जाने का मौका न था। सिविल सर्जन शिकार खेलने गया हुआ
जीवन का रत्न छीनकर
टुकड़े-टुकड़े हुए जाते, हमेशा शिकार ही खेला करते हैं ?
थीं। बालक ठुमक राजाओं का और काम ही क्या है ?
छाती से चिमट मैं तो आज न जाने दूँगी।
था। तब मास्टर—जी तो मेरा भी नहीं चाहता।
जायगी-तो मत जाओ, तार दे दो। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। निर्मला को भी लेती
की ूँगी।

सुधा यहाँ से लौटी, तो उसके हृदय का बोझा हलका हो गया था। पति की प्रेमपूर्ण कोमल वाणी ने उसके सारे शोक और संताप का हरण कर लिया था। प्रेम में असीम विश्वास है, असीम धैर्य है, असीम बल है।

: १८ :

जब हमारे ऊपर कोई विपत्ति आ पड़ती है, तो उससे हमें केवल दुःख ही नहीं होता—हमें दूसरों के ताने भी सहने पड़ते हैं। जनता को हमारे ऊपर टिप्पणियाँ कसने का वह सुअवसर मिल जाता है, जिसके लिए वह हमेशा बेचैन रहती है। मंसाराम क्या मरा, मानो समाज को उन पर आवाज़ें कसने का बहाना मिल गया। भीतर की बातें कौन जाने, प्रत्यक्ष बात यही थी कि यह सब सौतेली माँ की करतूत है। चारों तरफ यही चर्चा थी, ईश्वर न करे, लड़कों को सौतेली माँ से पाला पड़े। जिसे अपना बना-बनाया घर उजाड़ना हो—अपने प्यारे बच्चों की गर्दन पर छुरी फेरवानी हो, वह बच्चों के रहते हुए अपना दूसरा ब्याह करे। ऐसा कभी नहीं देखा कि सौत के आने पर घर तबाह न हो गया हो। वही जो बच्चों पर जान देता था, सौत आते ही उन्हीं बच्चों का दुश्मन हो जाता है—उसकी मति ही बदल जाती है। ऐसी देवी ने जन्म ही नहीं लिया, जिसने सौत के बच्चों को अपना समझा हो।

मुश्किल यह थी कि लोग इन टिप्पणियों पर सन्तुष्ट न होते थे। कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हें अब जियाराम और सियाराम से विशेष स्नेह हो गया था। वे दोनों बालकों से बड़ी सहानुभूति प्रकट करते; यहाँ तक कि दो-एक महिलाएँ तो उनकी माता के शील और स्वभाव को याद कर आँसू बहाने लगती थीं। हाय-हाय ! बेचारी क्या जानती थी कि

उसके मरते ही उसके लाड़लों की यह दुर्दशा होगी। अब दूध-मक्खन काहे को मिलता होगा।

जियाराम कहता—मिलता क्यों नहीं?

महिला कहती—मिलता है! अरे बेटा, मिलना भी कई तरह का होता है। पानीवाला दूध टके सेर मँगाकर रख दिया, पियो चाहे न पियो—कौन पूछता है? नहीं तो बेचारी नौकर से दूध दुहवाकर मँगवाती थी; वह तो चेहरा ही कहे देता है। दूध की सूरत छिपी नहीं रहती—वह सूरत नहीं रही।

जियाराम को अपनी अम्माँ के समय के दूध का स्वाद तो याद था नहीं, जो इस आक्षेप का उत्तर देता और न उस समय की अपनी सूरत ही याद थी—चुप रह जाता। इन शुभाकांक्षाओं का असर भी पड़ना स्वाभाविक था। जियाराम को अपने घरवालों से चिढ़ होती जाती थी! मुंशीजी मकान नीलाम हो जाने के बाद दूसरे घर में उठ आये तो किराए की फिक्र हुई। निर्मला ने मक्खन बन्द कर दिया। वह आमदनी ही न रही तो खर्च कैसे रहता? दोनों कहार अलग कर दिए गए। जियाराम को यह कतर-ब्योंत बुरी लगती थी। जब निर्मला मैके चली गयी, तो मुंशीजी ने दूध भी बन्द कर दिया। नवजात कन्या की चिन्ता अभी से उनके सिर पर सवार हो गई थी।

जियाराम ने बिगड़कर कहा—दूध बन्द करने से आपका महल बन रहा होगा, भोजन भी बन्द कर दीजिए!

मुंशीजी—दूध पीने का शौक है तो जाकर दुहा क्यों नहीं लाते? पानी के पैसे तो मुझसे न दिए जाएँगे।

जियाराम—मैं दूध दुहाने जाऊँ, कोई स्कूल का लड़का देख ले तब?

मुंशीजी—तब कुछ नहीं। कह देना, अपने लिए दूध लिए जाता हूँ। दूध लाना कोई चोरी नहीं है।

जियाराम—चोरी नहीं है! आप ही को कोई दूध लाते देख ले, तो आपको शर्म न आएगी?

मुंशीजी—बिलकुल नहीं। मैंने तो इन्हीं हाथों से पानी खींचा है, अनाज की गठरियाँ लाया हूँ। मेरे बाप लखपती नहीं थे।

जियाराम—मेरे बाप तो गरीब नहीं हैं, मैं दूध क्यों दुहाऊँ? आखिर आपने कहारों को क्यों जवाब दे दिया?

मुंशीजी—क्या तुम्हें इतना भी नहीं सूझता कि मेरी आमदनी अब पहले सी नहीं रही! इतने तो नादान नहीं हो?

जियाराम—आखिर आपकी आमदनी क्यों कम हो गई?

मुंशीजी—जब तुम्हें अकल नहीं है, तो क्या समझाऊँ ? यहाँ जिन्दगी से तंग आ गया हूँ, मुकदमें कौन ले, और ले तो तैयार कौन करे ? वह दिल ही नहीं रहा। अब तो जिन्दगी के दिन पूरे कर रहा हूं। सारे अरमान लल्लू के साथ चले गए।

जियाराम—अपने ही हाथों न !

मुंशीजी ने चीखकर कहा—अरे अहमक ! यह ईश्वर की मर्जी थी। अपने हाथों कोई अपना गला काटता है ?

जियाराम—ईश्वर तो आपका विवाह करने न आया था।

मुंशीजी अब जब्त न कर सके, लाल-लाल आँखें निकालकर बोले—क्या तुम आज लड़ने के लिए कमर बाँधकर आए हो ? आखिर किस बिरसे पर ? मेरी रोटियाँ तो नहीं चलाते ? जब इस लायक हो जाना, तो मुझे उपदेश देना। तब मैं सुन लूंगा। अभी तुमको मुझे उपदेश देने का अधिकार नहीं। कुछ दिनों अदब और तमीज सीखो। तुम मेरे सलाहकार नहीं हो कि मैं जो काम करूँ, उसमें तुमसे सलाह लूं। मेरी पैदा की हुई दौलत है, उसे जैसे चाहूं, खर्च कर सकता हूं। तुमको जबान खोलने का हक नहीं है। अगर फिर तुमने मुझसे ऐसी बेअदबी की, तो नतीजा बुरा होगा। जब मंसाराम ऐसा रत्न खोकर मेरे प्राण न निकले, तो तुम्हारे बगैर मैं मर न जाऊँगा, समझ गए ?

यह कड़ी फटकार पाकर भी जियाराम वहाँ से न टला। निःशंक भाव से बोला—तो क्या आप चाहते हैं कि हमें चाहे कितनी ही तकलीफ हो मुंह न खोलें ? मुझसे तो यह न होगा। भाई साहब को अदब और तमीज का जो इनाम मिला, उसकी मुझे भूख नहीं। मुझमें जहर खाकर प्राण देने की हिम्मत नहीं ! ऐसे अदब को दूर से दण्डवत्।

मुंशीजी—तुम्हें ऐसी बातें करते शर्म नहीं आती ?

जियाराम—लड़के अपने बुजुर्गों ही की नकल करते हैं।

मुंशीजी का क्रोध शांत हो गया। जियाराम पर उसका कुछ भी असर न होगा, इसका उन्हें यकीन हो गया। उठकर टहलने चले गए। आज उन्हें सूचना मिल गई कि इस घर का शीघ्र ही सर्वनाश होने वाला है।

उस दिन से पिता और पुत्र में किसी-न-किसी बात पर रोज ही एक झड़प हो जाती। मुंशीजी ज्यों-त्यों तरह देते थे, जियाराम और भी शेर हुआ जाता था। एक दिन जियाराम ने रुक्मिणी से यहाँ तक कह डाला—बाप है, यह समझ कर छोड़ देता हूं, नहीं तो मेरे ऐसे-ऐसे साथी हैं कि चाहूँ तो भरे बाजार में पिटवा दूं। रुक्मिणी ने मुंशीजी से कह दिया। मुंशीजी ने प्रकट रूप से तो बेपरवाही दिखायी, पर उनके मन में शंका समा गई। शाम को सैर करना छोड़ दिया। नई चिन्ता सवार हो गई। इसी भय से निर्मला को

भी न जाने थे कि शैतान उनके साथ भी यही बर्ताव करेगा। जियाराम एक बार इसी बयान कह भी चुका था—देखूँ, अब वो कैसे इस घर में आती है? द्वार ही से न दुत्कार दूँ, तो जियाराम नाम नहीं। बुड्ढे मियाँ कर ही क्या लेंगे? मुंशीजी भी खूब समझ गए थे कि मैं इसका कुछ भी नहीं कर सकता। कोई बाहर का आदमी होता, तो उसे पुलिस और कानून के शिकंजे में कसते। अपने लड़कों को क्या करें? सच कहा है, आदमी हारता है तो अपने लड़कों से।

एक दिन डॉक्टर सिन्हा ने जियाराम को बुलाकर समझाना शुरू किया। जियाराम उनका अदब करता था। चुपचाप बैठा सुनता रहा। जब डॉक्टर साहब ने पूछा, आखिर तुम चाहते क्या हो? तो वह बोला—साफ-साफ कह दूँ न? बुरा तो न मानिएगा।

सिन्हा—नहीं, जो तुम्हारे दिल में हो, साफ-साफ कह दो।

जियाराम—तो सुनिए, जब से भैया मरे हैं, मुझे पिताजी की सूरत देखकर क्रोध आता है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि इन्हीं ने भैया की हत्या की है और एक दिन मौका पाकर हम दोनों भाइयों की हत्या करेंगे। अगर इनकी यह इच्छा न होती, तो ब्याह ही क्यों करते?

डॉक्टर साहब ने बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर कहा—तुम्हारी हत्या करने के लिए उन्हें ब्याह करने की जरूरत थी, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। बिना विवाह किए भी हत्या कर सकते थे।

जियाराम—कभी नहीं! उस वक्त तो उनका दिल ही कुछ और था—हम लोगों पर जान देते थे। अब मुँह नहीं देखना चाहते। उनकी यही इच्छा है कि उन दोनों प्राणियों के सिवा घर में और कोई न रहे। अब जो लड़के होंगे, उनके रास्ते से हम लोगों को हटा देना चाहते हैं, यही उन दोनों आदमियों की दिली मंशा है। हमें तरह-तरह की तकलीफें देकर भगा देना चाहते हैं। इसीलिए आजकल मुकदमे नहीं लेते। हम दोनों भाई आज भाग जायँ, तो फिर देखिए, कैसी बहार होती है।

डॉक्टर—अगर तुम्हें भगाना होता, तो कोई इल्जाम लगाकर घर से निकाल देते।

जिया—इसके लिए पहले ही से तैयार बैठा हूँ।

डॉक्टर—सुनूं, क्या तैयारी की है?

जिया—जब मौका आएगा, देख लीजिएगा।

यह कहकर जियाराम चलता हुआ। डॉक्टर सिन्हा ने बहुत पुकारा, पर उसने फिरकर देखा भी नहीं।

कई दिन के बाद डॉक्टर साहब की जियाराम से फिर मुलाकात हो गई। डॉक्टर सिनेमा के प्रेमी थे और जियाराम की तो जान ही सिनेमा में बसती थी। डॉक्टर

साहब ने सिनेमा पर आलोचना करके जियाराम को बातों में लगा लिया और अपने घर लाए। भोजन का समय आ गया था, दोनों आदमी साथ ही भोजन करने बैठे। जियाराम को वहाँ भोजन बहुत स्वादिष्ट लगा, बोला—मेरे यहाँ तो जब महाराज अलग हुआ, खाने का मजा ही जाता रहा! बुआजी पक्कावैष्णवी भोजन बनाती हैं, जबरदस्ती खा लेता हूँ पर खाने की तरफ ताकने का जी नहीं चाहता।

डॉक्टर—मेरे यहाँ तो जब घर में खाना पकता है, तो इससे कहीं स्वादिष्ट होता है। तुम्हारी बुआजी प्याज-लहसुन न छूती होंगी।

जिया—हाँ, साहब, उबालकर रख देती हैं। लालाजी को इसकी परवाह ही नहीं कि कोई खाता है या नहीं! इसीलिए तो महाराज को अलग किया है। अगर रुपये नहीं हैं, तो रोज गहने कहाँ से बनते हैं?

डॉक्टर—यह बात नहीं है जियाराम, उनकी आमदनी सचमुच बहुत कम हो गई है। तुम उन्हें बहुत दिक करते हो।

जिया—(हँसकर) मैं उन्हें दिक करता हूँ? मुझसे कसम ले लीजिए, जो कभी उनसे बोलता भी हूं। मुझे बदनाम करने का इन्होंने बीड़ा उठा लिया। बेसबब पीछे पड़े रहते हैं। यहाँ तक कि मेरे दोस्तों से भी उन्हें चिढ़ है। आप सोचिए, दोस्तों के बगैर कोई जिन्दा रह सकता है? मैं कोई लुच्चा नहीं हूँ कि लुच्चों की सोहबत रखूं, मगर आप दोस्तों ही के पीछे मुझे रोज सताया करते हैं। कल तो मैंने साफ कह दिया—मेरे दोस्त घर आएँगे, किसी को अच्छा लगे या बुरा। जनाब, कोई हो, हर वक्त की धौंस नहीं सह सकता।

डॉक्टर—मुझे तो भाई, उन पर बड़ी दया आती है। यह जमाना उनके आराम करने का था। एक तो बुढ़ापा, उस पर जवान बेटे का शोक, स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं। ऐसा आदमी क्या कर सकता है? वह जो कुछ थोड़ा-बहुत करते हैं, वही बहुत है। तुम अभी और कुछ नहीं कर सकते, तो कम-से-कम अपने आचरण से तो उन्हें प्रसन्न रख सकते हो। बुड्ढों को प्रसन्न करना बहुत कठिन काम नहीं! यकीन मानो, तुम्हारा हँसकर बोलना ही उन्हें खुश करने के काफी है। इतना पूछने में तुम्हारा क्या खर्च होता है—बाबूजी, आपकी तबीयत कैसी है? वह तुम्हारी यह उदण्डता देख कर मन-ही-मन कुढ़ते रहते हैं। मैं तुमसे सच कहता हूँ, कई बार रो चुके हैं। उन्होंने मान लो शादी करने में गलती की। इसे वह स्वीकार करते हैं, लेकिन तुम अपने कर्त्तव्य से क्यों मुँह मोड़ते हो? वह तुम्हारे पिता हैं, तुम्हें उनकी सेवा करनी चाहिए। एक बात भी मुँह से ऐसी न निकालनी चाहिए जिससे उनका दिल दुखे! उन्हें यह ख्याल करने का मौका क्यों दो कि सब मेरी कमाई खाने वाले हैं, बात पूछने वाला कोई नहीं। मेरी उम्र तुमसे

कहीं ज्यादा है सियाराम, पर आज तक मैंने अपने पिता जी की किसी बात का जवाब नहीं दिया। वह अब भी मुझे डाँटते हैं, सिर झुकाकर सुन लेता हूँ, वह जो कुछ कहते हैं, मेरे भले ही को कहते हैं। माता-पिता से बढ़कर हमारा हितैषी और कौन हो सकता है? उनके ऋण से कौन मुक्त हो सकता है?

सियाराम बैठा रोता रहा। अभी उसके सद्भावों का सम्पूर्णतः लोप न हुआ था। अपनी दुर्जनता उसे साफ नजर आ रही थी। इतनी ग्लानि उसे बहुत दिनों से न आई थी। रोकर डाक्टर साहब से कहा—मैं बहुत ही लज्जित हूँ। दूसरों के बहकाने में आ गया था। अब आप मेरी जरा भी शिकायत न सुनेंगे। आप पिताजी से मेरे अपराध क्षमा करा दीजिए। मैं सचमुच बड़ा अभागा हूँ। उन्हें मैंने बहुत सताया। उनसे कहिए, मेरे अपराध क्षमा दें नहीं मैं मुँह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊँगा—डूब मरूँगा।

डॉक्टर साहब अपनी उपदेश-कुशलता पर फूले न समाए। सियाराम को गले लगाकर विदा किया।

सियाराम घर पहुँचा, तो ग्यारह बज गए। मुंशीजी भोजन करके अभी बाहर आये थे। उसे देखते ही बोले—जानते हो, के बजे हैं? बारह का वक्त है।

सियाराम ने बड़ी नम्रता से कहा—डॉक्टर सिन्हा मिल गए। उनके साथ उनके घर तक चला गया। उन्होंने खाने के लिए जिद की मजबूरन खाना पड़ा। इसी से देर हो गई।

मुंशीजी—डॉक्टर सिन्हा से दुखड़े रोने गये होंगे या और कोई काम था?

सियाराम की नम्रता का चोला सहसा उड़ गया बोला—दुखड़े रोने की मेरी आदत नहीं है।

मुंशीजी—जरा भी नहीं, तुम्हारे मुँह में तो जबान ही नहीं मुझसे जो लोग तुम्हारी बातें करते हैं, वह गढ़ा करते होंगे!

सियाराम—और दिनों की मैं नहीं कहता लेकिन आज डॉक्टर सिन्हा के यहाँ मैंने कोई ऐसी बात नहीं की, जो इस वक्त आपके सामने न कर सकूँ।

मुंशीजी—बड़ी खुशी की बात है। बेहद खुशी हुई! आज से गुरुदीक्षा ले ली है क्या?

सियाराम की नम्रता का एक चतुर्थांश और गायब हो गया। सिर उठाकर बोला—आदमी बिना गुरुदीक्षा लिये हुए भी अपनी बुराइयों पर लज्जित हो सकता है। अपना सुधार करने के लिए गुरुमन्त्र कोई जरूरी चीज नहीं।

मुंशीजी—अब तो लुच्चे जमा न होंगे?

सियाराम—आप किसी को लुच्चा क्यों कहते हैं, जब तक ऐसा कहने के लिए

आपके पास कोई प्रमाण नहीं ?

मुंशीजी—तुम्हारे दोस्त सब लुच्चे-लफंगे हैं। एक भी भला आदमी नहीं। मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि उन्हें मत जमा किया करो, तुमने सुना नहीं। आज मैं आखिरी बार कहे देता हूं कि अगर तुमने उन शोहदों को जमा किया, तो मुझे पुलिस की सहायता लेनी पड़ेगी।

जियाराम की नम्रता का एक चतुर्थांश और गायब हो गया। फड़ककर बोला—अच्छी बात है, पुलिस की सहायता लीजिए। देखें पुलिस क्या करती है ? मेरे दोस्तों में आधे से ज्यादा पुलिस के अफसरों ही के बेटे हैं। जब आप ही मेरा सुधार करने पर तुले हुए हैं, तो मैं व्यर्थ क्यों कष्ट उठाऊँ।

यह कहता हुआ जियाराम अपने कमरे में चला गया और एक क्षण के बाद हारमोनियम के मीठे स्वरों की आवाज आने लगी।

सहृदयता का जलाया हुआ दीपक निर्दय व्यंग के एक झोंके से बुझ गया। अड़ा हुआ घोड़ा चुमकारने से जोर मारने लगा था, पर हण्टर पड़ते ही फिर अड़ गया और गाड़ी पीछे ढकेलने लगा।

: १९ :

अबकी सुधा के साथ निर्मला को आना पड़ा। वह तो मैके में कुछ दिन और रहना चाहती थी, लेकिन शोकातुर सुधा अकेले कैसे रहती ? उसकी खातिर आना ही पड़ा। रुक्मिणी ने भूंगी से कहा—देखती है वहू मैके से कैसा निखरकर आयी है।

भूंगी ने कहा—दीदी, माँ के हाथ की रोटियाँ लड़कियों को बहुत अच्छी लगती हैं।

रुक्मिणी—ठीक कहती है भूंगी, खिलाना तो कुछ माँ ही जानती है।

निर्मला को ऐसा मालूम हुआ कि घर का कोई आदमी उसके आने से खुश नहीं। मुंशीजी ने खुशी तो बहुत दिखायी, पर हृदयगत चिन्ता को न छिपा सके। बच्ची का नाम सुधा ने आशा रख दिया था। वह आशा की मूर्ति-सी थी, भी। देखकर सारी चिन्ता भाग जाती थी। मुंशीजी ने उसे गोद में लेना चाहा तो रोने लगी; दौड़कर माँ से लिपट गई, मानो पिता को पहचानती ही नहीं। मुंशीजी ने मिठाइयों से उसे परचाना चाहा। घर में कोई नौकर तो था नहीं, जाकर सियाराम से दो आने की मिठाइयाँ लाने को कहा। जियाराम भी बैठा हुआ था। बोल उठा—हम लोगों के लिए तो कभी मिठाइयाँ नहीं आतीं।

मुंशीजी ने झुंझलाकर कहा—तुम लोग बच्चे नहीं हो।

जियाराम—और क्या बूढ़े हैं ? मिठाइयाँ मँगवाकर रख दीजिए, तो मालूम हो कि बच्चे हैं या बूढ़े हैं ! निकालिए चार आने और ! आशा की बदौलत हमारे नसीब भी

जाँगे।

मुंशीजी—मेरे पास इस वक्त पैसे नहीं हैं। जाओ सिया, जल्द आना।

जियाराम—सिया नहीं जाएगा ! किसी का गुलाम नहीं है। आशा अपने बाप की बेटी है, तो वह भी अपने बाप का बेटा है।

मुंशीजी—क्या फजूल की बातें करते हो। नन्हीं-सी बच्ची की बराबरी करते तुम्हें शर्म नहीं आती। जाओ सियाराम, ये पैसे लो।

जियाराम—मत जाना सिया ! तुम किसी के नौकर नहीं हो।

सिया बड़ी दुविधा में पड़ गया। किसका कहना माने ? अन्त में उसने जियाराम का कहना मानने का निश्चय किया। बाप ज्यादा-से-ज्यादा घुड़क देंगे, जिया तो मारेगा फिर वह किसके पास फरियाद लेकर जायगा ? बोला—मैं न जाऊँगा।

मुंशीजी ने धमकाकर कहा—अच्छा, तो मेरे पास फिर कोई चीज माँगने मत आना।

मुंशीजी खुद बाहर चले गए और एक रुपये की मिठाई लेकर लौटे। दो [illegible] मिठाई माँगते हुए उन्हें शर्म आयी। हलवाई उन्हें पहचानता था। दिल में क्या [illegible]

मिठाई लिए मुंशीजी अन्दर चले गये। सियाराम ने मिठाई का [illegible] तो बाप का कहना न मानने का उसे दुःख हुआ। अब वह किस मुँह से [illegible] अन्दर जायगा ? बड़ी भूल हुई। वह मन-ही-मन जियाराम के चाँटों [illegible] की मिठास में तुलना करने लगा।

सहसा भूँगी ने दो तश्तरियाँ दोनों के सामने लाकर रख दीं [illegible] बिगड़कर कहा—इसे उठा ले जा !

भूँगी—काहे को बिगड़ते हो बाबू, क्या मिठाई [illegible]

जियाराम—मिठाई आशा के लिए आई है [illegible] सड़क पर फेंक दूँगा। हम तो पैसे-पैसे के लिए रटते रहते हैं [illegible] आती है।

भूँगी—तुम ले लो सिया बाबू, यह न लेंगे [illegible]

सियाराम ने डरते-डरते हाथ बढ़ाया [illegible] मिठाई, नहीं तो हाथ तोड़कर रख दूँगा। [illegible]

सियाराम यह घुड़की सुनकर [illegible]

निर्मला ने यह कथा सुनी, तो [illegible] दी।

निर्मला—आप समझते [illegible]

मुंशीजी—गुस्ताख हो गया है। इस ख्याल से कोई सख्ती नहीं करता कि लोग कहेंगे, बिना माँ के बच्चों को सताते हैं, नहीं तो सारी शरारत घड़ी-भर में निकाल दूं।

निर्मला—इसी बदनामी का तो मुझे भी डर है।

मुंशीजी—अब न डरूँगा, जिसके जी में जो आये, कहे।

निर्मला—पहले तो यह ऐसे न थे।

मुंशीजी—अजी कहता है कि आपके लड़के मौजूद थे, आपने शादी क्यों की। यह कहते भी इसे संकोच नहीं होता कि आप लोगों ने मंसाराम को विष दे दिया ! लड़का नहीं है, शत्रु है।

जियाराम द्वार पर छिपकर खड़ा था। स्त्री-पुरुष में मिठाई के विषय में क्या बातें होती हैं, यही सुनने वह आया था। मुँशीजी का वह अंतिम वाक्य सुनकर उससे रहा न गया। बोल उठा—शत्रु न होता, तो आप उसके पीछे क्यों पड़ते ? आप जो इस वक्त कह रहे हैं, वह मैं बहुत पहले से समझे बैठा हुं ? भैया न समझे थे, धोखा खा गए। हमारे साथ आपकी दाल न गलेगी; सारा जमाना कह रहा है कि भाई साहब को जहर दिया गया है। मैं कहता हूं, तो आपको क्यों गुस्सा आता है ?

निर्मला तो सन्नाटे में आ गई। मालूम हुआ, किसी ने उसकी देह पर अंगारे डाल दिए। मुंशीजी ने डांट कर जियाराम को चुप कराना चाहा; पर जियाराम निःशंक खड़ा ईंटों का जवाब पत्थर से देता रहा। यहाँ तक कि निर्मला को भी उस पर क्रोध आ गया। यह कल का छोकरा, किसी काम का न काज का, यों खड़ा टर्रा रहा है, जैसे घर-भर का पालन-पोषण यही करता हो। त्योरियाँ चढ़ाकर बोली—बस, अब बहुत हुआ जियाराम। मालूम हो गया, तुम बडे लायक हो; बाहर जाकर बैठो।

मुंशीजी अब तक कुछ दब-दबकर बोलते रहे, निर्मला की शह पायी तो दिल बढ़ गया। दाँत पीसकर लपके और इसके पहले कि निर्मला उनके हाथ पकड़ सके, एक थप्पड़ चला ही दिया। थप्पड़ निर्मला के मुँह पर पड़ा। वही सामने पड़ी। माथा चकरा गया। मुंशीजी के सूखे हुए हाथों में भी इतनी शक्ति है, इसका वह अनुमान न कर सकती थी। सिर पकड़कर बैठ गई। मुंशीजी का क्रोध और भी भड़क उठा, फिर घूंसा चलाया। पर अबकी जियराम ने उनका हाथ पकड़ लिया और पीछे ढकेलकर बोला—दूर से बात कीजिए, क्यों नाहक अपनी बेइज्जती करवाते हैं ? अम्माँजी का लिहाज कर रहा हूं, नहीं तो दिखा देता।

यह कहता हुआ वह बाहर चला गया। मुंशीजी संज्ञाशून्य-से खड़े रहे। इस वक्त अगर जियाराम पर दैवी वज्र गिर पड़ता, तो शायद उन्हें हार्दिक आनंद होता। जिस पुत्र को कभी गोद में लेकर निहाल हो जाते थे, उसी के प्रति आज भाँति-भाँति की

मेरे कमरे में क्या करने आया था? कहीं मुझे धोखा तो नहीं हुआ? शायद दीदीजी के कमरे में आया हो? यहाँ उसका काम ही क्या था? शायद मुझसे कुछ कहने आया हो; लेकिन इस वक्त क्या कहने आया होगा? इसकी नीयत क्या है? उसका दिल कांप उठा।

मुंशीजी ऊपर छत पर सो रहे थे। मुंडेर न होने के कारण निर्मला ऊपर न सो सकती थी। उसने सोचा, चलकर उन्हें जगाऊँ; पर जाने की हिम्मत न पड़ी। शक्की आदमी हैं, न जाने क्या समझ बैठें और क्या करने पर तैयार हो जायं। कौन जाने, मुझे धोखा ही हुआ हो। नींद में कभी धोखा हो जाता है; लेकिन सवेरे पूछने का निश्चय करने पर भी उसे नींद नहीं आई।

सवेरे वह जलपान लेकर स्वयं जियाराम के पास गयी, तो वह उसे देखकर चौंक पड़ा। रोज तो भूंगी आती थी, आज यह क्यों आ रही हैं। निर्मला की ओर ताकने की हिम्मत न पड़ी।

निर्मला ने उसकी ओर विश्वासपूर्ण नेत्रों से देखकर पूछा—रात को तुम हमारे कमरे में गये थे?

जियाराम ने विस्मय दिखाकर कहा—मैं! भला मैं रात को क्या करने जाता? क्या कोई गया था?

निर्मला ने इस भाव से कहा, मानो उसे उसकी बात का पूरा विश्वास हो गया—हाँ, मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई मेरे कमरे से निकला। मैंने उसका मुंह तो न देखा, पर उसकी पीठ देखकर अनुमान किया कि शायद तुम किसी काम से आये हो। इसका पता कैसे चले, कौन था? कोई था जरूर इसमें कोई सन्देह नहीं।

जियाराम अपने को निरपराध सिद्ध करने की चेष्टा कर कहने लगा—मैं रात को थिएटर देखने चला गया था। वहाँ से लौटा तो एक मित्र के घर लेट रहा। थोड़ी देर हुई; लौटा हूँ। मेरे साथ और भी कई मित्र थे। जिससे जी चाहे, पूछ लें। हाँ भाई, मैं बहुत डरता हूँ। ऐसा न हो, कोई चीज गायब हो गई, तो मेरा नाम लगे। चोर को तो कोई पकड़ नहीं सकता मेरे मत्थे जायगी। बाबूजी को आप जानती हैं, मुझे मारने दौड़ेंगे।

निर्मला—तुम्हारा नाम क्यों लगेगा! अगर तुम्हीं होते तो भी तुम्हें कोई चोरी नहीं लगा सकता। चोरी दूसरे की चीज की की जाती है, अपनी चीज की चोरी कोई नहीं करता।

अभी तक निर्मला की निगाह अपने सन्दूकचे पर न पड़ी थी। भोजन बनाने लगी। जब वकील साहब कचहरी चले गये, तो वह सुधा से मिलने चली। इधर कई दिनों से मुलाकात न हुई थी, फिर रातवाली घटना पर विचार-परिवर्तन करना था। भूंगी से कहा—कमरे में से गहनों का बक्सा उठा ला।

भूंगी ने लौटकर कहा—वहाँ तो कहीं सन्दूक नहीं है। कहाँ रखा था?

निर्मला ने चिढ़कर कहा—एक बार में तो तेरा काम ही कभी नहीं होता। जरा ढूँढ़कर और जगह कहाँ? आलमारी में देखा था।

भूँगी—नहीं! बहूजी, आलमारी में तो नहीं देखा, झूठ क्यों बोलूँ।

निर्मला मुस्करा पड़ी। बोली—जा देख, जल्दी आ।

एक क्षण में भूँगी फिर खाली हाथ लौट आयी—आलमारी में भी तो नहीं है। अब जहाँ बताओ, वहाँ देखूँ।

निर्मला झुँझलाकर यह कहती हुई उठ खड़ी हुई—तुझे ईश्वर ने आँखें ही न जाने किस लिए दीं। देख, कमरे में से लाती हूँ कि नहीं।

भूँगी भी पीछे-पीछे कमरे में गयी। निर्मला ने ताक पर निगाह डाली, आलमारी खोलकर देखी। चारपाई के नीचे झाँककर देखा, फिर कपड़ों का बड़ा सन्दूक खोलकर देखा। बक्स का कहीं पता नहीं। आश्चर्य हुआ, आखिर बक्स गया कहाँ?

सहसा रातवाली घटना बिजली की भाँति उसकी आँखों के सामने चमक गई। कलेजा उछल पड़ा। अब तक निश्चिन्त होकर खोज रही थी। अब ताप-सा चढ़ आया। बड़ी उतावली से चारों ओर खोजने लगी। कहीं पता नहीं! जहाँ नहीं खोजना चाहिए था वहाँ भी खोजा। इतना बड़ा सन्दूकचा बिछावन के नीचे कैसे छिप जाता; पर बिछावन भी झाड़कर देखा। क्षण-क्षण मुख की कान्ति मलिन होती जाती थी। प्राण नहों में समाये जाते थे। अन्त को निराश होकर उसने छाती पर एक घूँसा मारा और रोने लगी।

गहने ही स्त्री की सम्पत्ति होते हैं। पति की और किसी सम्पत्ति पर उसका अधिकार नहीं होता है। इन्हीं का उसे बल और गौरव होता है। निर्मला के पास पाँच-छः हजार के गहने थे। जब उन्हें पहनकर निकलती थी, तो उसकी दशा के लिए गुमान से उसका हृदय खिला रहता था। एक-एक गहना मानो विपत्ति और बाधा से बचाने के लिए एक-एक रक्षास्त्र था। अभी रात ही उसने सोचा था, जियाराम की लौंडी बनकर वह न रहेगी। ईश्वर न करे वह किसी के सामने हाथ फैलाए। इन्हीं गहनों से उसकी नाव भी पार लग जायेगी और उसकी बच्ची को भी किसी न किसी घाट पहुँचा देंगे। उसे किस बात की चिन्ता है। इन्हें तो कोई उससे छीन न लेगा। आज ये मेरे सिंगार हैं, कल को मेरे आधार हो जायँगे। इस विचार से उसके हृदय को कितनी सान्त्वना मिलती थी। वही सम्पत्ति आज उसके हाथ से निकल गई।

अब वह निराधार थी। संसार में उसका कोई अवलम्ब, कोई सहारा न था! उसकी आशाओं का आधार जड़ से कट गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। ईश्वर! तुमसे इतना भी न देखा गया! मुझ दुखिया को तुमने यह भी आश्रय बना दिया था, अब आँखें भी फोड़ दीं! अब वह किसके सामने हाथ फैलायेगी, किसके द्वार पर भीख माँगेगी? पसीने से उसकी देह भीग गई। रोते-रोते आँखें सूज गईं। निर्मला सिर नीचे किए रो रही थी! रुक्मिणी उसे धीरज दिला रही थी, लेकिन उसके आँसू न रुकते थे। शोक-ज्वाला कम न होती थी।

तीन बजे जियाराम स्कूल से लौटा। निर्मला उसके आने की खबर पाकर विक्षिप्त की भाँति उठी और उसके कमरे के द्वार पर आकर बोली—भैया, दिल्लगी की हो तो दे दो। दुखिया को सताकर क्या पाओगे ?

जियाराम एक क्षण के लिए कातर हो उठा। चोर-कला में उसका यह पहला ही प्रयास था। वह कठोरता, जिससे हिंसा में मनोरंजन होता है, अब तक उसे प्राप्त न हुई थी। यदि उसके पास सन्दूकचा होता और फिर इतना मौका मिलता कि उसे ताक पर रख आये, तो कदाचित् वह उस मौके को न छोड़ता, लेकिन सन्दूकचा उसके हाथ से निकल चुका था।यारों ने उसे सराफे में पहुँचा दिया था और औने-पौने बेच भी डाला गया। चोरों की झूठ के सिवा और कौन रक्षा कर सकता है ? बोला—भला अम्माँजी, मैं आपसे ऐसी दिल्लगी करूँगा ? आप अभी तक मुझ पर शंका करती जा रही हैं। मैं कह चुका कि मैं रात को घर पर न था; लेकिन आपको यकीन ही नहीं आता। बड़े दुःख की बात है कि मुझे आप इतना नीच समझती हैं।

निर्मला ने आँसू पोंछते हुए कहा—मैं तुम्हारे ऊपर शक नहीं करती भैया ! तुम्हें चोरी नहीं लगती। मैंने समझा, शायद दिल्लगी की हो।

जियाराम पर वह चोरी का सन्देह कैसे कर सकती थी ? दुनिया यही तो कहेगी कि लड़के की माँ मर गई है, तो उस पर चोरी का इल्जाम लगाया जा रहा है। मेरे मुँह में ही तो कालिख लगेगी !

जियाराम ने आश्वासन देते हुए कहा—चलिए, मैं देखूँ, आखिर ले कौन गया ? चोर आया किस रास्ते से ?

भूंगी—भैया, तुम चोरों को आने की कहते हो। चूहे के बिल से तो निकल आते, यहाँ तो चारों ओर ही खिड़कियाँ हैं !

निर्मला—सारा घर तो छान मारा; अब कहाँ खोजने को कहते हो ?

जियाराम—आप लोग सो भी तो जाती हैं मुर्दों से बाजी लगाकर।

चार बजे मुंशीजी घर में आये, तो निर्मला की दशा देखकर पूछा—कैसी तबीयत है ? कहीं दर्द तो नहीं है ?—यह कहकर उन्होंने आशा को गोद में उठा लिया।

निर्मला कोई जवाब न दे सकी। फिर रोने लगी।

भूंगी ने कहा—ऐसा कभी नहीं हुआ था। मेरी सारी उम्र इसी घर में कट गई। आज तक पैसे की चोरी नहीं हुई। दुनिया यही कहेगी कि भूंगी का काम है। अब तो भगवान् ही पत-पानी रखें।

मुंशीजी अचकन के बटन खोल रहे थे। फिर बटन बन्द करते हुए बोले—क्या हुआ ? क्या कोई चीज चोरी हो गई ?

भूंगी—बहूजी के सारे गहने उठ गए।

मुंशीजी—रखे कहाँ थे ?

निर्मला ने सिसकियाँ लेते हुए रात की सारी घटना बयान कर दी; पर जियाराम

कसम !

मुंशीजी—तो घर में और कौन है ? मेरे दोनों लड़के हैं, स्त्री और बहिन है ! उनमें से किस पर शक करूँ ?

थानेदार—खुदा की कसम, घर ही के किसी आदमी का काम है, चाहे वह कोई हो। इंशाअल्लाह, दो-चार दिन में मैं आपको इसकी खबर दूंगा। यह तो नहीं कह सकता कि माल भी सब मिल जायगा; पर खुदा की कसम, चोर को जरूर पकड़ दिखाऊँगा।

थानेदार चला गया, तो मुंशीजी ने आकर निर्मला से उसकी बातें कहीं। निर्मला सहम उठी—आप थानेदार से यह कह दीजिए, तफतीश न करें, आपके पैरों पड़ती हूँ।

मुंशीजी—आखिर क्यों ?

निर्मला—अब क्या बताऊँ ! वह कह रहा है कि घर ही के किसी आदमी का काम है।

मुंशीजी—उसे बकने दो।

जियाराम अपने कमरे में बैठा हुआ भगवान् को याद कर रहा था। उसके मुंह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। सुन चुका था कि पुलिसवाले चेहरे से भाँप जाते हैं। बाहर निकलने की हिम्मत न पड़ती थी। दोनों आदमियों में क्या बातें हो रही हैं, यह जानने के लिए छटपटा रहा था। ज्यों ही थानेदार चला गया और भूंगी किसी काम से बाहर निकली, जियाराम ने पूछा—थानेदार क्या कह रहा था भूंगी ?

भूंगी ने पास आकर कहा—डाढ़ीजार कहता था, घर ही के किसी आदमी का काम है; बाहर का कोई नहीं है।

जियाराम—बाबूजी ने कुछ नहीं कहा ?

भूंगी—कुछ तो नहीं कहा; खड़े 'हूँ-हूँ' करते रहे। घर पर भूंगी ही गैर है न, और तो सब अपने ही हैं।

जियाराम—मैं भी तो गैर हूं, तू ही क्यों ?

भूंगी—तुम गैर काहे हो भैया !

जियाराम—बाबूजी ने थानेदार से कहा नहीं, घर में किसी पर उनका शुबहा तो नहीं है।

भूंगी—कुछ तो कहते नहीं सुना। बेचारे थानेदार ने भले ही कहा—भूंगी तो पगली है, वह क्या चोरी करेगी; बाबूजी तो मुझे फँसाए ही देते थे।

जियाराम—तब तो तू भी निकल गयी। अकेला मैं ही रह गया। तू ही बता, तूने उस दिन घर में देखा था ?

भूंगी—नहीं भैया, तुम तो ठेठर देखने गये थे।

जियाराम—गवाही देगी न ?

भूंगी—यह क्या कहते हो भैया ? बहूजी तफती बन्द करा देंगी।

जियाराम—सच ?

मुंशीजी ने आकाश की ओर ताकते हुए कहा—फिर जैसी भगवान् की इच्छा! हजार-दो-हजार रुपये रिश्वत देने के लिए होते, तो शायद मामला दब जाता; पर मेरी हालत तो तुम जानती हो। तकदीर खोटी है, और कुछ नहीं। पाप तो मैंने किए हैं, दण्ड कौन भोगेगा? एक लड़का था, उसकी वह दशा हुई, दूसरे की यह दशा हो रही है। नालायक था, गुस्ताख था, कामचोर था, पर था तो अपना ही लड़का, कभी-न-कभी चेत ही जाता। यह चोट अब न सही जायेगी।

निर्मला—अगर कुछ दे-दिलाकर जान बच सके, तो मैं रुपये का प्रबन्ध कर दूं।

मुंशीजी—कर सकती हो ? कितने रुपये दे सकती हो ?

निर्मला—कितना दरकार होगा ?

मुंशीजी—एक हजार से कम में तो शायद बातचीत न हो सके। मैंने एक मुकदमे में उससे १००० रु० लिये थे। वह कसर आज निकालेगा।

निर्मला—हो जायेगा। अभी थाने जाइए।

मुंशीजी को था॰ ॰ बड़ी देर लगी। एकान्त में बातचीत करने का बहुत देर में मौका मिला। अलायार खाँ पुराना घाघ था। बड़ी मुश्किल से अण्टी पर चढ़ा। पाँच सौ रुपये लेकर भी एहसान का बोझ सिर पर लाद ही दिया। काम हो गया। लौटकर निर्मला से बोले—लो भाई, बाजी मार ली। रुपये तुमने दिये, पर काम मेरी जबान ही ने दिया—बड़ी-बड़ी मुश्किलों से राजी हो गया। यह भी याद रहेगी। जियाराम भोजन कर ा है ?

निर्मला—कहाँ, वह तो अभी घूमकर लौटे ही नहीं।

मुंशीजी—बारह तो बज रहे होंगे।

निर्मला—कई दफे जा-जाकर देख आयी। कमरे में अँधेरा पड़ा हुआ है।

मुंशीजी—और सियाराम ?

निर्मला—वह तो खा-पीकर सोए हैं।

मुंशीजी—उससे पूछा नहीं, जिया कहाँ गया ?

निर्मला—वह तो कहते हैं, मुझसे कुछ कहकर नहीं गये।

मुंशीजी को कुछ शंका हुई। सियाराम को जगाकर पूछा—तुमसे जियाराम ने कुछ कहा नहीं, कब तक लौटेगा। गया कहाँ है ?

सियाराम ने सिर खुजलाते हुए और आँखे मलते हुए कहा—मुझसे कुछ नहीं कहा।

मुंशीजी—कपड़े सब पहनकर गया है ?

सियाराम—जी नहीं, कुर्ता और धोती।

मुंशीजी—जाते वक्त खुश था।

सियाराम—खुश तो नहीं मालूम होते थे। कई बार अन्दर आने का इरादा किया, पर देहरी ही से लौट गए। कई मिनट तक सायबान में खड़े रहे। चलने लगे; तो आँखे

रोए रहे थे। इधर कई दिन से अक्सर रोया करते थे।

मुंशीजी ने ऐसी ठण्डी साँस ली, मानो जीवन में अब कुछ नहीं रहा और निर्मला से बोले—तुमने किया तो अपनी समझ में भले ही के लिए, पर शत्रु भी मुझ पर इससे कठोर आघात न कर सकता था। जियाराम की माता होती, तो क्या यह संकोच करती ? कदापि नहीं।

निर्मला—ज़रा डॉक्टर साहब के यहाँ क्यों नहीं चले जाते ? शायद वहाँ बैठे हों। कई लड़के रोज़ आते हैं, उनसे पूछिए; शायद कुछ पता चल जाय। फूँक-फूँककर चलने पर भी अपयश लग ही गया।

मुंशीजी ने मानो खुली हुई खिड़की से कहा—हाँ, जाता हूँ और क्या करूँगा।

मुंशीजी बाहर आये तो देखा, डॉक्टर सिन्हा खड़े हैं। चौंककर पूछा—क्या आप देर से खड़े हैं ?

डॉक्टर—जी नहीं, अभी आया हूँ। आप इस वक्त कहाँ जा रहे हैं ? साढ़े बारह हो गए हैं।

मुंशीजी—आप ही की तरफ आ रहा था। जियाराम अभी तक घूमकर नहीं आया। आपकी तरफ तो नहीं गया था ?

डॉक्टर सिन्हा ने मुंशीजी के दोनों हाथ पकड़ लिए और इतना कह पाए थे, 'भाई साहब, अब धैर्य से काम ' कि मुंशीजी गोली खाए हुए मनुष्य की भाँति जमीन पर गिर पड़े।

: २१ :

रुक्मिणी ने निर्मला से त्योरियाँ बदलकर कहा—क्या नंगे पाँव मदरसे जाएगा ?

निर्मला ने बच्ची के बाल गूँथते हुए कहा—मैं क्या करूँ ? मेरे पास रुपये नहीं हैं।

रुक्मिणी—गहने बनवाने को रुपये जुड़ते हैं, लड़के के जूतों के लिए रुपयों में आग लग जाती है ! दो तो चले ही गए, क्या तीसरे को भी रुला-रुलाकर मार डालने का इरादा है ?

निर्मला ने साँस खींचकर कहा—जिसको जीना है, जिएगा, जिसको मरना है मरेगा; मैं किसी को मारने-जिलाने नहीं जाती।

आजकल एक-न-एक बात पर निर्मला और रुक्मिणी में रोज़ ही झड़प हो जाती थी। जबसे गहने चोरी गए हैं, निर्मला का स्वभाव बिलकुल बदल गया है। वह एक-एक कौड़ी दाँत से पकड़ने लगी है। सियाराम रोते-रोते चाहे जान दे दे, मगर उसे मिठाई के लिए पैसे नहीं मिलते; और यह बर्ताव कुछ सियाराम ही के साथ नहीं है, निर्मला स्वयं

अपनी जरूरतों को टालती रहती है। धोती जब तक फटकर तार-तार न हो जाय, नई धोती नहीं आती। महीनों सिर का तेल नहीं मंगाया जाता। पान खाने का शौक था, कई-कई दिन तक पानदान खाली पड़ा रहता है, यहाँ तक कि बच्ची के लिए दूध भी नहीं आता। नन्हे से शिशु का भविष्य विराट् रूप धारण करके उसके विचार-क्षेत्र पर मंडराता है।

मुंशीजी ने अपने को सम्पूर्णतः निर्मला के हाथों में सौंप दिया है। उसके किसी काम में दखल नहीं देते। न जाने क्यों उससे कुछ दबे रहते हैं। वह अब बिना नागा कचहरी जाते हैं। इतनी मेहनत उन्होंने जवानी में भी न की थी। आँखें खराब हो गई हैं। डॉक्टर सिन्हा ने रात को लिखने-पढ़ने की मुमानियत कर दी है। पाचन-शक्ति पहले ही दुर्बल थी, अब और भी खराब हो गई है। दमे की शिकायत भी पैदा हो चली, पर बेचारे सवेरे से आधी रात तक काम करते हैं। काम करने को जी चाहे या न चाहे, तबीयत अच्छी हो या न हो, काम करना ही पड़ता है। निर्मला को उन पर जरा भी दया नहीं आती। यही भविष्य की भीषण चिन्ता उसके आन्तरिक सद्भावों का सर्वनाश कर रही है। किसी भिक्षुक की आवाज सुनकर झल्ला पड़ती है। वह एक कौड़ी भी खर्च करना नहीं चाहती।

एक दिन निर्मला ने सियाराम को घी लाने के लिए भेजा। भूंगी पर उसका विश्वास न था, उससे अब कोई सौदा न मगाती थी। सियाराम में काट-कपट की आदत न थी। औने-पौने करना न जानता था। प्राय बाजार का सारा काम उसी को करना पड़ता। निर्मला एक-एक चीज तौलाती, जरा भी कोई चीज तौल में कम पड़ती उसे लौटा देती, सियाराम का बहुत-सा समय इसी लौटा-फेरी में बीत जाता था। बाजारवाले उसे जल्दी कोई सौदा न देते। आज भी वही नौबत आयी। सियाराम अपने विचार से बहुत अच्छा घी, कई दूकानों से देखकर लाया, पर निर्मला ने उसे सूंघते ही कहा—घी खराब है, लौटा आओ।

सियाराम ने झुंझलाकर कहा—इससे अच्छा घी बाजार में नहीं, मैं सारी दूकानें देखकर लाया हूं।

निर्मला—तो मैं झूठ कहती हूं ?

सियाराम—यह मैं नहीं कहता, लेकिन बनिया अब घी वापस न लेगा। उसने मुझसे कहा था, जिस तरह देखना चाहो, देखो, माल तुम्हारे सामने है, बोहनी-बट्टे के वक्त सौदा वापस न लूंगा। मैंने सूंघकर, चखकर लिया। अब किस मुंह से लौटाने जाऊँ ?

निर्मला ने दांत पीसकर कहा—घी में साफ चरबी मिली हुई है और तुम कहते

हो, घी अच्छा है! मैं इसे रसोई में न ले जाऊँगी; तुम्हारा जी चाहे लौटा दो, चाहे खा जाओ।

घी की हाँडी वहीं छोड़कर निर्मला घर में चली गई। सियाराम क्रोध और क्षोभ से कातर हो उठा। वह कौन मुँह लेकर लौटाने जाय? बनिया साफ कह देगा, मैं नहीं लौटाता। तब वह क्या करेगा? आस-पास के दस-पाँच बनिये और सड़क पर चलनेवाले आदमी खड़े हो जायँगे। उन सबों के सामने उसे लज्जित होना पड़ेगा। बाजार में यों ही कोई बनिया उसे जल्दी सौदा नहीं देता। वह किसी दुकान पर खड़ा नहीं होने पाता। चारों ओर से उसी पर लताड़ पड़ेगी। उसने मन-ही-मन झुंझलाकर कहा—पड़ा रहे घी मैं लौटाने न जाऊँगा।

मातृहीन बालक के समान दुखी-दीन प्राणी संसार में दूसरा नहीं होता। और सारे दुःख भूल जाते हैं। बालक को माता याद आई। अम्माँ होती तो क्या आज मुझे यह सब सहना पड़ता? भैया चले गए; मैं ही अकेला यह विपत्ति सहने के लिए क्यों बच रहा? सियाराम की आँखों से आँसू की झड़ी लग गई। उसके शोक-कातर कण्ठ से एक गहरे निःश्वास के साथ मिले हुए शब्द निकल आए—अम्माँ! मुझे क्यों भूल गईं, मुझे क्यों नहीं बुला लेती?

सहसा निर्मला फिर कमरे की तरफ आयी। उसने समझा था, सियाराम चला गया होगा। उसे बैठे देखा, तो गुस्से से बोली—तुम अभी तक बैठे ही हो? आखिर खाना कब बनेगा?

सियाराम ने आँखें पोंछ डालीं। बोला—मुझे स्कूल जाने में देर हो जायगी।

निर्मला—एक दिन देर हो जायगी, तो कौन हरज है? यह भी तो घर का काम है।

सियाराम—रोज तो यही धन्धा लगा रहता है। कभी वक्त पर नहीं पहुँचता। घर पर भी पढ़ने का वक्त नहीं मिलता। कोई सौदा दो-चार बार लौटाए बिना नहीं लिया जाता। डाँट तो मुझ पर पड़ती है, शर्मिन्दा तो मुझे होना पड़ता है, आपको क्या?

निर्मला—हाँ मुझे क्या? मैं तो तुम्हारी दुश्मन ठहरी, अपना होता तब तो उसे दुःख होता। मैं तो ईश्वर से मनाया करती हूँ कि तुम पढ़-लिख न सको। मुझमें सारी बुराइयाँ-ही-बुराइयाँ हैं। तुम्हारा कसूर नहीं। विमाता का नाम ही बुरा होता है। अपनी माँ विष भी खिलाए तो अमृत है; मैं अमृत भी खिलाऊँ तो विष हो जायगा। तुम लोगों के कारण मैं मिट्टी में मिल गई! रोते-रोते उम्र कटी जाती है मालूम ही न हुआ कि भगवान् ने किसलिए जन्म दिया था, और तुम्हारी समझ में मैं विहार कर रही हूँ। तुम्हें सताने में मुझे मजा आता है! भगवान् भी नहीं पूछते कि सारी विपत्ति का अन्त हो

जाता।

यह कहते-कहते निर्मला की आँखें भर आईं। अन्दर चली गई। सियाराम उसको रोते देखकर सहम उठा। उसे ग्लानि तो नहीं हुई; हां यह शंका हुई कि न जाने कौन-सा दण्ड मिले। चुपके से हाँडी उठा ली और घी लौटाने चला, इस तरह जैसे कोई कुत्ता किसी नए गाँव में जाता है। उसी कुत्ते की भांति उसकी मनोगत वेदना उसके एक-एक भाव से प्रकट हो रही है। उसे देखकर साधारण बुद्धि का मनुष्य भी अनुमान कर सकता है कि अनाथ है।

सियाराम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, आनेवाले संग्राम के भय से उसकी हृदयगति बढ़ती जाती थी। उसने निश्चय किया—बनिए ने घी न लौटाया तो वह घी वहीं छोड़कर चला आएगा। झख मारकर बनिया आप ही बुलाएगा। बनिए को डाँटने के लिए भी उसने शब्द सोच लिए! वह कहेगा, क्यों साहजी, आँखों में धूल झोंकते हो। दिखाते हो चोखा माल और देते हो रद्दी! पर यह निश्चय करने पर भी उसके पैर आगे बहुत धीरे-धीरे उठते थे। वह न चाहता था कि बनिया उसे आता हुआ देखे। वह अकस्मात् ही उसके सामने पहुंच जाना चाहता था। इसीलिए वह चक्कर काटकर दूसरी गली से बनिये की दूकान पर गया।

बनिये ने उसे देखते ही कहा—हमने कह दिया था कि सौदा वापस न लेंगे। बोलो, कहा था कि नहीं?

सियाराम ने बिगड़कर कहा—तुमने वह घी कहाँ दिया, जो दिखाया था! दिखाया था एक माल, दिया दूसरा माल, लौटाओगे कैसे नहीं? क्या कुछ राहजनी है?

साह—इससे चोखा माल बाजार में निकल आये, तो जरीवना दूँ। उठा लो हाँडी और दो-चार दूकान देख आओ।

सियाराम—हमें इतनी फुर्सत नहीं है। अपना घी लौटा लो।

साह—घी न लौटेगा।

बनिये की दूकान पर एक जटाधारी साधु बैठा हुआ तमाशा देख रहा था। उठकर सियाराम के पास आया और हाँडी का घी सूँघकर बोला—बच्चा, घी तो बहुत अच्छा मालूम होता है।

साह ने शह पाकर कहा—बाबाजी, हम लोग तो आप ही इनको घटिया सौदा नहीं देते। खराब माल क्या जाने-सुने ग्राहकों को दिया जाता है।

साधु—घी ले जाव बच्चा, बहुत अच्छा है।

सियाराम रो पड़ा। घी को बुरा सिद्ध करने के लिए उसके पास अब क्या प्रमाण था? बोला—वही तो कहती है, घी अच्छा नहीं है। लौटा आओ। मैं तो कहता था, घी

अच्छा है।

साह—इनकी अम्माँ कहती होंगी। कोई सौदा मन में नहीं भाता। बेचारे लड़के को बार-बार दौड़ाया करती हैं। सौतेली माँ है न ! अपनी माँ हो तो कुछ ख्याल भी करे।

साधु ने सियाराम को सदय नेत्रों से देखा; मानो उसे त्राण देने के लिए उनका हृदय व्याकुल हो रहा है। तब करुण स्वर में बोले—तुम्हारी माँ का स्वर्गवास हुए कितने दिन हुए बच्चा ?

सियाराम—छठा साल है।

साधु—तब तो तुम उस वक्त बहुत छोटे रहे होगे। भगवान् तुम्हारी लीला कितनी विचित्र है ! इस दुधमुँहे बालक को मातृप्रेम से वंचित कर दिया। बड़ा अनर्थ करते हो भगवान् ! छह साल का बालक और राक्षसी विमाता के पाले पड़े ! धन्य हो दयानिधि ! साहजी बालक पर दया करो—घी लौटा लो, नहीं तो इसकी माता इसे घर में न रहने देगी। भगवान् की इच्छा से तुम्हारा घी जल्द बिक जायगा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा।

साहजी ने रुपये वापस न किए। आखिर लड़के को फिर घी लेने आना ही पड़ेगा। न जाने दिन में कितनी बार चक्कर लगाना पड़े और किस जालिये से पाला पड़े। उसकी दूकान में जो घी सबसे अच्छा था, वह सियाराम को दे दिया। सियाराम दिल में सोच रहा था, बाबाजी कितने दयालु हैं। उन्होंने *सिफारिश न की होती, तो साहजी क्या अच्छा घी* देते ?

सियाराम घी लेकर चला, तो बाबाजी भी उसके साथ हो लिये। रास्ते में मीठी-मीठी बातें करने लगे—

'बच्चा, मेरी माता भी मुझे तीन साल का छोड़कर परलोक सिधारी थीं। तभी से मातृविहीन बालकों को देखता हूँ, तो मेरा हृदय फटने लगता है।'

सियाराम ने पूछा—आपके पिता ने भी दूसरा विवाह कर लिया था ?

साधु—हाँ बच्चा, नहीं तो आज साधु क्यों होता। पहले पिताजी विवाह न करते थे। मुझे बहुत प्यार करते थे। फिर न जाने क्यों मन बदल गया—विवाह कर लिया। साधु हूँ, कटुवचन मुँह से न निकालना चाहिए; पर मेरी विमाता जितनी सुन्दर थीं उतनी कठोर भी। मुझे दिन-दिन भर खाने को न देतीं, रोता तो मारतीं, पिताजी की आँखें भी फिर गईं। उन्हें मेरी सूरत से घृणा होने लगी। मेरा रोना सुनकर मुझे पीटने लगते। अंत में एक दिन घर से निकल खड़ा हुआ।

सियाराम के मन में भी घर से निकल भागने का विचार कई बार हुआ था। इस समय भी उसके मन में यही विचार उठ रहा था। बड़ी उत्सुकता से बोला—घर से

निकलकर आप कहाँ गये ?

बाबाजी ने हँसकर कहा—उसी दिन मेरे कष्टों का अन्त हो गया। जिस दिन घर के मोह-बन्धन से छूटा और भय मन से निकला, उसी दिन मानो मेरा उद्वार हो गया। दिन-भर तो मैं पुल के नीचे बैठा रहा। संध्या समय मुझे एक महात्मा मिल गए। उनका नाम स्वामी परमानन्दजी था। वे बाल ब्रह्मचारी थे। मुझ पर उन्होंने दया की और अपने साथ रख लिया। उनके साथ मैं देश-देशांतर में घूमने लगा। वह बड़े अच्छे योगी थे। मुझे भी उन्होंने योग-विद्या सिखायी। अब तो मेरे को इतना अभ्यास हो गया है कि जब इच्छा होती है, माताजी का दर्शन कर लेता हूँ। उनसे बात कर लेता हूँ।

सियाराम ने विस्फारित नेत्रों से देखकर पूछा—आपकी माता का तो देहान्त हो चुका था ?

साधु—तो क्या हुआ बच्चा, योग-विद्या में वह शक्ति है कि जिस मृत आत्मा को चाहे, बुला लो।

सियाराम—मैं योग विद्या सीख लूं, तो मुझे भी माताजी के दर्शन होंगे ?

साधु—अवश्य ! अभ्यास से सब कुछ हो सकता है। हाँ, योग्य गुरु चाहिए। योग से बड़ी-बड़ी सिद्रियाँ प्राप्त हो सकती हैं। ज़ितना धन चाहो, पल-मात्र में मंगा सकते हो। कैसी ही बीमारी हो, उसकी औषधि बता सकते हो।

सियाराम—आपका स्थान कहाँ है ?

साधु—बच्चा, मेरा स्थान कहीं नहीं है। देश-देशांतर में रमता फ़िरता हूं। अच्छा बच्चा, अब तुम जाओ, मैं जरा स्नान-ध्यान करने जाऊँगा।

सियाराम—चलिए, मैं भी उसी तरफ चलता हूं। आपके दर्शन से जी नहीं भरा।

साधु—नहीं बच्चा, तुम्हें पाठशाला जाने को देर हो रही है।

सियाराम—फिर आपके दर्शन कब होंगे ?

साधु—कभी आ जाऊँगा बच्चा, तुम्हारा घर कहाँ है ?

सियाराम प्रसन्न होकर बोला—चलिएगा मेरे घर, बहुत नजदीक है। आपकी बड़ी कृपा होगी।

सियाराम कदम बढ़ाकर आगे चलनो लगा। इतना प्रसन्न था, मानो सोने की गठरी लिये जाता हो। घर के सामने पहुँचकर बोला—आइए, बैठिए कुछ देर।

साधु—नहीं बच्चा; बैठूंगा नहीं। फिर कल-परसों किसी समय आ जाऊँगा। यही तुम्हारा घर है ?

सियाराम—कल किस वक्त आइएगा ?

साधु आगे बढ़े, तो थोड़ी ही दूर पर उन्हें एक दूसरा साधु मिला। उसका नाम था

हरिहरानन्द।

परमानन्द ने पूछा—कहाँ-कहाँ की सैर की ? कोई शिकार फँसा ?

हरिहरानन्द—इधर तो चारों तरफ घूम आया, कोई शिकार न मिला। एकाध मिला तो मेरी हँसी उड़ाने लगा।

परमानन्द—मुझे तो एक मिलता हुआ जान पड़ता है। फँस जाय तो जानूं।

हरिहरानन्द—तुम यों ही कहा करते हो। जो आता है, दो-चार दिन के बाद निकल भागता है।

परमानन्द—अबकी न भागेगा; देख लेना। इसकी माँ मर गई है। बाप ने दूसरा विवाह कर लिया है। माँ भी सताया करती है। घर से ऊबा हुआ है।

हरिहरानन्द—खूब अच्छी तरह। यही तरकीब सबसे अच्छी है। पहले इसका पता लगा लेना चाहिए कि मुहल्ले में किन-किन घरों में विमाताएँ हैं। उन्हीं घरों में फन्दा डालना चाहिए।

: २२ :

निर्मला ने बिगड़कर पूछा—इतनी देर कहाँ लगायी ?

सियाराम ने ढिठाई से कहा—रास्ते में एक जगह सो गया था।

निर्मला—यह तो मैं नहीं कहती, पर जानते हो, के बज गए हैं ? दस कभी के बज गए। बाजार कुछ दूर भी तो नहीं है।

सियाराम—कुछ दूर नहीं, दरवाजे पर ही तो है।

निर्मला—सीधे से क्यों नहीं बोलते ? ऐसा बिगड़ रहे हो, जैसे मेरा ही कोई काम करने गये हो।

सियाराम—तो आप व्यर्थ की बकवाद क्यों करती हैं ? लिया सौदा लौटाना क्या आसान है ? बनिये से घंटों हुज्जत करनी पड़ी। यह तो कहो, एक बाबाजी ने कह-सुनकर फेरवा दिया, नहीं तो किसी तरह न फेरता। रास्ते में कहीं एक मिनट भी नहीं रुका; सीधा चला आता हूँ।

निर्मला—घी के लिए गये, तो तुम ग्यारह बजे लौटे हो; लकड़ी के लिए जाओगे तो साँझ ही कर दोगे ? तुम्हारे बाबूजी बिना खाए ही चले गए। तुम्हें इतनी देर लगानी थी, तो पहले ही क्यों न कह दिया ? जाते हो लकड़ी के लिए ?

सियाराम अब अपने को न सँभाल सका। झल्लाकर बोला—लकड़ी किसी और से मँगाइए। मुझे स्कूल जाने की देर हो रही है।

निर्मला—खाना न खाओगे ?

सियाराम—न खाऊँगा।

निर्मला—मैं खाना बनाने को तैयार हूं। हाँ, लकड़ी लाने नहीं जा सकती।

सियाराम—भूंगी को क्यों नहीं भेजती।

निर्मला—भूंगी का लाया सौदा तुमने कभी देखा नहीं।

सियाराम—तो मैं इस वक्त न जाऊँगा।

निर्मला—मुझे दोष न देना।

सियाराम कई दिनों से स्कूल नहीं गया था। बाजार-हाट के मारे उसे किताबें देखने का समय भी न मिलता था। स्कूल जाकर झिड़कियाँ खाने, बेंच पर खड़े होने या ऊँचा टोपी देने के सिवा और क्या मिलता? वह घर से किताबें लेकर चलता; पर शहर जाकर किसी वृक्ष की छाँह में बैठा रहता था। पलटनों की कवायद देखता। तीन बजे घर लौट आता। आज भी वह घर से चला; लेकिन उसे रोटियों के भी लाले पड़ गए। दस बजे क्या खाना न बन सकता था? माना कि बाबूजी चले गए थे। क्या मेरे लिए घर में दो-चार पैसे भी न थे? अम्माँ होतीं, तो इस तरह बिना कुछ खाए-पिए आने नहीं देतीं? मेरा अब कोई नहीं रहा।

सियाराम का मन बाबाजी के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठा। उसने सोचा, इस वक्त वह कहाँ मिलेंगे? कहाँ चलकर देखूं? उनकी मनोहर वाणी, उनकी उत्साहप्रद सान्त्वना, उसके मन को खींचने लगी। उसने आतुर होकर कहा—मैं उनके साथ ही क्यों न चला गया? घर पर मेरे लिए क्या रखा था?

वह आज यहाँ से चला, तो घर न जाकर सीधा घी वाले साहजी की दूकान पर गया। शायद बाबाजी से वहाँ मुलाकात हो जाय। पर वहाँ बाबाजी न थे। बड़ी देर तक खड़ा-खड़ा लौट आया।

घर आकर बैठा ही था कि निर्मला ने आकर कहा—आज देर कहाँ लगायी? सवेरे खाना नहीं बना, क्या इस वक्त भी उपवास होगा? जाकर बाजार से कोई तरकारी लाओ।

सियाराम ने झल्लाकर कहा—दिन भर का भूखा चला आता हूं। कुछ पानी पीने तक को लायीं नहीं; ऊपर से बाजार जाने का हुक्म दे दिया। मैं नहीं जाता बाजार! किसी का नौकर नहीं हूं। आखिर रोटियाँ ही तो खिलाती हो या और कुछ? ऐसी रोटियाँ जहाँ मेहनत करूंगा, वहीं मिल जायँगी। जब मजूरी ही करनी है, तो आपकी न करूंगा। जाइए, मेरे लिए खाना मत बनाइएगा।

निर्मला अवाक् रह गयी। लड़के को आज यह क्या हो गया? और दिन तो चुपके से जाकर काम कर लाता था, आज क्यों त्योरियाँ बदल रही है? तब भी उसको यह न

सूझी कि सियाराम को दो-चार पैसे कुछ खाने को दे दे। उसका स्वभाव इतना कृपण हो गया था, बोली—घर का काम करना तो मजूरी नहीं कहलाती। इसी तरह मैं भी कह दूँ कि खाना नहीं पकाती; तुम्हारे पिताजी कह दें मैं कचहरी नहीं जाता, तो क्या हो, बताओ! नहीं जाना चाहते हो, मत जाओ, भूँगी से मँगा लूँगी। क्या मैं जानती थी कि तुम्हें बाजार जाना बुरा लगता है, नहीं तो बला से, धेले की चीज पैसे में आती, तुम्हें न भेजती। लो, आज से कान पकड़ती हूँ।

सियाराम दिल में कुछ लज्जित तो हुआ, पर बाजार न गया। उसका ध्यान बाबाजी की ओर लगा हुआ था। आज सारे दुःखों का अन्त और जीवन की सारी आशाएँ उसे अब बाबाजी के आशीर्वाद में मालूम होती थीं। उन्हीं की शरण जाकर उसका यह आधारित जीवन सार्थक होगा। सूर्यास्त के समय वह अधीर हो गया। सारा बाजार छान मारा; लेकिन बाबाजी का कहीं पता न मिला। दिन-भर का भूखा-प्यासा, वह अबोध बालक दुखते हुए दिल को हाथों से दबाए, आशा और भय की मूर्ति बना हुआ, मकानों, गलियों और मंदिरों में उस आश्रय को खोजता-फिरता था, जिसके बिना उसे अपना जीवन दुस्सह हो रहा था। एक बार एक मन्दिर के सामने उसे कोई खड़ा दिखाई दिया। उसने समझा वही है। हर्षोल्लास से वह फूल उठा। दौड़ और जाकर साधु के पास खड़ा हो गया; पर वह कोई और ही महात्मा थे। निराश होकर आगे बढ़ गया।

धीरे-धीरे सड़कों पर सन्नाटा छा गया। घरों के द्वार बन्द होने लगे। सड़क की पटरियों पर और गलियों में बसखटे या बोरे बिछा-बिछाकर भारत की प्रजा सुख-निद्रा में मग्न होने लगी। लेकिन सियाराम घर न लौटा। उस घर से उसका दिल फट गया था। किसी को उससे प्रेम न था, वहाँ तो वह किसी पराश्रित की भाँति पड़ा हुआ था—केवल इसलिए कि उसे और कहीं शरण न थी। इस वक्त भी उसके घर न जाने की किसे चिन्ता होगी? बाबूजी भोजन करके लेटे होंगे, अम्माँजी भी आराम करने जा रही होंगी। किसी ने मेरे कमरे की ओर झाँककर देखा भी न होगा। हाँ, बुआजी घबरा रही होंगी। वही अभी तक मेरी राह देख रही होंगी। जब तक मैं न जाऊँगा भोजन न करेंगी।

रुक्मिणी की याद आते ही सियाराम घर की ओर चला। वह अगर और कुछ न कर सकती थीं तो कम-से-कम उसे गोद में चिपटाकर रोती तो थीं। उसके बाहर से आने पर हाथ मुँह धोने के लिए पानी तो रख देती थी। संसार में सभी बालक दूध की कुल्लियाँ नहीं करते, सभी सोने के कौर नहीं खाते। कितनों को पेट भर भोजन नहीं मिलता, पर घर से विरक्त वही होते हैं, जो मातृस्नेह से वंचित हैं।

सियाराम घर की ओर चला ही था कि सहसा बाबा परमानन्द एक गली से आते

देखाई दिए।

सियाराम ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया। परमानन्द ने चौंककर पूछा—बच्चा, तुम यहाँ कहाँ ?

सियाराम ने बात बनाकर कहा—एक दोस्त से मिलने आया था। आपका स्थान यहाँ से कितनी दूर है ?

परमानन्द—हम लोग तो यहाँ से जा रहे हैं, बच्चा ! हरिद्वार की यात्रा है।

सियाराम ने हतोत्साह होकर कहा—क्या आज ही चले जाइएगा ?

परमानन्द—हां बच्चा, अब लौटकर आऊंगा तो दर्शन दूंगा !

सियाराम ने कातर कंठ से कहा—लौटकर !

परमानन्द—जल्द ही आऊंगा बच्चा !

सियाराम ने दीन भाव से कहा—मैं भी आपके साथ चलूँगा।

परमानन्द—मेरे साथ ! तुम्हारे घर के लोग जाने देंगे ?

सियाराम—घर के लोगों का मेरी क्या परवाह है ! इससे आगे सियाराम और कुछ न कह सका। उसके अश्रुपूरित नेत्रों ने उसकी करुण गाथा उससे कहीं विस्तार के साथ सुना दी, जितनी उसकी वाणी कह सकती थी।

परमानन्द ने बालक को कंठ से लगाकर कहा—अच्छा बच्चा, तेरी इच्छा हो तो चल। साधु-संतों की संगति का भी आनन्द उठा। भगवान् की इच्छा होगी, तो तेरी इच्छा पूरी होगी।

दाने पर मंडराता हुआ पक्षी अंत में दाने पर गिर पड़ा। उसके जीवन का अंत पिंजरे में होगा या व्याध की छुरी के तले—यह कौन जानता है ?

: २३ :

मुंशीजी पाँच बजे कचहरी से लौटे और अन्दर आकर चारपाई पर गिर पड़े। बुढ़ापे की देह उस पर आज सारे दिन भोजन न मिला। मुँह सूख गया था। निर्मला समझ गई, आज दिन खाली गया।

निर्मला—आज कुछ नहीं मिला ?

मुंशीजी—सारा दिन दौड़ते गुजरा, पर हाथ कुछ न लगा।

निर्मला—फौजदारी वाले मामले में क्या हुआ ?

मुंशीजी—मेरे मुवक्किल को सजा हो गई।

निर्मला—पंडितवाले मुकदमे में ?

मुंशीजी—पंडित पर डिग्री हो गई !

निर्मला—आप तो कहते थे कि दावा खारिज हो जायगा।

मुंशीजी—कहता तो था; अब भी कहता हूँ कि दावा खारिज हो जाना चाहिए था; मगर उतना सिर मगजन कौन करे ?

निर्मला—और सीर वाले दावे में ?

मुंशीजी—उसमें भी हार हो गई।

निर्मला—तो आज आप किसी अभागे का मुँह देखकर उठे थे।

मुंशीजी से अब काम बिलकुल न हो सकता था। एक तो उनके पास मुकदमे आते ही न थे, और जो आते भी थे, वह बिगड़ जाते थे। मगर अपनी असफलताओं को वह निर्मला से छिपाते रहते थे। जिस दिन कुछ हाथ न लगता, उस दिन किसी से दो-चार रुपये उधार लाकर निर्मला को दे देते। प्रायः सभी मित्रों से कुछ-न-कुछ ले चुके थे। आज वह डौल भी न लगा।

निर्मला ने चिन्तापूर्ण स्वर में कहा—आमदनी का यह हाल है, तो ईश्वर ही मालिक है; उस पर बेटे का यह हाल है कि बाजार जाना मुश्किल। भूँगी ही से सब काम कराने को जी चाहता है। घी लेकर ग्यारह बजे लौटा। कितना कहकर हार गई कि लकड़ी लेते आओ पर सुना नहीं।

मुंशीजी—तो खाना नहीं पकाया ?

निर्मला—ऐसी ही बातों से तो आप मुकदमे हारते हैं। ईंधन के बिना किसी ने खाना बनाया है कि मैं ही बना लेती ?

मुंशीजी—तो बिना कुछ खाए ही चला गया ?

निर्मला—घर में और क्या रखा था, जो खिला देती ?

मुंशीजी ने डरते-डरते कहा—कुछ पैसे-वैसे न दे दिये ?

निर्मला ने भौंहें सिकोड़कर कहा—घर में पैसे फलते हैं न !

मुंशीजी ने कुछ जवाब न दिया ! जरा देर तो प्रतीक्षा करते रहे कि शायद जलपान के लिए कुछ मिलेगा; लेकिन जब निर्मला ने पानी मँगवाया, तो बेचारे निराश होकर बाहर चले गए। सियाराम के कष्ट का अनुमान करके उनका चित्त चंचल हो उठा। सारा दिन गुजर गया, बेचारे ने अभी कुछ न खाया। कमरे में पड़ा होगा। एक बार भूँगी ही से लकड़ी मँगा ली जाती, ऐसा क्या नुकसान हो जाता ? ऐसी किफायत भी किस काम की कि घर के आदमी भूखे रह जायँ। अपना संदूकचा खोल कर टटोलने लगे कि शायद दो-चार आने पैसे मिल जायँ। उसके अन्दर के सारे कागजात निकाल डाले, एक-एक खाना देखा, पर कुछ न मिला। अगर निर्मला के सन्दूक में पैसे न फलते थे, तो इस संदूकचे में शायद इसके फूल भी न लगते हों। लेकिन संयोग ही कहिए कि कागजों को झाड़ते

हुए चवन्नी गिर पड़ी। मारे हर्ष के मुंशीजी उछल पड़े। बड़ी-बड़ी रकमें इसके पहले कमा चुके थे, पर यह चवन्नी पाकर इस समय उन्हें जितना आह्लाद हुआ, उतना पहले कभी न हुआ था। चवन्नी हाथ में लिए हुए सियाराम के कमरे के सामने आकर पुकारा। कोई जवाब न मिला। तब कमरे में जाकर देखा। सियाराम का कहीं पता नहीं। क्या अभी स्कूल से नहीं लौटा ? मन में यह प्रश्न उठते ही मुंशीजी ने अन्दर आकर भूंगी से पूछा। मालूम हुआ, स्कूल से लौट आये।

मुंशीजी ने पूछा—कुछ पानी पिया है ?

भूंगी ने कुछ जवाब न दिया। नाक सिकोड़कर मुँह फेरते हुए चली गई।

मुंशीजी आहिस्ता ! आहिस्ता ! आकर अपने कमरे में बैठ गए। आज पहली बार उन्हें निर्मला पर क्रोध आया, लेकिन एक क्षण में क्रोध का आघात अपने ऊपर होने लगा। उस अंधेरे कमरे में फर्श पर लेटे हुए वह अपने को पुत्र की ओर से इतना उदासीन हो जाने पर धिक्कारने लगे। दिन-भर के थके थे, थोड़ी ही देर में उन्हें नींद आ गई !

भूंगी ने आकर पुकारा—बाबूजी, रसोई तैयार है। मुंशीजी चौंककर उठ बैठे। कमरे में लैम्प जल रहा था।

मुंशीजी—कै बज गया भूंगी ? मुझे नींद आ गई थी।

भूंगी—कोतवाली के घंटे में तो नौ बज गए हैं, और हम नाहीं जानित।

मुंशीजी—सिया बाबू आये ?

भूंगी—आये होंगे तो घर ही में न होंगे ?

मुंशीजी ने झुंझलाकर पूछा—मैं पूछता हूं, आये कि नहीं ? और तू न जाने क्या-क्या जवाब देती है। आये कि नहीं ?

भूंगी—मैंने तो नहीं देखा, झूठ कैसे कह दूं।

मुंशीजी फिर लेट गए, बोले—उसको आ जाने दे, तब चलता हूँ।

आधा घंटे तक घर की ओर आंख लगाए लेटे रहे ! तब वह उठकर बाहर आये और दाहिनो हाथ कोई दो फर्लांग तक चले। तब लौटकर द्वार पर आये और पूछा—सिया बाबू आ गए ?

अन्दर से आवाजा आई—अभी नहीं।

मुंशीजी फिर बायीं ओर चले और गली की नुक्कड़ तक गये। सियाराम कहीं दिखाई न दिया। यहां से फिर घर आये और द्वारा पर खड़े होकर पूछा—सिया बाबू आ गए ?

अन्दर से आवाज मिली—नहीं।

कोतवाली के घंटे में दस बजने लगे।

मुंशीजी बड़े वेग से कम्पनी बाग की तरफ चले। सोचने लगे, शायद कहीं घूमने गया हो और घास पर लेटे-लेटे नींद आ गई हो। बाग में पहुँचकर उन्होंने हर एक बेंच को देखा, चारों तरफ घूमे। बहुत-से आदमी घास पर पड़े हुए थे, पर सियाराम का निशान न था। उन्होंने सियाराम का नाम लेकर जोर से पुकारा, पर कहीं से आवाज न आई।

ख्याल आया, शायद स्कूल में कोई तमाशा हो रहा हो। स्कूल एक मील से कुछ ज्यादा ही था। स्कूल की तरफ चले, पर आधे रास्ते से ही लौट पड़े! बाजार बन्द हो गया था। स्कूल में इतनी रात तक तमाशा नहीं हो सकता। अब भी उन्हें आशा हो रही थी कि सियाराम लौट आया होगा। द्वार पर आकर उन्होंने पुकारा—सिया बाबू आये? किवाड़ बन्द थे। कोई आवाज न आई। फिर जोर से पुकारा—सिया बाबू आये? किवाड़ बन्द थे। कोई आवाज न आई। फिर जोर से पुकारा। भूंगी किवाड़ खोलकर बोली—अभी तो नहीं आये। मुंशीजी ने धीरे से भूंगी को अपने पास बुलाया और करुण स्वर में बोले—तू तो घर की सब बातें जानती है, बता आज क्या हुआ था?

भूंगी—बाबूजी, झूठ न बोलूँगी; मालकिन छुड़ा देंगी और क्या? दूसरे का लड़का इस तरह नहीं रखा जाता। जहाँ कोई काम हुआ, बस बाजार भेज दिया! दिन-भर बाजार दौड़ते बीतता था। आज लकड़ी लाने न गये, तो चूल्हा ही नहीं जला। कहो तो मुँह फुलावें। जब आप ही नहीं देखते, तो दूसरा कौन देखेगा? चलिए, भोजन कर लीजिए, बहूजी कब से बैठी हैं।

मुंशीजी—कह दे, इस वक्त नहीं खाएँगे।

मुंशीजी फिर अपने कमरे में चले गए और एक लम्बी साँस ली। वेदना से भरे हुए ये शब्द उनके मुँह से निकल पड़े—ईश्वर क्या अभी दंड पूरा नहीं हुआ? क्या इस अंधे की लकड़ी को हाथ से छीन लोगे?

निर्मला ने आकर कहा—आज सियाराम अभी तक नहीं आये। कहती रही कि खाना बनाए देती हूँ, खा लो, मगर न जाने कब उठकर चल दिए! न जाने कहाँ घूम रहे हैं! बात तो सुनते ही नहीं। अब कब तक इनकी राह देखा करूँ? आप चलकर खा लीजिए, उनके लिए खाना उठाकर रख दूँगी।

मुंशीजी ने निर्मला की ओर कठोर नेत्रों से देखकर कहा—अभी के बज गए?

निर्मला—क्या जाने, दस बजे होंगे।

मुंशीजी—जी नहीं, बारह बजे हैं।

निर्मला—ग्यारह बज गए! इतनी देर तो कभी नहीं करते थे। न जाने कब तक उनकी राह देखोगे? दोपहर को भी कुछ नहीं खाया था। ऐसा [illegible]

देखा।

मुंशीजी—जी, तुम्हें बहुत दिक करता है, क्यों ?

निर्मला—देखिए न, इतनी रात गई और घर की सुध ही नहीं।

मुंशीजी—शायद यह आखिरी शरारत हो।

निर्मला—कैसी बातें मुँह से निकालते हैं। जाएँगे कहाँ ? किसी यार-दोस्त के यहाँ पड़ रहे होंगे।

मुंशीजी—शायद ऐसा ही हो। ईश्वर करे, ऐसा ही हो।

निर्मला—सवेरे आयें, तो जरा तम्बीह कीजिएगा।

मुंशीजी—खूब अच्छी तरह करूँगा।

निर्मला—चलिए, खा लीजिए, देर बहुत हुई।

मुंशीजी—सवेरे उसकी तम्बीह करके खाऊँगा। कहीं न आया, तो तुम्हें ऐसा ईमानदार नौकर कहाँ मिलेगा ?

निर्मला ने ऐंठकर कहा—तो क्या मैंने भगा दिया ?

मुंशीजी—नहीं, यह कौन कहता है ! तुम उसे क्यों भगाने लगीं ! तुम्हारा तो काम करता था ! शामत आ गई होगी !

निर्मला ने और कुछ नहीं कहा। बात बढ़ जाने का भय था। भीतर चली आई। सोने को भी न कहा। जरा देर में भूंगी ने अन्दर से किवाड़ भी बन्द कर दिए।

क्या मुंशीजी को नींद आ सकती थी ? तीनों लड़कों में केवल एक बच रहा था। वह भी हाथ से निकल गया, तो फिर जीवन में अंधकार के सिवाय और क्या है ? कोई नाम लेनेवाला भी न रहेगा। हा ! कैसे-कैसे रत्न हाथ से निकल गए। मुंशीजी की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी तो कोई आश्चर्य है ? उस व्यापक पश्चाताप, उस सघन ग्लानि-तिमिर में आशा की एक हल्की-सी रेखा उन्हें संभाले हुए थी। जिस क्षण यह रेखा लुप्त हो जायगी, कौन कह सकता है, उन पर क्या बीतेगी ? उनकी उस वेदना की कल्पना कौन कर सकता है ?

कई बार मुंशीजी की आँखें झपकीं, लेकिन हर बार सियाराम की आहट के धोखे में चौंक पड़ते।

सवेरा होते ही मुंशीजी फिर सियाराम को खोजने निकले। किसी से पूछते शर्म आती थी। किसी मुँह से पूछें ? उन्हें किसी से सहानुभूति की आशा न थी। प्रकट न कहकर मन में सब यही कहेंगे—जैसा किया, वैसा भोगो। सारे दिन वह स्कूल के मैदानों, बाजारों और बगीचों का चक्कर लगाते रहे। दो दिन निराहार रहने पर भी उन्हें इतनी शक्ति कैसे हुई, यह वही जानें।

रात के बारह बजे मुंशीजी घर लौटे। दरवाजे पर लालटेन जल रही थी, निर्मला द्वार पर खड़ी थी। देखते ही बोली—कहा भी नहीं, न जाने कब चल दिए! कुछ पता चला ?

मुंशीजी ने आग्नेय नेत्रों से ताकते हुए कहा—हट जाओ सामने से, नहीं तो बुरा होगा। मैं आपे में नहीं हूँ। यह तुम्हारी करनी है। तुम्हारे ही कारण आज मेरी यह दशा हो रही है। छह साल पहले क्या इस घर की यही दशा थी ? तुमने मेरा बना बनाया घर बिगाड़ दिया, तुमने लह-लहाते बाग को उजाड़ डाला। केवल एक ठूँठ रह गया है। उसका निशान मिटाकर तभी तुम्हें संतोष होगा। मैं अपनी सर्वनाश करने के लिए तुम्हें अपने घर नहीं लाया था। सुखी जीवन को और भी सुखमय बनाना चाहता था। यह उसी का प्रायश्चित है। जो लड़के पान की तरह फेरे जाते थे, उन्हें मेरे जीते-जी तुमने चाकर समझ लिया और मैं आंखों से सब कुछ देखते हुए भी अन्धा बना बैठा रहा। जाओ, मेरे लिए थोड़ा-सा संखिया भेज दो। बस, यही कसर रह गई, वह भी पूरी हो जाय!

निर्मला ने रोते हुए कहा—मैं तो अभागिन हूँ ही, आप कहेंगे तब जानूँगी। न जाने ईश्वर ने मुझे जन्म क्यों दिया था? मगर यह आपने कैसे समझ लिया कि सियाराम आयेंगे ही नहीं ?

मुंशीजी ने अपने कमरे की ओर जाते हुए कहा—जलाओ मत, जाकर खुशियाँ मनाओ। तुम्हारी मनोकामना पूरी हो गई।

: २४ :

निर्मला सारी रात रोती रही इतना कलंक! उसने जियाराम को गहने ले जाते देखने पर भी मुंह खोलने का साहस नहीं किया। इसीलिए तो कि लोग समझेंगे कि वह मिथ्या दोषारोपण करके लड़के से बैर साध रही है। आज उसके मौन रहने पर उसे अपराधिन ठहराया जा रहा है। यदि वह जियाराम को उसी क्षण रोक देती और जियाराम लज्जावश कहीं भाग जाता, तो क्या उसके सिर अपराध न मढ़ा जाता ?

सियाराम ही के साथ उसने कौन-सा दुर्व्यवहार किया था! वह कुछ बचत करने ही के विचार से तो सियाराम से सौदा मंगवाया करती थी। क्या वह बचत करके अपने लिए गहने गढ़वाना चाहती थी ? जब आमदनी का यह हाल हो रहा था, तो पैसे-पैसे पर निगाह रखने के सिवाय कुछ जमा करने का उसके पास और साधन ही क्या था ? जवानों की जिन्दगी का तो कोई भरोसा नहीं; बूढ़ों की जिन्दगी का क्या ठिकाना ? बच्ची के विवाह के लिए वह किसके सामने हाथ फैलाती ? बच्ची का भार कुछ उसी पर तो नहीं था। वह केवल पति की सुविधा ही के लिए कुछ बटोरने का प्रयत्न कर रही थी।

पति ही की क्यों ? सियाराम ही तो पिता के बाद घर का स्वामी होता। बहिन के विवाह करने का भार क्या उसके सिर पर न पड़ता ? निर्मला सारी कतरब्योंत पिता और पुत्र का संकट मोचन करने ही के लिए कर रही थी। बच्ची का विवाह इस परिस्थिति में संकट के सिवा और क्या था ? पर इसके लिए भी उसके भाग्य में अपयश ही बदा था।

दोपहर हो गयी, पर आज भी चूल्हा नहीं जला। खाना भी जीवन का काम है—इसकी किसी को सुध ही न थी। मुंशीजी बाहर बेजान पड़ थे और निर्मला भीतर। बच्ची कभी भीतर जाती, कभी बाहर। कोई उससे बोलनेवाला न था। बार-बार सियाराम के कमरे के द्वार पर जाकर खड़ी होती और 'बैया-बैया' पुकारती; 'बैया' जवाब न देता था।

संध्या समय मुंशीजी आकर निर्मला से बोले—तुम्हारे पास कुछ रुपये हैं ? निर्मला ने चौंककर पूछा—क्या कीजिएगा ?

मुंशीजी—मैं पूछता हूं, उसका जवाब दो।

निर्मला—क्या आपको नहीं मालूम है ? देनेवाले तो आप ही हैं।

मुंशीजी—तुम्हारे पास कुछ रुपये हैं या नहीं। अगर हों तो मुझे दे दो, न हों तो साफ जवाब दो।

निर्मला ने अब भी साफ जवाब नहीं दिया। बोली—होंगे तो घर ही में न होंगे ? और कहीं मैंने भेज दिये ?

मुंशीजी बाहर चले गए। वह जानते थे कि निर्मला के पास रुपये हैं, वास्तव में थे भी। निर्मला ने भी यह नहीं कहा कि नहीं हैं या मैं न दूँगी; पर उसकी बातों से प्रकट हो गया कि वह देना नहीं चाहती।

नौ बजे रात को मुंशीजी ने आकर रुक्मिणी से कहा—बहिन, मैं जरा बाहर जा रहा हूं। मेरा बिस्तर भूंगी से बँधवा देना और ट्रंक में कुछ कपड़े रखवाकर बन्द कर देना।

रुक्मिणी भोजन बना रही थी, बोली—बहू तो कमरे में है, कह क्यों नहीं देते ? कहाँ जाने का इरादा है ?

मुंशीजी—मैं तुमसे कहता हूँ; बहू से कहना होता, तो तुमसे क्यों कहता ? आज तुम क्यों खाना पका रही हो।

रुक्मिणी—कौन पकाए ? बहू के सिर में दर्द हो रहा है। आखिर इस वक्त कहाँ जा रहे हो ? सवेरे न चले जाना।

मुंशीजी—इस तरह टालते-टालते तो आज तीन दिन हो गए। इधर-उधर घूम-

र उठाया और ताँगे पर जा बैठे।'

उसी वक्त निर्मला का कलेजा मसोसने लगा। उसे ऐसा जान पड़ा कि अब इनसे न होगी। वह अधीर होकर द्वार पर आयी कि मुंशीजी को रोक ले, पर ताँगा जा चुका

: २५ :

दिन गुजरने लगे। एक महीना पूरा निकल गया, लेकिन मुंशीजी न लौटे कोई खत भी न भेजा। निर्मला को अब नित्य यही चिन्ता बनी रहती कि वह लौटकर न आये तो क्या होगा? उसे चिन्ता न होती थी कि उन पर क्या बीत रही होगी, कहाँ-कहाँ मारे-मारे फिरते होंगे, स्वास्थ्य कैसा होगा? उसे केवल अपनी और उससे भी बढ़कर बच्ची की चिन्ता थी। गृहस्थी का निर्वाह कैसे होगा? ईश्वर कैसे बेड़ा पार लगाएँगे? बच्ची का क्या हाल होगा? उसने कतरब्योंत करके जो रुपये जमा कर रखे थे, उसमें कुछ-न-कुछ रोज कमी होती थी, मानो कोई उसकी देह से रक्त निकाल रहा हो। झुँझालकर मुंशीजी को कोसती। लड़की किसी चीज के लिए रोती; तो 'अभागिनी', 'कलमूँही' कहकर झल्लाती। यही नहीं, रुक्मिणी का घर में रहना उसे कष्टकर जान पड़ता था, मानो वह उसकी गर्दन पर सवार है।

जब हृदय जलता है तो वाणी भी अग्निमय हो जाती है। निर्मला बड़ी मधुरभाषिणी स्त्री थी, पर अब उसकी गणना कर्कशाओं में की जा सकती थी। दिन भर उसके मुख से जली-कटी बातें ही निकला करती थीं। उसके शब्दों की कोमलता न जाने क्या हो गई भावों में माधुर्य का कहीं नाम नहीं। भूंगी बहुत दिनों से इस घर में नौकर थी। स्वभा की सहनशील थी। पर यह आठों पहर की बकबक उससे भी न सही गई। एक दि उसने भी घर की राह ली। यहाँ तक कि जिस बच्ची को वह प्राणों से भी अधिक प्य करती थी, उसकी सूरत से घृणा हो गई। बात-बात पर घुड़क पड़ती, कभी-कभी बैठती। रुक्मिणी रोती हुई बालिका को गोद में बैठा लेती और चुमकार-दुलारकर कराती। उस अनाथ के लिए अब यही एक आश्रय रह गया।

निर्मला को अब अगर कुछ अच्छा लगता था, तो वह सुधा से बात करन वह वहाँ जाने का अवसर खोजा करती थी। बच्ची को अब वह अपने साथ न चाहती थी। पहले जब बच्ची को अपने घर सभी चीजें खाने को मिलती थीं, जाकर हँसती-खेलती थी। अब वहाँ जाकर उसे भूख लगती थी। निर्मला उसे घू देखती, मुट्ठियाँ बाँधकर धमकाती, पर लड़की भूख की रट लगाना न छो

इसलिए निर्मला उसे साथ न ले जाती थी। सुधा के पास बैठकर उसे मालूम होता था कि मैं आदमी हूँ। उतनी देर के लिए वह चिन्ताओं से मुक्त हो जाती थी। जैसे शराबी को शराब के नशे में सारी चिन्ताएँ भूल जाती हैं, उसी तरह निर्मला सुधा के घर जाकर सारी बातें भूल जाती थी। जिसने उसे उसके घर पर देखा हो, वह उसे यहाँ देखकर चकित रह जाता यही कर्कश, कटुभाषिणी स्त्री यहा आकर हास्य विनोद और माधुर्य की पुतली बन जाती थी। यौवन काल की स्वाभाविक वृत्तियाँ अपने घर पर रास्ता बन्द पाकर यहाँ किलोलें करने लगती थीं। वहाँ आते वक्त वह माँगचोटी, कपड़े-लत्ते से लैस होकर जाती और यथासाध्य अपनी विपत्ति कथा को अपने मन में ही रखती थी। यहाँ रोने के लिए नहीं, हँसने के लिए आती थी !

पर कदाचित् उसके भाग्य में यह सुख न बदा था।निर्मला मामूली तौर से दोपहर या तीसरे पहर सुधा के घर जाया करती थी। एक दिन उसका जी इतना ऊबा कि सबेरे ही जा पहुँची। सुधा नदी-स्नान करने गयी थी डॉक्टर साहब अस्पताल जाने के लिए कपड़े पहन रहे थे। महरी अपने काम-धन्धे में लगी हुई थी। निर्मला अपनी सहेली के कमरे में जाकर निश्चिन्त बैठ गई। उसने समझा सुधा कोई काम कर रही होगी, अभी आती होगी। जब बैठे-बैठे दो-तीन मिनट गुजर गए तो उसने अलमारी से तस्वीरों की एक किताब उतार ली और केश खोल, पलंग पर लेटकर चित्र देखने लगी। इस बीच में डॉक्टर साहब को किसी जरूरत से निर्मला के कमरे में आना पड़ा। शायद अपनी ऐनक ढूंढते फिरते थे। बेधड़क अन्दर चले आये। निर्मला द्वार की ओर केश खोले लेटी हुई थी। डॉक्टर साहब को देखते ही चौंककर उठ बैठी और सिर ढाँकती हुई चारपाई से उतरकर खड़ी हो गई। डॉक्टर ने लौटते हुए चिक के पास खड़े होकर कहा—क्षमा करना निर्मला, मुझे मालूम न था कि तुम यहाँ हो। मेरी ऐनक मेरे कमरे में नहीं मिल रही है। जाने कहाँ उतारकर रख दी थी। मैंने समझा, शायद यहाँ हो।

निर्मला ने चारपाई के सिरहाने वाले आले पर निगाह डाली तो ऐनक की डिबिया दिखाई दी। उसने आगे बढ़कर डिबिया उतार ली और सिर झुकाए देह समेट, सकोच से डॉक्टर साहब की ओर हाथ बढ़ाया। डॉक्टर साहब ने निर्मला को दो-एक बार पहले भी देखा था, पर इस समय के-से भाव कभी उनके मन में न आए थे। जिस ज्वाला को वह बरसों से हृदय में दबाए हुए थे, वह आज पवन का झोंका पाकर दहक उठी। उन्होंने ऐनक के लिए हाथ बढ़ाया, तो हाथ काँप रहा था। ऐनक लेकर भी वह बाहर न गये, वहीं खोए हुए-से खड़े रहे। निर्मला ने इस एकान्त से भयभीत होकर पूछा—सुधा कहीं गयी है क्या ?

- - - - - - -

डॉक्टर साहब ने सिर झुकाए हुए जवाब दिया—हां, जरा स्नान करने चली गयी।

फिर भी डॉक्टर साहब बाहर न गये। वहीं खड़े रहे! निर्मला ने फिर पूछा—कब तक आएँगी ?

डॉक्टर साहब ने सिर झुकाए हुए कहा—आती होंगी।

फिर भी वह बाहर नहीं गये। उनके मन में घोर द्वन्द्व मचा हुआ था। औचित्य का बंधन नहीं, भीरुता का कच्चा तागा उनकी जबान को रोके हुए था।

निर्मला ने फिर कहा—कहीं घूमने-घामने लगी होंगी। मैं भी इस वक्त जाती हूं।

भीरुता का कच्चा तागा टूट गया। नदी के कगार पर पहुँचकर भागती हुई सेना में अद्‌भुत शक्ति आ जाती है। डॉक्टर साहब ने सिर उठाकर निर्मला को देखा और अनुराग के स्वर में बोले—नहीं निर्मला, अब आती ही होंगी। अब न जाओ। रोज सुधा की खातिर बैठती हो, आज मेरी खातिर बैठो। बताओ, कब तक इस आग में जला करूँ ? सत्य कहता हूँ निर्मला ....

निर्मला ने कुछ और नहीं सुना। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो सारी पृथ्वी चक्कर खा रही है, मानो उसके प्राणों पर वज्रों का आघात हो रहा है। उसने जल्दी से अलगनी पर लटकती हुई चादर उतार ली और बिना मुँह से एक शब्द निकाले, कमरे से निकल गई। डॉक्टर साहब खिसियाए हुए से रोना मुँह बनाए खड़े रहे। उसको रोकने या कुछ कहने की उनकी हिम्मत न पड़ी।

निर्मला ज्यों ही द्वार पर पहुँची, उसने सुधा को ताँगे से उतरते देखा। सुधा उसे देखते ही जल्दी से उतरकर उसकी ओर लपकी और कुछ पूछना चाहती थी, मगर निर्मला ने उसे अवसर न दिया, तीर की तरह झपटकर चली गई। सुधा एक क्षण तक विस्मय की दशा में खड़ी रही। बात क्या है, उसकी समझ में कुछ न आ सका। व्यग्र हो उठी। जल्दी अन्दर गयी। महरी से पूछा कि क्या बात हुई ? उसे मालूम हुआ कि हमारी कहीं महरी व नौकर ने उसे कोई अपमानसूचक बात कह दी है। वह अपराधी का पता लगाएगी और उसे खड़े-खड़े निकाल देगी। लपकी हुई वह अपने कमरे में आ गई। अन्दर कदम रखते ही डॉक्टर को मुँह लटकाए चारपाई पर बैठे देखा। पूछा—निर्मला यहाँ आयी थी ?

डॉक्टर साहब ने सिर खुजलाते हुए कहा—हाँ, आयी तो थी।

सुधा—किसी महरी-अहरी ने उन्हें कुछ कहा तो नहीं ? मुझसे बोली तक नहीं, झपटकर निकल गयी।

सुधा ने चादर ओढ़ते हुए कहा—मेरे पेट में खलबली मची हुई है, कहते हो जल्दी क्या है ?

सुधा तेजी से कदम बढ़ाती हुई निर्मला के घर की ओर पाँच मिनट में जा पहुँची। देखा तो निर्मला अपने कमरे में चारपाई पर पड़ी रो रही थी और बच्ची उसके पास खड़ी पूछ रही थी—अम्माँ, क्यों लोती हो ?

सुधा ने लड़की को गोद में ले लिया और निर्मला से बोली—बहिन सच बताओ क्या बात है ! मेरे यहाँ किसी ने तुम्हें कुछ कहा ? मैं सबसे पूछ चुकी, कोई नहीं बतलाता।

निर्मला आंसू पोंछती हुई बोली—किसी ने कुछ कहा नहीं बहिन। भला, वहाँ मुझे कौन कुछ कहता ?

सुधा—तो फिर मुझसे बोली क्यों नहीं और आते-ही-आते रोने लगीं ?

निर्मला—अपने नसीबों को रो रही हूँ और क्या!

सुधा—तुम यों न बतलाओगी, तो मैं कसम रखा दूँगी।

निर्मला—कसम-असम न रखाना भाई, मुझे किसी ने कुछ नहीं कहा झूठ किसे लगा दूँ ?

सुधा—खाओ मेरी कसम !

निर्मला—तुम तो नाहक जिद करती हो।

सुधा—अगर तुमने न बताया निर्मला, तो मैं समझूँगी, तुम्हें मुझसे जरा भी प्रेम नहीं है। बस जबानी जमा खर्च है। मैं तुमसे किसी बात का पर्दा नहीं रखती और तुम मुझे गैर समझती हो। मुझे तुम्हारे ऊपर बड़ा भरोसा था। अब जान गई कि कोई किसी का नहीं होता।

सुधा की आँखें सजल हो गईं। उसने बच्ची को गोद से उतार दिया और द्वार की ओर चली। निर्मला ने उठकर उसका हाथ पकड़ लिया और रोती हुई बोली—सुधा, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हुँ, मत पूछो ! तुम्हें दुःख होगा और शायद मैं अपना मुँह न दिखा सकूं। मैं अभागिनी न होती, तो यह दिन क्यों देखती ? अब तो ईश्वर से यही प्रार्थना है कि संसार से मुझे उठा लें। अभी यह दुर्गति हो रही है, तो आगे न जाने क्या होगा।

इन शब्दों में जो संकेत था, वह बुद्धिमती सुधा से छिपा न रह सका। वह समझ गई कि डॉक्टर साहब ने छेड़छाड़ की है। उनका हिचक-हिचककर बातें करना और उसके प्रश्नों को टालना, उनकी वह ग्लानिमय, कांतिहीन मुद्रा उसे याद आ गई। वह सिर से पाँव तक काँप उठी; बिन कुछ कहे-सुने सिंहनी की भाँति क्रोध से भरी हुई द्वार

की ओर चली। निर्मला ने उसे रोकना चाहा, पर न रोक सकी। ड्योढ़ी-ड्योढ़ी द्वार पर आ गई और घर की ओर चली! तब निर्मला वहीं भूमि पर बैठ गई और फूट-फूटकर रोने लगी।

: २६ :

निर्मला दिन-भर चारपाई पर पड़ी रही। मालूम होता है, उसकी देह में प्राण नहीं है। न स्नान किया, न भोजन करने उठी। संध्या समय उसे ज्वर हो आया। रात-भर देह तवे की भाँति तपती रही। दूसरे दिन भी ज्वर न उतरा, हाँ, कुछ-कुछ कम हो गया था। वह चारपाई पर लेटी हुई निश्चल नेत्रों से द्वार की ओर ताक रही थी। चारों ओर शून्य था—अन्दर भी शून्य, बाहर भी शून्य, कुछ चिन्ता न थी, न कोई स्मृति, न कोई दुःख। मस्तिष्क में स्पन्दन की शक्ति ही न रही थी।

सहसा रुक्मिणी बच्ची को गोद में लिये हुए आकर खड़ी हो गयी। निर्मला ने पूछा—क्या यह बहुत रोती थी?

रुक्मिणी—नहीं, यह तो सिसकी तक नहीं। रात-भर चुपचाप पड़ी रही, सुधा ने थोड़ा-सा दूध भेज दिया था, वही पिला दिया।

निर्मला—अहीरिन दूध न दे गयी थी?

रुक्मिणी—कहती थी, जिसने पैसे दे दिये थे, उसको दूँ। तुम्हारा जी कैसा है?

निर्मला—मुझे कुछ नहीं हुआ है। कल ज़रा देह गरम हो गयी थी।

रुक्मिणी—डॉक्टर साहब का तो बुरा हाल है।

निर्मला ने घबराकर कहा—क्या हुआ? कुशल है न?

रुक्मिणी—कुशल तो है कि जान बचने की नौबत आ गयी है? कोई कहता है, ज़हर खा लिया था, कोई कहता है कि दिल का धड़कना बन्द हो गया था। भगवान जाने क्या हुआ।

निर्मला ने ठंडी साँस ली और रोते हुए स्वर में बोली—हाय भगवान्! सुधा की क्या गति होगी? वह कैसे जियेगी?

यह कहते-कहते वह रो पड़ी और बड़ी देर तक सिसकती रही। तब चारपाई से उतरकर सुधा के पास जाने को तैयार हुई। पाँव थर-थर काँप रहे थे, दीवार थामे खड़ी थी, पर जी न मानता था। न जाने सुधा ने यहाँ से जाकर पति से क्या कहा? मैंने तो उससे कुछ कहा भी नहीं। न जाने मेरी बातों का वह क्या आशय समझी? हाय! ऐसे रूपवान, ऐसे सुशील प्राणी का यह अन्त! अगर निर्मला को मालूम होता कि उसके क्रोध का यह भीषण परिणाम होगा, तो वह ज़हर का घूँट पीकर भी उस बात को हँसी में उड़ा देती।

यह सोचकर कि मेरी निष्ठुरता के कारण डॉक्टर साहब का यह हाल हुआ, निर्मला के हृदय के टुकड़े होने लगे। ऐसी वेदना होने लगी, मानों हृदय में शूल उठ रहा हो। डॉक्टर साहब के घर चली।

लाश उठ चुकी थी ! बाहर सन्नाटा छाया हुआ था। घर में स्त्रियाँ जमा थीं। सुधा जमीन पर बैठी रो रही थी। निर्मला को देखते ही वह जोर से चिल्लाकर रो पड़ी और आकर उसकी छाती से लिपट गई। दोनों देर तक रोती रहीं।

जब औरतों की भीड़ कम हुई और एकान्त हो गया, तो निर्मला ने पूछा—यह क्या हो गया बहिन, तुमने कह क्या दिया ?

सुधा अपने मन को इसी प्रश्न का उत्तर आज कितनी बार दे चुकी थी। उसका मन जिस उत्तर से शान्त हो गया था, वही उसने निर्मला को दिया। बोली—चुप भी तो न रह सकती थी बहिन ! क्रोध की बात पर क्रोध आता ही है।

निर्मला—मैंने तो तुमसे कोई ऐसी बात न कही थी।

सुधा—तुम कैसे कहतीं; कह ही नहीं सकती थीं, लेकिन उन्होंने जो बात हुई थी, वह कह दी थी। उस पर मैंने जो मुँह में आया, कहा। जब एक बात दिल में आ गई, तो उसे हुआ ही समझना चाहिए। अवसर और घात मिले, तो वह अवश्य ही पूरी हो। यह कहकर कोई नहीं निकल सकता कि मैंने तो हँसी की थी। एकान्त में ऐसा शब्द जबान पर लाना ही कह देता है कि नीयत बुरी थी। मैंने तुमसे कभी कहा नहीं बहिन, लेकिन मैंने उन्हें कई बार तुम्हारी ओर झांकते देखा। उस वक्त मैंने भी यह समझा कि शायद मुझे धोखा हो रहा हो। अब मालूम हुआ कि ताकझाँक का क्या मतलब था ! अगर मैंने दुनिया ज्यादा देखी होती तो तुम्हें अपने घर न आने देती। कम-से-कम तुम पर उनकी निगाह कभी न पड़ने देती, लेकिन यह क्या जानती थी कि पुरुषों के मुँह में कुछ और मन में कुछ और होता है। ईश्वर को जो मंजूर था, वह हुआ। ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नहीं समझती। दरिद्र प्राणी उस धनी से कहीं सुखी है, जिसे उसका धन सांप बनकर काटने दौड़े। उपवास कर लेना आसान है विषैला भोजन करना उससे कहीं मुश्किल !

इसी वक्त डॉक्टर सिन्हा के छोटे भाई और कृष्णा ने घर में प्रवेश किया। घर में कोहराम मच गया।

: २७ :

एक महीना और गुजर गया। सुधा अपने देवर के साथ तीसरे ही दिन चली गयी ! अब निर्मला अकेली थी। पहले हँस-बोलकर जी बहला लिया करती थी। अब रोना

हाँ एक काम रह गया। उसका स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता गया। पुराने मकान का किराया अधिक था। दूसरा मकान थोड़े किराये का लिया। यह तंग गली में था। अन्दर एक कमरा था और छोटा-सा आँगन। न प्रकाश जाता न वायु। दुर्गन्ध उड़ा करती थी। भोजन का यह हाल कि पैसे रहते हुए भी कभी-कभी उपवास करना पड़ता था। बाजार से लाये कौन ? फिर अपना कोई मर्द नहीं, कोई लड़का नहीं, तो रोज भोजन बनाने का कष्ट कौन उठाए ? औरतों के लिए रोज भोजन करने की आवश्यकता ही क्या ? अगर एक वक्त खा लिया, तो दो दिन के लिए छुट्टी हो गयी। बच्ची के लिए ताजा हलुआ या रोटियाँ बन जाती थीं। ऐसी दशा में स्वास्थ्य क्यों न बिगड़ता! चिन्ता, शोक, दुरवस्था—एक हो तो कोई कहे। यहाँ तो त्रयताप का धावा था। उस पर निर्मला ने दवा खाने की कसम खा ली थी। करती ही क्या ? उन थोड़े से रुपयों में दवा की गुंजाइश कहाँ थी ? जहाँ भोजन का ठिकाना न था, वहाँ दवा का जिक्र ही क्या ? दिन-दिन सूखती चली जाती थी।

एक दिन रुक्मिणी ने कहा—बहू इस तरह कब तक घुला करोगी! जी ही से जहान है। चलो, किसी वैद्य को दिखा लाऊँ।

निर्मला ने विरक्त भाव से कहा—जिसे रोने ही के लिए जीना हो उसका मर जाना ही अच्छा।

रुक्मिणी—बुलाने से तो मौत नहीं आती।

निर्मला—मौत तो बिना बुलाए आती है, बुलाने पर क्यों न आएगी ? उसके आने में बहुत दिन न लगेंगे बहिन ! जै दिन चलती हूँ उतने साल समझ लीजिए ?

रुक्मिणी—दिल छोटा मत करो बहू ! अभी संसार का सुख ही क्या देखा ?

निर्मला—अगर संसार का यही सुख है, जो इतने दिनों से देख रही हू, तो उससे जी भर गया। सच कहती हूँ बहिन इस बच्ची का मोह मुझे बाँधे हुए है, नहीं तो अब तक कभी की चली गयी होती, न जाने इस बेचारी के भाग्य में क्या लिखा है।

दोनों महिलाएँ रोने लगीं। इधर जब से निर्मला ने चारपाई पकड़ ली है, रुक्मिणी के हृदय में दया का सोता-सा खुल गया है। द्वेष का लेश भी नहीं रहा। कोई काम करती हों; निर्मला की आवाज सुनते ही दौड़ती है। घण्टों उसके पास बैठी कथा-पुराण सुनाया करती हैं। कोई ऐसी चीज पकाना चाहती हैं, जिसे निर्मला रुचि से खाए। निर्मला को कभी हँसते देख लेती हैं, तो निहाल हो जाती हैं, और बच्ची को तो अपने गले का हार बनाए रहती है। उसी की नींद सोती हैं, उसी की नींद जागती हैं। वही बालिका अब उनके जीवन का आधार है।

रुक्मिणी ने जरा देर बाद कहा—बहू, तुम इतनी निराश क्यों होती हो ? भगवान् चाहेंगे तो तुम दो-चार दिन में अच्छी हो जाओगी—मेरे साथ आज वैद्यजी के पास चलो। बड़े सज्जन हैं।

निर्मला—दीदीजी, अब मुझे किसी वैद्य की दवा फायदा न करेगी। आप मेरे चिन्ता न करें। बच्ची को आपकी गोद में छोड़ जाती हूं। अगर जीती-जागती रहे, तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा। मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ न कर सकी, केवल जन्म देने-भर की अपराधिनी हूं। चाहे क्वांरी रखिएगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा, पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा, इतनी ही आपसे विनय हैं। मैंने आपकी कुछ सेवा न की, इसका बड़ा दुःख हो रहा है। मुझ अभागिन से किसी को सुख नहीं मिला। जिस पर मेरी छाया भी पड़ गई, उसका सर्वनाश हो गया। अगर स्वामीजी कभी घर आएँ, तो उनसे कहिएगा कि इस करम-जली के अपराध को क्षमा कर दें।

रुक्मिणी रोती हुई बोली—बहू, तुम्हारा कोई अपराध नहीं। ईश्वर से कहती हूँ, तुम्हारी ओर से मेरे मन में जरा भी मैल नहीं है। हाँ, मैंने सदैव तुम्हारे साथ कपट किया। इसका मुझे मरते दम तक दुःख रहेगा।

निर्मला ने कातर नेत्रों से देखते हुए कहा—दीदीजी, कहने की बात पर बिना कहे रहा नहीं जाता। स्वामीजी ने हमेशा मुझे अविश्वास की दृष्टि से देखा, लेकिन मैंने कभी मन में भी उनकी उपेक्षा नहीं की। जो होना था, वह हो चुका था। अधर्म करके अपना परलोक क्यों बिगाड़ती ? पूर्व जन्म में न जाने कौन से पाप किये थे, जिसका यह प्रायश्चित करना पड़ा। इस जन्म में काँटे बोती, तो कौन गति होती ?

निर्मला की साँस बड़े वेग से चलने लगी। फिर खाट पर लेट गई और बच्ची की ओर एक ऐसी दृष्टि से देखा, जो उसके जीवन की सम्पूर्ण विपत्कथा की वृहद आलोचना थी, वाणी में इतनी सामर्थ्य कहाँ !

तीन दिनों तक निर्मला की आँखों से आँसुओं की धारा बहती रही। वह न किसी से बोलती थी, न किसी की ओर देखती थी और न किसी की कुछ सुनती थी। बस, रोए चली जाती थी। उस वेदना का कौन अनुमान कर सकता है ?

चौथे दिन संध्या समय वह विपत्ति-कथा समाप्त हो गई। उसी समय जब पशु-पक्षी अपने बसेरे को लौट रहे थे, निर्मला का प्राण-पक्षी भी दिन-भर शिकारियों के निशानों, शिकारी चिड़ियों के पंजों और वायु के प्रचंड झोंकों से आहत और व्यथित अपने बसेरे की ओर उड़ गया।

मुहल्ले के लोग जमा हो गए। लाश बाहर निकाल गई। कौन दाह करेगा, यह प्रश्न उठा। लोग चिन्ता में थे कि सहसा एक बूढ़ा पथिक एक बकुचा लटकाए आकर खड़ा हो गया। यह मुंशी तोताराम थे।

• • • • •

समाप्त